A.C.-22.11.2022
Appendix-104

Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi

दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

बी.ए.(प्रोग्राम) सेमेस्टर-I

कोर्स क्रेडिट - 4

Generic Elective (GE), हिंदी-(क)

हिंदी : भाषा और साहित्य

(हिंदी-विभाग)

As per the UGCF and National Education Policy 2020

पाठ्य-सामग्री लेखक

स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी

डॉ. रमेश खनेजा

संपादक मंडल

डॉ. सीमा जैन

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग

प्रथम संस्करण : 2022

ई–मेल : ddceprinting@col.du.ac.in
hindi@col.du.ac.in

Published by:

Department of Distance and Continuing Education under
the aegis of Campus of Open Learning/School of Open Learning,
University of Delhi, Delhi-110 007

Printed by:

School of Open Learning, University of Delhi

अध्ययन सामग्री
हिंदी - 'क'
हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास
(इकाई - 1-4)

इकाई-**1**	**हिंदी : भाषा और साहित्य**		01-39
	1. हिंदी भाषा का उद्भव और विकास	स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी	
	2. हिंदी भाषा की बोलियों का परिचय	स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी	
	3. राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी	डॉ. मनीराम यादव	
इकाई-**2**	**(क) हिंदी साहित्य का इतिहास**	डॉ. रमेश खनेजा	40-185
	1. आदिकाल : सामान्य परिचय		
	2. भक्तिकाल – सामान्य परिचय		
	3. रीतिकाल : सामान्य परिचय		
	(ख) हिंदी साहित्य का इतिहास : आधुनिककाल		
	1. आधुनिककाल युगीन काव्यधाराएँ : सामान्य परिचय		
	2. गद्य विधाएँ : सामान्य परिचय		
इकाई-**3**	(क) कबीर	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	186-234
	(ख) भूषण	डॉ. अजय तिवारी	
	(ग) बिहारी	डॉ. दिनेश गुप्ता	
इकाई-4	**आधुनिक हिंदी कविता**		235-267
	1. माखनलाल चतुर्वेदी : बेटी की विदाई	डॉ. रामप्रकाश	
	2. जयशंकर प्रसाद	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	
	3. नागार्जुन	डॉ. सीमा जैन	

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-1

हिंदी : भाषा और साहित्य

1. हिंदी भाषा का उद्भव और विकास

लेखक–स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 हिंदी भाषा का उद्भव और विकास
1.3 आदिकाल
  1.3.1 ध्वनि
  1.3.2 व्याकरण
  1.3.3 शब्द - भंडार
  1.3.4 साहित्य में प्रयोग
  1.3.5 बोध प्रश्न
1.4 मध्यकाल
  1.4.1 ध्वनि
  1.4.2 व्याकरण
  1.4.3 शब्द - भंडार
  1.4.4 साहित्य में प्रयोग
  1.4.5 बोध प्रश्न
1.5 आधुनिककाल
  1.5.1 ध्वनि
  1.5.2 व्याकरण
  1.5.3 शब्द - भंडार
  1.5.4 साहित्य में प्रयोग
  1.5.5 बोध प्रश्न

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.6 सारांश
1.7 अभ्यास प्रश्न
1.8 संदर्भ-ग्रंथ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस इकाई में हिंदी भाषा की विकास यात्रा और विकास की विविध धाराओं का वर्णन है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी भाषा की पूर्वजीविका को समझ सकेंगे।
- खड़ी बोली हिंदी के विकास से अवगत हो सकेंगे।
- देश की भाषा के रूप में हिंदी की स्थिति स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास की यात्रा को विद्वानों ने संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के रूप में देखने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार, ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंदी भाषा के विकास की कहानी आरंभ होती है। ग्यारहवीं सदी से अपनी यात्रा आरंभ कर आज हिंदी हमारे सामने जिस रूप में है उससे हम सभी परिचित हैं। हिंदी की इस यात्रा में जो-जो परिवर्तन हुए हैं उन सबकी चर्चा विस्तार पूर्वक इस इकाई में की गई है। प्रारंभ में हिंदी का वह रूप जो अपभ्रंश से विकसित होकर सामने आया वह प्राकृत, अपभ्रंश की शब्दावली से ओत-प्रोत था। धीरे-धीरे हिंदी के इस रूप में विकास हुआ और आगे चलकर उसकी बोलियाँ विकसित हुई। हिंदी भाषा के विकास में हिंदी साहित्य का भी अभूतपूर्ण योगदान रहा है। इन सभी विकास के सोपानों का विस्तार से इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

1.2 हिंदी भाषा की पूर्वपीठिका तथा उसका उद्‌भव

वैदिक संस्कृत काल में आर्य भाषा प्रदेश में तीन स्थानीय बोलियाँ विकसित हो चुकी थी : पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी। पालि काल में एक और स्थानीय बोली दक्षिणी का विकास हो गया। इस प्रकार स्थानीय बोलियों की संख्या चार हो गई। प्राकृत काल में स्थानीय बोलियाँ धीरे-धीरे छः-सात हो गईं, जिनके नाम हैं– ब्राचड, केकय, टक्क, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी। इन्हीं से अपभ्रंश काल में छः-सात अपभ्रंश स्थानीय बोलियों का विकास हुआ, जिन्हें प्राकृतों के नाम के आधार पर इन्हीं नामों से पुकारा जा सकता है : ब्राचड, केकय, टक्क, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी। इन्हीं अपभ्रंशों से आधुनिक भाषाएँ उद्‌भूत हुई हैं : ब्राचड से–सिंधी, केकय से–लहंदा, टक्क से–पंजाबी, महाराष्ट्री से–मराठी,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

शौरसेनी–गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पहाड़ी, अर्धमागधी से–पूर्वी हिंदी, मागधी से–बिहारी, बंगला, असमी, उड़िया।[1]

इस प्रकार हिंदी जो पाँच उपभाषाओं अथवा बोली-समूहों (पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी) का सामूहिक नाम है, शौरसेनी, अर्धमागधी तथा मागधी अपभ्रंश से 1000 ई. के आस-पास उद्भूत हुई। यहाँ एक बात संकेत करने की है कि यों तो हिंदी के कुछ रूप पालि में मिलने लगते हैं, प्राकृत में उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है तथा अप्रभंश से उनमें और भी वृद्धि हो गई है, किंतु सब मिलाकर इनका प्रतिशत इतना कम है कि 1000 ई. के पूर्व हिंदी का उद्भव नहीं माना जा सकता है। इसीलिए राहुल सांस्कृत्यायन आदि विद्वानों ने हिंदी का जन्म जो 1000 ई. के पूर्व माना है, साधार नहीं है। ऐसे ही हिंदी साहित्य के कई इतिहासों में कुछ लोगों ने हिंदी का प्रारंभ और भी बाद में माना है, किंतु वास्तविकता यह है कि साहित्य में प्रयोग के आधार पर वे निष्कर्ष आधारित हैं और साहित्य में भाषा का प्रयोग उसके जन्म के साथ नहीं हो जाता। जब किसी भाषा में जन्मने के बाद कुछ प्रौढ़ता आ जाती है, उसका रूप कुछ निखर आता है तथा वह बहुस्वीकृत हो जाती है, तभी साहित्यकार उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। इस तरह यदि लगभग 1150 ई. के आस-पास से भी हिंदी साहित्य मिले तो उस भाषा आरंभ 1000 ई. के आस-पास ही मानना पड़ेगा।

1.3 विकास अथवा इतिहास

हिंदी भाषा 1000 ई. में जन्म कर विकसित होते-होते अब लगभग 1000 वर्षों की हो गई है। उसके इन 1000 वर्षों के इतिहास अथवा विकास को तीन भागों में बांटा जाता है : आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल। यहाँ इन तीनों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है–

1.4 आदिकाल (1000 ई. से 1500 ई.)

हिंदी भाषा अपने आदिकाल में सभी बातों में अपभ्रंश के बहुत अधिक निकट थी, क्योंकि उसी से हिंदी का उद्भव हुआ था। आदिकाल की हिंदी की मुख्य विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं।

1.4.1 ध्वनि–

आदिकाल की हिंदी में मुख्यतः उन्हीं ध्वनियों (स्वर-व्यंजनों) का प्रयोग मिलता है, जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थी। मुख्य अंतर ये हैं :

(1) अपभ्रंश में केवल आठ स्वर थे – अ, आ, ई, ई, उ, ई, ए, ओ। ये आठों ही स्वर मूल थे। आदिकालीन हिंदी में दो नए स्वर ऐ, औ विकसित हो गए, जो संयुक्त स्वर थे तथा जिनका उच्चारण क्रमशः अऍ, अओ – जैसा था।

---

[1] उर्दू को भी हिंदी की एक शैली के रूप में इस विकास में समाहित कर लिया गया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(2) च, छ, ज, झ, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे, किंतु आदिकालीन हिंदी में ये स्पर्श-संघर्षी हो गये और तब से अब तक स्पर्श-संघर्षी ही हैं।

(3) न, र, ल, स, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में दंत्य ध्वनियां थीं। आदिकाल में ये वर्त्स्य हो गई।

(4) अपभ्रंश में ड़, ढ़, व्यंजन नहीं थे। आदिकाल की हिंदी में इनका विकास हुआ।

(5) न्ह, म्ह, ल्ह, पहले संयुक्त व्यंजन थे, अब वे क्रमशः न, म, ल, के महाप्राण रूप हो गए, अर्थात् संयुक्त, न रहकर मूल व्यंजन हो गए।

(6) फारसी, पश्तो, तुर्की आदि से कुछ नए शब्दों के आ जाने के कारण कुछ नए संयुक्त व्यंजन हिंदी में ऐसे आ गए जो अप्रभंश में नहीं थे। कुछ अपभ्रंश शब्दों के लोप हो जाने के कारण कुछ ऐसे संयुक्त व्यंजनों, स्वरानुक्रमों (vowel sequence) तथा व्यंजनानुक्रमों (consonant sequence आदि के लोप की भी संभावना है जो अपभ्रंश में रहे होंगे।

1.4.2 व्याकरण–

आदिकाल हिंदी का व्याकरण 1000 ई. के आस-पास अपभ्रंश के बहुत निकट था। भाषा में काफी रूप ऐसे थे जो अपभ्रंश के थे। किंतु धीरे-धीरे अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप कम होते गए और हिंदी के अपने रूप विकसित हो गए, तथा धीरे-धीरे 1500 ई. तक आते-आते हिंदी अपने पैरों पर खड़ी हो गई और अपभ्रंश के रूप प्रायः प्रयोग से निकल गए। आदिकालीन हिंदी का व्याकरण समवेततः अपभ्रंश व्याकरण से इन बातों में भिन्न है :

(1) अपभ्रंश संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि की तुलना में वियोगात्मक होते हुए भी एक सीमा तक संयोगात्मक भाषा थी। काफी क्रिया रूप तथा कारकीय रूप संयोगात्मक होते थे, किंतु आदिकालीन हिंदी में वियोगात्मक रूपों का प्राधान्य हो चला। सहायक क्रियाओं तथा परसर्गों का प्रयोग काफी होने लगा और धीरे-धीरे संयोगात्मक रूप कम होते गए ओर उनका स्थान वियोगात्मक रूप लेते गए।

(2) नपुंसकलिंग एक सीमा तक अपभ्रंश में था यद्यपि संस्कृत, पालि, प्राकृत की तुलना में उसकी स्थिति अस्पष्ट-सी होती जा रही थी। आदिकालीन हिंदी में नपुंसकलिंग का प्रयोग प्रायः पूर्णतः समाप्त हो गया। गोरखनाथ में कुछ प्रयोगों को कुछ लोगों ने नपुंसकलिंग का माना है, किंतु यह मान्यता पूर्णतः संदिग्ध नहीं कही जा सकती।

(3) हिंदी वाक्य रचना शब्द-क्रम धीरे-धीरे निश्चित होने लगा था। अपभ्रंश में शब्द-क्रम बहुत निश्चित नहीं था।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.4.3 शब्द-भंडार–

आदिकालीन हिंदी का शब्द-भंडार अपने प्रारंभिक चरण में अपभ्रंश का ही था किंतु धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन आते गए, जिनमें उल्लेख दो-तीन हैं :

(1) भक्ति-आंदोलन का प्रारंभ हो गया था, अतः तत्सम शब्दावली, आदिकालीन हिंदी में अपभ्रंश की तुलना में कुछ बढ़ने लगी थी।

(2) मुसलमानों के आगमन से कुछ पश्तो, फारसी-अरबी, तुर्की शब्द हिंदी में आएं उदाहरणार्थ 'गोरखबानी' में अकलि, नूर, अलह, काजी, 'पृथ्वीराज रासो' में अब्बीर, नजर, सोर, गाजी, समसेर, 'चंदायन' में खून, तुरसी, मीर आदि।

(3) भक्ति आंदोलन तथा मुसलमानों शासन का प्रभाव समाज पर भी पड़ा और जिसके परिणामस्वरूप इस बात की भी संभावना हो सकती है फिर कुछ ऐसे पुराने शब्द जो अपभ्रंश में प्रचलित थे, इस काल में अनावश्यक होने के कारण या तो हिंदी शब्द भंडार से निकल गए या फिर उनका प्रयोग बहुत कम हो गया।

1.4.4 साहित्य में प्रयोग

इस काल में साहित्य में प्रमुखतः डिंगल मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है। इस काल के प्रमुख हिंदी साहित्याकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति, नाल्ह, चन्दबरदायी, कबीर तथा शाह मीराजी आदि हैं।

1.4.5 बोध प्रश्न

(1) इस काल में साहित्य में प्रमुखतः किस भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है?

(क) डिंगल (ख) मैथिली (ग) अपभ्रंश (घ) खड़ी बोली

(2) इनमें से कौन आदिकाल के कवि हैं ?

(क) सूरदास (ख) विद्यापति (ग) रामधारी सिंह 'दिनकर' (घ) मीरा

1.5 मध्यकाल (1500 ई. से 1800 ई. तक)

1.5.1 ध्वनि–

इस काल में आकर ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-भंडार के क्षेत्र में मुख्यतः आगे दिए गए परिवर्तन हुए। ध्वनि के क्षेत्र में दो-तीन बातें उल्लेखनीय है।

(1) फारसी की शिक्षा की कुछ व्यवसथा तथा दरबार में फारसी भाषा का प्रयोग होने से उच्च वर्ग में तथा नौकरी पेशा लोगों में फारसी का प्रचार हुआ, जिसके कारण उच्च वर्ग के लोगों की हिंदी में

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

तुर्की-अरबी-फारसी के काफी बाद प्रचलित हो गए और क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ये पाँच नये व्यंजन हिंदी में आ गए।

(2) शब्दांत का 'अ' कम-से-कम मूल व्यंजन के बाद होने पर लुप्त हो गया अर्थात् 'राम्' का उच्चारण 'राम्' होने लगा। मानस के अनेक छंद दोषपूर्ण हो जाएंगे यदि उनमें 'राम्' न पढ़कर 'राम' पढ़ा जाए : 'राम-राम' कहि रामकही राम राम कही राम'। किंतु 'भक्त' जैसे शब्दों में जहाँ अ के पूर्व संयुक्त व्यंजन था, 'अ' बना रहा कुछ स्थितियों में अक्षरांत 'अ' का भी लोप होने लगा। उदाहरण के लिए आदिकालीन 'जपता' अब उच्चारण में 'जुप्ता' हो गया।

(3) ह के पहले का अ कुछ परिस्थितियों में 'ए' जैसा उच्चारित होने लगा था। पांडुलिपियों में ऐसे 'अ' के स्थान पर 'ए' के प्रयोग से इस बात का अनुमान लगता है।

1.5.2 व्याकरण–

व्याकरण के क्षेत्र में भी मुख्यत: तीन ही बातें उल्लेख्य हैं :

(1) इस काल में हिंदी भाषा व्याकरण के क्षेत्र में पूरी तरह अपने पैरों पर खड़ी हो गई। अपभ्रंश के रूप हिंदी से प्राय: निकल गए। जो कुछ बचे थे, वे थे जिन्हें हिंदी ने आत्मसात् कर लिया था।

(2) भाषा, आदिकालीन भाषा की तुलना में और भी वियोगात्मक हो गई। संयोगात्मक रूप और भी कम हो गए। परसर्गों तथा सहायक क्रियाओं का प्रयोग बढ़ गया।

(3) उच्च वर्ग में फारसी का प्रचार होने के कारण हिंदी वाक्य-रचना फारसी वाक्य-रचना से प्रभावित होने लगी थी। उदाहरण के लिए हिंदी की प्रारंभिक परंपरा के अनुकूल सूर में आता है। 'इन्द्र कह्यो मम करो सहाई'। यहाँ 'कि' का प्रयोग नहीं है, किंतु बाद में फारसी शब्द 'कि' के प्रयोग से युक्त वाक्य बनने लगे। राम प्रसाद निरंजनी के 'भाषा योगवासिष्ठ (1741) में आता है। 'वेद में एक ठौर कहा है कि जब लग जीवता रहे तब लग कर्म को करना'।

1.5.3 शब्द-भंडार–

शब्द-भंडार की दृष्टि से ये बातें मुख्य हैं :

(1) इस काल में आते-आते काफी शब्द फारसी (लगभग 3500), अरबी (लगभग 2500), तथा पश्तो (लगभग 125) से हिंदी में आ गए और इन आगत विदेशी शब्दों की संख्या लगभग 5000 से ऊपर हो गई। फारसी के कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी आईं।

(2) भक्ति आंदोलन के चरम बिंदु पर पहुँचने के कारण तत्सम शब्दों का अनुपात भाषा में और भी बढ़ गया।

(3) यूरोप के संपर्क होने के कारण कुछ पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी, तथा अंग्रेजी शब्द भी हिंदी में आ गए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1.5.4 साहित्य में प्रयोग

इस काल में धर्म की प्रधानता के कारण राम-स्थान की भाषा अवधी तथा कृष्ण-स्थान की भाषा ब्रज में भी विशेष रूप से साहित्य रचा गया। यों दक्खिनी, उर्दू, डिंगल, मैथिली और खड़ी बोली में भी साहित्य-रचना हुई। इस काल में प्रमुख साहित्यकार जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, केवल, बिहारी, भूषण, देव, बुरहानुद्दीन, नुसरती, कुलीकुतुबशाह, वजही तथा वली आदि हैं।

1.5.5 - बोध प्रश्न

(1) सूरदास की काव्य-भाषा क्या है?

(2) इनमें से कौन मध्यकालीन भक्त कवि हैं?

(क) तुलसीदास (ख) सूरदास (ग) मीरा (घ) महादेवी वर्मा

1.6 आधुनिकाल (1800 ई. से अब तक)

1.6.1 ध्वनि–

आधुनिककालीन हिंदी में ध्वनि के क्षेत्र में चार-पाँच बातें उल्लेख्य हैं :

(1) आधुनिक काल में शिक्षा के व्यवस्थित प्रचार के कारण तथा प्रारंभ में हिंदी प्रदेश में अनेक क्षेत्रों में कचहरियों की भाषा उर्दू होने के कारण क़, ख़, ग़, ज़, फ़, जो मध्यकाल में केवल उच्च वर्ग के या फारसी पढ़े-लिखे लोगों तक प्रचलित थे, इस काल में प्रायः 1947 तक सुशिक्षित लोगों में खूब प्रचलित हो गए, किंतु स्वतंत्रता के बाद स्थिति बदली और अंग्रेजी में प्रयुक्त होने के कारण ज़, फ़ तो एक सीमा तक अब भी प्रयोग में है किंतु क, ख, ग, के शुद्ध प्रयोग में कमी आई है। नई पीढ़ी, कुछ अपवादों को छोड़कर इनके स्थान पर प्रायः क़, ख़, ग़ बोलने लगी है। हां हिंदी की उर्दू शैली में इन पाँचों का ठीक उच्चारण होता है।

(2) अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ बहुशिक्षित लोगों में (कॉलिज, डॉक्टर, ऑफिस, कॉफी आदि में) 'ऑ' ध्वनि भी हिंदी में प्रयुक्त हो रही है। यों सामान्य लोग इसके स्थान पर आ का प्रयोग करते हैं।

(3) अंग्रेजी शब्दों के प्रचार के कारण कुछ नए संयुक्त व्यंजन (जैसे ड्र) हिंदी में प्रयुक्त होने लगे।

(4) स्वरों में ऐ, औ हिंदी में आदिकाल में आए थे। उस समय इनका उच्चारण अए, अओ, जैसा था, अर्थात् ये संयुक्त स्वर थे। आधुनिक काल में मुख्यतः 1940 के बाद ऐ और औ की स्थिति कुछ भिन्न हो गई है। इस संबंध में तीन बातें उल्लेख हैं :

(क) पश्चिमी हिंदी क्षेत्र में ये स्वर सामान्यतः मूल स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं।

(ख) पूर्वी हिंदी में अब भी ये अऍ अओ रूप में संयुक्त स्वर के रूप में ही प्रयुक्त हो रहे हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

(ग) नैया, वैयाकरण कौआ जैसे शब्दों में, पश्चिमी तथा पूर्वी दोनों ही हिंदी क्षेत्र में ऐ, औ का उच्चारण क्रमशः संयुक्त स्वर अइ, अउ रूप में अर्थात् संस्कृत उच्चारण के समान होता है।

(5) मध्यकाल में अ का लोप शब्दांत में तथा कुछ स्थितियों में अक्षरांत में होना आरंभ हुआ था। आधुनिक काल तक आते-आते यह प्रक्रिया पूरी हो गई है। अब हिंदी में उच्चारण में कोई भी शब्द अकारांत नहीं है।

(6) व ध्वनि आदि तथा मध्यकाल में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः द्वयोष्ठ्य रूप में उच्चरित होती थी, अब वह कुछ अपवादों को छोड़कर हिंदी के काफी शब्दों में कम-से-कम पश्चिमी क्षेत्र में दंतोष्ठ्य रूप में उच्चरित होती है। संभावना यह है कि द्वयोष्ठ्य व का प्रयोग धीरे-धीरे बहुत कम रह जाएगा या समाप्त हो जाएगा।

1.6.2 व्याकरण– व्याकरण की दृष्टि से अधोलिखित बातें कहीं जा सकती हैं :

(1) आदिकाल में हिंदी की विभिन्न बोलियों के व्याकरणिक अस्तित्व का प्रारंभ हो गया था, किंतु काफी व्याकरणिक रूप ऐसे थे, जो आस-पास के क्षेत्रों में समान थे। मध्यकाल में उनमें इस प्रकार के मिश्रण में काफी कमी हो गई थी। सूर, बिहारी, देव आदि की ब्रजभाषा तथा जायसी, तुलसी आदि की अवधी इस बात का प्रमाण है। आधुनिक काल तक आते-आते ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि कई बोलियों का व्याकरणिक अस्तित्व इतना स्वतंत्र हो गया है कि उन्हें बड़ी सरलता से भाषा की संज्ञा दी जा सकती है।

(2) हिंदी प्रायः पूर्णतः एक वियोगात्मक भाषा हो गई है।

(3) प्रेस, रेडियो, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण आदि के प्रभाव से हिंदी व्याकरण के रूप में काफी स्थिर हो गये हैं तथा कुछ अपवादों को छोड़कर हिंदी का स्वरूप सुनिश्चित हो चुका है। भाषा के इस स्थिरीकरण में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मुख्य हाथ रहा है।

(4) कहा जा चुका है कि मध्यकाल में हिंदी वाक्य रचना एक सीमा तक फारसी से प्रभावित हुई थीं आधुनिक काल में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार, फारसी की तुलना में कहीं अधिक हुआ। साथ ही समाचार-पत्रों, रेडियो तथा सरकारी कामों में प्रयोग के कारण भी अंग्रेजी हमारे अधिक निकट आई। इन सबका परिणाम यह हुआ है कि हिंदी भाषा वाक्य-रचना, मुहावरे तथा लोकोक्तियों के क्षेत्र में अंग्रेजी से बहुत अधिक प्रभावित हुई है।

(5) इधर कुछ वर्षों से 'कीजिए' के 'करिये', 'मुझे' के लिए 'मेरे को', 'मुझ से' के लिए 'मेरे से', 'तुझ में' के लिए 'तेरे में', नहीं जाता है' के स्थान पर 'नहीं जाता', 'नहीं जा रहा है' के स्थान पर 'नहीं जा रहा', जैसे नए रूपों तथा नई वाक्य-रचना का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अर्थात् हिंदी भाषा रूप-रचना तथा वाक्य-रचना दोनों ही क्षेत्रों में परिवर्तित हो रही है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.6.3 शब्द-भंडार

शब्द-भंडार की दृष्टि से 1800 से अब तक के आधुनिक काल को मोटे रूप से छः सात उपकालों में विभाजित किया जा सकता है। 1800 से 1850 तक का हिंदी शब्द-भंडार मोटे रूप से वही था जो मध्यकाल के अंतिम चरण में था। अंतर केवल यह था कि धीरे-धीरे अंग्रेजी के अधिकाधिक शब्द हिंदी भाषा में आते जा रहे थे। 1850 से 1900 तक अंग्रेजी के और शब्दों के आने के अतिरिक्त आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ा और कुछ पुराने तद्भव शब्द परिनिष्ठित हिंदी से निकल गए। उदाहरण के लिए 'इंद्री' निकल गया और 'इंद्रिय' आ गया। यद्यपि 'इंद्री' का बहुवचन 'इंद्रियाँ' अब तक चल रहा है। 1900 के बाद द्विवेदी काल तथा छायावादी काल में अनेक कारणों से तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ना आरंभ हो गया। प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा का पूरा साहित्य इस दृष्टि से दर्शनीय है। इसके बाद प्रगतिशील आंदोलन के कारण तद्भव शब्दों के प्रयोग में पुनः वृद्धि हुई तथा तत्सम शब्दों के प्रयोगों में कुछ कमी आई। 1947 तक लगभग यही स्थिति रही। 1947 के बाद के शब्द-भंडार में कई बातें उल्लेख हैं :

(क) अनेक पुराने शब्द नए अर्थों में प्रचलित हो गए हैं। उदाहरण के लिए 'सदन' शब्द राज्यसभा तथा लोकसभा के लिए प्रयुक्त हो रहा है।

(ख) अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक नए शब्द (जैसे फ़िल्माना, घुसपैठिया) आ गए हैं।

(ग) साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता की भाषा प्रायः बोलचाल के बहुत निकट आ गई है; उसमें अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी के जन-प्रचलित शब्दों का काफी प्रयोग हो रहा है, किंतु आलोचना की भाषा अब भी एक सीमा तक तत्सम शब्दों से काफी लदी हुई है।

(घ) इधर हिंदी को पारिभाषिक शब्दों की बहुत आवश्यकता पड़ी है, क्योंकि हिंदी अब विज्ञान, वाणिज्य, विधि आदि की भी भाषा है। इसकी पूर्ति के लिए अनेक शब्द अंग्रेजी, संस्कृत आदि से लिए गए हैं तथा अनेक नए शब्द बनाए गए हैं। स्वतंत्रता के पूर्व हिंदी में मुश्किल से 5-6 हजार पारिभाषिक शब्द थे किंतु उनकी संख्या एक लाख से ऊपर है और दिनों-दिन उसमें वृद्धि होती जा रही है। हिंदी शब्द-भंडार अनेक प्रभावों को ग्रहण करते हुए नए शब्दों से समृद्ध होते हुए दिनों-दिन अधिक समृद्ध होता जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप हिंदी अपनी अभिव्यंजना में अधिक सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ होती जा रही है।

1.6.4 साहित्य में प्रयोग

आधुनिक काल राजनीति का है। अतः भारतीय राजनीति के केंद्र दिल्ली की भाषा खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि को पीछे छोड़ प्रायः हिंदी क्षेत्र की साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक मात्र माध्यम बन गई है। अन्य बोलियों मे यदि कुछ लिखा भी जा रहा है तो अपवादस्वरूप। यही खड़ी बोली हिंदी हमारी राजाभाषा भी बन गई है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1.6.5 - बोध प्रश्न

(1) आधुनिककाल का समय क्या माना गया है ?

(2) भारत की राजभाषा क्या है?

1.7 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार हिंदी भाषा संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश से होती हुई विकसित होती है। हिंदी भाषा के विकास का इतिहास 1000 वर्षों का है जिसका अध्ययन हमने तीन चरणों - आदिकाल, मध्यकाल तथा आधुनिककाल के अंतर्गत किया है। आदिकाल का समय 1000 ई. से 1500 ई. तक का माना जाता है और इसकी अवधि में हिंदी के अनेक रूप जैसे 'डिंगल', 'पिंगल' हिंदी भी विकसित होती है।

मध्यकाल जिसका समय 1500 ई. से 1800 ई. तक माना गया है। यह वह समय है जब हिंदी की प्राकृत बोलियाँ विशेषकर ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली विकसित होकर सामने आती हैं तथा खड़ी बोली गद्य के विकास का सूत्रपात हमें इसी युग में दिखाई देने लगता है।

आधुनिक काल जिसका समय 19वीं सदी से आरंभ होता है और वह समय है जब हमें हिंदी साहित्य में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग दिखाई देता है। गद्य की सभी विधाओं यथा - निबंध, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि का विकास होता है। हिंदी खड़ी बोली के विकास के आरंभिक चरण में चार महानुभावों - लल्लू जी लाल, सदासुख लाल, सदल मिश्र तथा इंशा अल्ला खां का महत्वपूर्ण योगदान दिखाई देता है और आगे चलकर हिंदी के दो मूर्धन्य साहित्यकारों भारतेंदु तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी के योगदान से खड़ी बोली एक व्यवस्थित मानक रूप ग्रहण करती है।

आगे चलकर 1947 में देश आजाद होता है और हिंदी साहित्य में कई स्तर पर परिवर्तन दिखाई देते हैं। 1965 में हिंदी को हिंदी सेवियों के अथक प्रयासों से राजभाषा का दरजा प्राप्त होता है। आज हिंदी सारे देश में बोली और समझी जाने वाली भाषा है। वह अनेक रूकावटों के बाद भी विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं को अपने साथ लेकर अंतरराष्ट्रीयता की ओर अग्रसित हो रही है।

1.8 अभ्यास प्रश्न

(1) आदिकालीन हिंदी की व्याकरणिक विशेषताओं को बताइए।

(2) हिंदी भाषा के योगदान में मध्यकाल की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

(3) आधुनिककाल में हिंदी के विकास के चरण को स्पष्ट कीजिए।

(4) हिंदी भाषा के विकास को संक्षेप में बताइए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1.9 संदर्भ-ग्रंथ

1. '*हिंदी : उद्भव विकास और रूप*' - हरदेव बाहरी
2. '*हिंदी और उसकी विविध बोलियाँ*' - कैलाश तिवारी
3. '*हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप*' - अंबा सुमन प्रसाद
4. '*हिंदी भाषा का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ*' - भोलानाथ तिवारी
5. '*हिंदी भाषा का उद्गम और विकास*' - उदय नारायण तिवारी
6. '*हिंदी भाषा का इतिहास*' - धीरेंद्र वर्मा (भूमिका)
7. '*हिंदी भाषा का उद्गम और विकास*' - उदय नारायण तिवारी (भूमिका)
8. '*हिंदी भाषा*' - भोलानाथ तिवारी (भूमिका)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2. हिंदी भाषा की बोलियों का परिचय

लेखक–स्व. प्रो. भोलानाथ तिवारी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 हिंदी और उसकी बोलियों का अंतःसंबंध
2.2.1 बोध प्रश्न
2.3 हिंदी भाषा का भौगोलिक विस्तार
2.3.1 हिंदी क्षेत्र
2.3.2 अन्य भाषा क्षेत्र
2.3.3 भारतेतर क्षेत्र
2.3.4 बोध प्रश्न
2.4 हिंदी भाषा की बोलियाँ
2.4.1 बोध प्रश्न
2.5 भारत की अन्य भाषाओं के क्षेत्र में हिंदी बोलियाँ
2.6 भारत के बाहर बोली जाने वाली बोलियाँ
2.7 ब्रज, खड़ी बोली तथा अवधी : विशेष परिचय
2.8 सारांश
2.9 अभ्यास प्रश्न
2.10 संदर्भ–ग्रंथ

2.0 अधिगम का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम हिंदी तथा उसकी बोलियों के संबंध को बताते हुए हिंदी की बोलियों की सामान्य विशेषताओं की चर्चा कर रहे हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- हिंदी भाषा तथा उसकी बोलियों के अंतःसंबंध को समझ सकेंगे।
- हिंदी भाषा के भौगोलिक विस्तार को जान सकेंगे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

- हिंदी भाषा क्षेत्र की बहुभाषिकता को समझ सकेंगे।
- हिंदी क्षेत्र की बोलियों के भाषिक समूहों को जान सकेंगे।
- विभिन्न बोलियों के क्षेत्रीय विस्तार से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी की बोलियों के विविध स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

संपूर्ण भारतीय भाषाओं का विकास क्रम आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के साथ जुड़ा हुआ है। कभी–कभी हिंदी का अर्थ बोलचाल की खड़ी बोली के अर्थ में लिया जाता है तो कभी–कभी साहित्यिक हिंदी के अर्थ में। उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान भारत के हिंदी भाषी राज्य माने जाते हैं और इन राज्यों में बोली जाने वाली बोलियां हिंदी की बोलियाँ कही जाती हैं। हिंदी की विभिन्न बोलियों को पाँच भाषिक वर्गों में बांटा गया है। इस इकाई में हम इन भाषिक वर्गों की बोलियों का अध्ययन करने के क्रम में इनकी संरचना के साथ–साथ इनके सामाजिक–साहित्यिक महत्त्व का भी अध्ययन करेंगे।

2.2 हिंदी और उसकी बोलियों का अंतः संबंध

हिंदी भाषा और उसकी सभी बोलियों का मूल स्रोत संस्कृत भाषा है। संस्कृत भाषी लोग, जिन्हें आर्य नाम से अभिहित किया जाता है, लगभग 1500 वर्ष ई. पू. में भारत आए तथा धीरे-धीरे प्रायः पूरे उत्तरी भारत में फैल गए। यहाँ बसने के बाद कुछ ही दिनों में उनकी भाषा में परिवर्तन आने लगे तथा उस भाषा (वैदिक संस्कृत) की कम-से-कम तीन बोलियाँ स्पष्ट रूप से विकसित हो गईं। इतनी जल्दी इन अलग-अलग बोलियों के विकास के मुख्यतः दो कारण थे। एक तो यह कि यह भाषा इतने लंबे-चौड़े क्षेत्र में फैल गई है कि इतने सुदूर प्रदेशों के लोगों का आपस में मिलना-जुलना संभव नहीं रहा, अतः अलग-अलग स्थानीय भाषा-रूपों का विकास अवश्यंभावी हो गया। दूसरे स्थान-स्थान पर आर्यों के पूर्व की जो मूल या पुरानी जातियाँ (जैसे द्रविड़ आदि) थीं, उनसे एक सीमा तक इनके रोटी-बेटी के संबंध हो गए और इस सामाजिक मिश्रण ने भाषा के स्थानीय रूपों के विकास में और भी तेजी ला दी, क्योंकि इससे न केवल उस भाषा का शब्द-भंडार प्रभावित हुआ, बल्कि व्याकरण भी अप्रभावित नहीं रह सका। बहुत से विद्वानों का विचार है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में परसर्गों, संयुक्त क्रियाओं तथा कृदंताधारित क्रिया रूपों की जो प्रवृत्ति है, उनके मूल में इन आर्य-पूर्व जातियों की भाषाओं का प्रभाव है।

इस प्रसंग में यह उल्लेख्य है कि वैदिक साहित्य की भाषा के विश्लेषण से इस बात के काफी स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि उस काल में बोल-चाल में कम-से-कम तीन बोलियाँ थीं – पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

बाद में बोलचाल की संस्कृत का विकास जब पालि भाषा के रूप में हुआ– वह पालि भाषा जिसमें बौद्ध धर्म के बहुत से ग्रंथ लिखे गए– तो स्वभावतः स्थानीय बोलियों की संख्या और भी बढ़ गई। अशोक के शिलालेख (जो लोक-भाषा में है) के अध्ययन से इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि उसमें कम-से-कम चार बोलियों थीं। अर्थात् वैदिककालीन तीन बोलियों की संख्या में एक (दक्षिणी) की वृद्धि हो गई थी।

पालि के बाद भाषा का जो जन प्रचलित रूप था, उसके स्थानीय रूप छः-सात विकसित हो गए, ब्राचड (आधुनिक सिंध), केकय (आधुनिक मुलतान तथा आस-पास), टक्क (आधुनिक पूर्वी पंजाब), शौरसेनी (आधुनिक गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, पश्चिमी तथा उत्तरी प्रदेश, मध्य प्रदेश के मध्य उत्तर तथा पश्चिम का काफी बड़ा भाग), महाराष्ट्री (आधुनिक महाराष्ट्र, गोवा तथा कर्नाटक और आंध्र के उत्तरी भाग), अर्धमागधी (आधुनिक उत्तर प्रदेश के लखनऊ, इलाहाबाद आदि के आस-पास का भाग, मध्य प्रदेश का रीवां तथा पूरा छत्तीसगढ़) तथा मागधी (आधुनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश, पूरा बिहार, असम, बंगाल, बंगला देश तथा उड़ीसा)। इनमें आपस में इतने स्पष्ट अंतर विकसित हो गए थे कि प्राकृत के व्याकरण ग्रंथों में इनकी अलग-अलग विशेषताओं के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। प्राकृत काल के बाद भी बोलचाल की भाषा के विकसित रूप को अपभ्रंश नाम दिया गया है। इस काल में प्राकृत काल के ये सात रूप कम-से-कम बारह-तेरह रूपों में विकसित हो गए, जिनके लिए नामों का निर्धारण नहीं हुआ। सुविधा के लिए आधुनिक नामों के आधार पर नाम देकर प्राकृत काल, अपभ्रंशकाल तथा आधुनिक काल की भाषाओं और बोली वर्गों की स्थिति को इस प्रकार दिखाया जा सकता है–

प्राकृत	**अपभ्रंश**	**आधुनिक भाषाएँ या बोली वर्ग**
ब्राचड–	ब्राचड–	सिंधी
केकय–	केकय–	लहंदा (पश्चिमी पंजाब)
टक्क–	टक्क–	पंजाब (पूर्वी पंजाब)
शौरसेनी–	(क) गुजराती शौरसेनी–	गुजराती
	(ख) राजस्थानी शौरसेनी	राजस्थानी (बोली वर्ग)
	(ग) पश्चिमी हिंदी शौरसेनी	पश्चिमी हिंदी (बोली वर्ग)
	(घ) पहाड़ी शौरसेनी–	पहाड़ी (बोली वर्ग)
अर्धमागधी–	अर्धमागधी–	पूर्वी हिंदी (बोली वर्ग)
मागधी–	(क) बिहारी मागधी–	बिहारी (बोली वर्ग)
	(ख) बंगाली मागधी–	बंगला
	(ग) असमी मागधी–	असमी
	(घ) उड़िया मागधी–	उड़िया
महाराष्ट्री–	महाराष्ट्री–	मराठी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

यह ध्यान देने की बात है कि हिंदी क्षेत्र की भाषा हिंदी है तथा उसे क्षेत्र में पाँच उपभाषाएँ या बोली वर्ग बोले जाते हैं : राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, पहाड़ी, बिहारी। ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि हिंदी और उसकी बोलियों का विकास तीन प्राकृतों (शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी) से विकसित पाँच अपभ्रंश (राजस्थानी अपभ्रंश, पश्चिमी हिंदी अपभ्रंश, पहाड़ी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश तथा बिहारी अपभ्रंश) से हुआ है।

हिंदी भाषा की बोलियाँ तीन प्रकार की हैं :

(क) हिंदी प्रदेश में प्रयुक्त (जैसे ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि)।

(ख) हिंदीतर भारतीय प्रदेशों में प्रयुक्त (जैसे दक्खिनी हिंदी, बंबइया हिंदी, कलकतिया हिंदी)।

(ग) विदेशों में प्रयुक्त (जैसे सूरीनामी हिंदी, फीजी हिंदी, मारीशस की हिंदी आदि)।

भारत के बाहर की प्रायः सभी हिंदी बोलियाँ मूलतः और मुख्यतः भोजपुरी पर आधारित हैं, अतः उनको भोजपुरी की विभिन्न उपबोलियाँ माना जा सकता है, जिन पर उन स्थानों की अपनी-अपनी मूल भाषाओं तथा यूरोपीय आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए मारीशसी पर फ्रांसीसी का तो सूरीनामी पर डच का। फीजी में अवधी का भी मिश्रण है। सोवियत संघ की ताजुज्बेकी मुझे प्राचीन मेवाती-ब्रज से संबद्ध लगती है जिस पर पंजाबी पश्तो, ताजिक-उज्बेक तथा रूसी का प्रभाव है।

भारत की हिंदीतर क्षेत्र की बोलियों में रूप तो खड़ी बोली, भोजपुरी, राजस्थानी आदि कई बोलियों के हैं, किंतु संभवतः इनका आधार खड़ी बोली को मान सकते हैं।

इन बातों को दृष्टि में रखते हुए हिंदी की बोलियों के अंतरसंबंधों को इस रूप में दिखाया जा सकता है।

पश्चिमी हिंदी तथा पहाड़ी बोलियाँ आपस में संबद्ध हैं किंतु पूर्वी हिंदी तथा बिहारी अलग हैं। अर्थात् हिंदी बोलियों के मूलतः तीन वर्ग हैं : शौरसेनी वर्ग, अर्धमागधी वर्ग तथा मागधी वर्ग। फिर प्रत्येक वर्ग की बोलियाँ आपस में जुड़ी हैं। यही नहीं एक वर्ग की बोलियाँ भी आपस में समान रूप से जुड़ी हैं। यह बात भी उपर्युक्त आरेख में संकेतित है, उदाहरण के लिए पश्चिमी हिंदी बोलियों में हरियाणी तथा कौरवी का आपस में अपेक्षाकृत घनिष्ठ संबंध है तो ब्रजभाषा और कनौजी का आपस में। बुंदेली अपेक्षाकृत थोड़ी अलग है। यह बात भाषिक संरचना की दृष्टि से कही जा रही है।

बंबइया और कलकतिया हिंदी खड़ी बोली के बोली रूप की तुलना में हिंदी के मानक रूप (खड़ी बोली) से अधिक संबद्ध हैं।

इस तरह बोलियों को उनका पूर्व इतिहास परस्पर संबंधित करता है किंतु भूगोल का भी इसमें अपना हाथ होता है। या इसे यों कहा जा सकता है कि संबद्ध इतिहास बोलियों को भौगोलिक दृष्टि से भी प्रायः निकट या दूर कर देता है। उदाहरण के लिए राजस्थानी बोलियाँ पश्चिमी हिंदी के अपेक्षाकृत निकट है, बनिस्बत बिहारी बोलियों के।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अंत में एक प्रश्न और! हिंदी से इन बोलियों का क्या संबंध है? यह ध्यान देने की बात है कि हिंदी की बोलियाँ उस रूप से विकसित नहीं हैं जैसे संस्कृत से प्राकृतों, या प्राकृत से एकाधिक अपभ्रंशों का विकास हुआ था। दूसरे शब्दों में हिंदी का उसकी बोलियों से मां-बेटी का सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः हिंदी इन्हीं बोलियों में एक (खड़ी बोली) के दिल्ली में प्रयुक्त रूप पर आधारित है, इस तरह विकासात्मक दृष्टि से हिंदी, अपनी बोलियों की भगिनी है। उसके भाषा माने जाने का कारण समाज भाषा वैज्ञानिक है। सामाजिक स्वीकृति से उसे भाषा दर्जा दिया गया है जबकि अन्य बोलियाँ, बोलियाँ ही रह गई हैं। ऐसी उसकी केंद्रीय स्थिति तथा साधु-संतों और दरवेशों एवं मुसलमान शासकों आदि के माध्यम से उसके अंतःप्रांतीय प्रचार आदि के कारण हुआ है।

2.2.1 बोध प्रश्न

पश्चिमी हिंदी का संबंध किससे है ?

(क) शौरसेनी (ख) मागधी (ग) अर्ध मागधी (घ) ब्राचड

2. अर्ध मागधी से किस हिंदी का विकास हुआ है ?

(क) बिहारी (ख) राजस्थानी (ग) पहाड़ी (घ) पूर्वी हिंदी

2.3 हिंदी भाषा का भौगोलिक विस्तार

हिंदी भाषा का भौगोलिक विस्तार काफी दूर-दूर तक है जिसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है–

2.3.1 हिंदी क्षेत्र

हिंदी क्षेत्र में मुख्यतः हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार आते हैं। गौणतः पंजाब के कुछ भाग तथा महाराष्ट्र के कुछ भाग भी इसमें आते हैं।

2.3.2 अन्य भाषा क्षेत्र

इसमें कर्नाटक तथा आंध्र के दक्खिनी हिंदी वाले भाग एवं कलकत्ता, बंबई तथा अहमदाबाद आदि भारत के अहिंदी भाषी क्षेत्र के बड़े नगरों में बिखरे हुए कुछ हिंदी भाषी छोटे-छोटे क्षेत्र आते हैं।

2.3.3 भारतेतर क्षेत्र

भारत के बाहर भी कई देशों में हिंदी भाषी लोग काफी बड़ी संख्या में बसे हैं। जैसे मारीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड आदि में। ऐसे ही नेपाल के भी सीमावर्ती इलाकों में हिंदी भाषी हैं। इनके अतिरिक्त कई देशों में थोड़े बहुत हिंदी भाषी हैं। जैसे इंग्लैंड में, लंदन में, सोवियत संघ में ताजाकिस्तान-उज्बेकिस्तान की सीमा पर, अफ्रीका में गियाना तथा दक्षिणी अफ्रीका में, अमेरिका के भी कई बड़े नगरों जैसे न्यूयार्क में। इनके अतिरिक्त हांगकांग, मलेशिया, सिंगापुर आदि पूर्वी देशों में भी हिंदी भाषी हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

2.3.4 बोध प्रश्न

(1) इनमें से कौन-से हिंदी क्षेत्र के नहीं है।

(क) हरियाणा (ख) मध्य प्रदेश (ग) तमिलनाडु (घ) दिल्ली

(2) हिंदी के भौगोलिक विस्तार में भारतेतर क्षेत्रों के नाम बताइए।

2.4 हिंदी भाषा की बोलियाँ

हिंदी भाषा की बोलियाँ क्षेत्र की दृष्टि से तीन प्रकार की हैं–

(क) हिंदी क्षेत्र की बोलियाँ

हिंदी क्षेत्र में हिंदी की मुख्यतः सोलह बोलियाँ बोली जाती हैं, जिन्हें पाँच बोली वर्गों में विभक्त करके इस प्रकार रखा जा सकता है–

उपभाषाएँ अथवा बोली वर्ग	बोलियाँ
1. पश्चिमी बोली	1. खड़ी बोली या कौरवी
	2. ब्रजभाषा
	3. हरियाणवी
	4. बुंदेली
	5. कन्नौजी
2. पूर्वी हिंदी	1. अवधी
	2. बघेली
	3. छत्तीसगढ़ी
3. राजस्थानी	1. पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी)
	2. पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी)
	3. उत्तरी राजस्थानी (मेवाती)
	4. दक्षिणी राजस्थानी (मालवी)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

4. पहाड़ी	1. पश्चिमी पहाड़ी
	2. मध्यवर्ती पहाड़ी (कुमांयूनी-गढ़वाली)
5. बिहारी	1. भोजपुरी
	2. मगही
	3. मैथिली

नीचे इन सबका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है–

खड़ी बोली

'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है। एक तो साहित्यिक हिंदी खड़ी बोली के अर्थ में और दूसरे, दिल्ली-मेरठ की आस-पास की लोक बोली के अर्थ में। यहाँ दूसरे अर्थ में ही शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। इसी अर्थ में कुछ लोग 'कौरवी' का भी प्रयोग करते हैं। कुरू जनपद की बोली होने के कारण राहुल सांकृत्यायन ने इसे यह नाम दिया था। 'खड़ी बोली' में 'खड़ी' शब्द का अर्थ विवादास्पद है। कुछ लोगों ने 'खड़ी' का अर्थ 'खरी' (pure) अर्थात् 'शुद्ध' माना है, तो दूसरों ने खड़ी (standing) कुछ अन्य लोगों ने इसका सम्बन्ध खड़ी बोली में अधिकता से प्रयुक्त खड़ी पाई (गया, बड़ा, का) तथा उसके ध्वन्यात्मक प्रभाव-कर्कशता से जोड़ा है। यों अभी तक यह प्रश्न अनिश्चित है। खड़ी बोली या कौरवी का उद्‌भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है तथा इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मेरठ, गाजियाबाद, दिल्ली का कुछ भाग, बिजनौर, रामपुर तथा मुरादाबाद है। लोक साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली बहुत संपन्न है और इसमें पवाड़ा नाटक, लोक कथा, लोकगीत आदि पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इनका काफी अंश प्रकाशित भी हो चुका है। हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी तथा दक्खिनी एक सीमा तक खड़ी बोली पर आधारित है। दीर्घ-स्वर के बाद मूल व्यंजन के स्थान पर द्वित्व व्यंजन (बेट्‌टा, बाप्पू, रोट्‌टी), महाप्राण के पूर्व इसी स्थिति में अल्पप्राण का आगम (देक्खा, भूक्खा), न का ण (अपणा, राणी, जाणा), न का ळ (काळा, नीळा), अवधी (घोड़ा) व्यंजनांत, ब्रज ओकारांत (घोरो) के स्थान पर आकारांत (घोड़ा) आदि इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं।

ब्रजभाषा

'ब्रज' का पुराना अर्थ 'पशुओं या गौओं का समूह या 'चारागाह' आदि है। पशु-पालन के प्राधान्य के कारण यह क्षेत्र कदाचित् ब्रज कहलाया, और इसी आधार पर इसकी बोली ब्रजभाषा अथवा ब्रजी कही जाती है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप में हुआ है। ब्रजभाषा, मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी, एटा, बदायूं, बरेली तथा आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती है। इसकी मुख्य उपबोलियाँ भरतपुरी, डांगी, माथुरी आदि हैं। साहित्य और लोक साहित्य दोनों की दृष्टियों से ब्रजभाषा बहुत संपन्न है। हिंदी प्रदेश के बाहर भी भारत के अनेक क्षेत्रों में ब्रजभाषा में साहित्य रचना होती रही। सूरदास, तुलसीदास, नंददास, रहीम, रसखान, बिहारी, देव, रत्नाकर आदि इसके प्रमुख कवि हैं। खड़ी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

बोली की आकारांतता के स्थान पर ओकारांतता (घोरो, भलो, छोरो, करेगो, बड़ो), व्यंजनांत के स्थान पर उकारांत (सबु भालु), के स्थान पर ने को का कूं, से का सो, पर का पै आदि इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं।

हरियाणवी

'हरियाणी' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। 'हरि-यान' (कृष्ण का यान द्वारका इधर से ही गया था), 'हरि+अरण्य' (हरा वन) तथा 'अहीर+आना' (राजपूताना, तिलंगाना की तरह) आदि कई मत दिये गये हैं, किंतु कोई भी सर्वमान्य नहीं है। हरियाणी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ। खड़ी बोली, अहीरवाटी, मारवाड़ी, पंजाबी से घिरी इस बोली को कुछ लोग खड़ी बोली का पंजाबी से प्रभावित रूप मानते हैं। उसका क्षेत्र मोटे-मोटे रूप से हरियाणा का कुछ भाग तथा दिल्ली पंजाब का पश्चिमी देहाती भाग है। इसकी मुख्य बोलियाँ जादू तथा बांगरू हैं। हरियाणी में केवल लोक साहित्य है, जिसका कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुका है। अनेक स्थानों पर ल का ळ (काळ, सोळ, माळा), एवं व्यंजन के स्थान पर द्वित्व (बाब्बू, भित्तर, गाड्डी), का ण (होणा), सहायक क्रिया हूं, हैं, है, हो के स्थान पर सं, सै, सैं, सो, ड़ का ड (बड़ा, पेड) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

बुंदेली

'बुंदेले' राजपूतों के कारण मध्य प्रदेश तथा उत्तर की सीमा-रेखा के झांसी, छतरपुर, सागर आदि तथा आस-पास के भागों को बुन्देलखंड कहते हैं। वहीं की बोली बुंदेली या बुंदेलखंडी है। इसका क्षेत्र झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सिवानी, होशंगाबाद तथा आस-पास का क्षेत्र है। बुंदेली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। बुंदेली में लोक साहित्य काफी है, जिसमें इसुरी के फाग बड़े प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि हिंदी प्रदेश की प्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' जिसे हिंदी साहित्य में भी स्थान मिला है, मूलतः बुंदेली की एक उपबोली बनाफरी में लिखा गया है। इसकी अन्य उपबोलियाँ राठोरी, लोधाती आदि हैं। ब्रज के ऐ, औ का ए, ओ (ओर, जेसो), अन्त्य अल्पप्राणीकरण (भूक, हात्, दूद, जीब), स का छ (सीढ़ी-छीड़ी), च का स (सांचे-साँसे) कर्म-संप्रदान में 'को' के स्थान पर खों, खां, खँ का प्रयोग इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

कन्नौजी

कन्नौज (संस्कृत कान्यकुब्ज) इस बोली का केंद्र है, अतः इसका नाम कन्नौजी पड़ा है। यह इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानुपर, हरदोई, पीलीभीत आदि में बोली जाती है। कन्नौजी शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है। यह ब्रजभाषा के इतनी अधिक समान है कि कुछ लोग इसे ब्रजभाषा की ही उपबोली मानते हैं। कन्नौजी में केवल लोक-साहित्य मिलता है, जिसमें कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुका है। उकारांतता (खातु, घरु, सबु), ओकारांतता (हमारो या हमाओ), इया (जिभिया, छोकरिया) तथा वा (बेटवा, बचवा), औ का उ (कउन), बहुवचन के लिए 'हवार' (हम हवार=हम लोग) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अवधी

इस बोली का केंद्र अयोध्या है। 'अयोध्या' का ही विकसित रूप 'अवध' है, जिससे 'अवधी' शब्द बना है। इसके उद्भव के संबंध में विवाद है। अधिकांश विद्वान इसका संबंध अर्धमागधी अपभ्रंश से मानते हैं' किन्तु कुछ लोग इसकी पालि से समानता के लिए आधार पर इस मत को नहीं मानते। अवधी का क्षेत्र लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, मिर्जापुर (अंशतः), उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़ बाराबंकी आदि है। अवधी में साहित्य तथा लोकसाहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्रा में हैं। इसके प्रसिद्ध कवि मुल्लादाऊद, कुतुबन, जायसी, उस्मान तथा सबलसिंह आदि हैं। ऐ, औ का अइ, अउ या अएं, अओं उच्चारण; संज्ञा के तीन रूप (घोर, घोरवा, घरौना), स्वार्थ का व्यापक प्रयोग (मोलवा, मोरवा), 'ह' (सईस-सहीस, इच्छा-हिंच्छा) या र का आगम (पसंद-परसंद, वियोग-विरोग), कुछ में महाप्राणीकरण पुनः फुनः, (पेड़-फेड़), व का ब (बिद्यार्थी, बिद्यालय), 'मौसा' के लिए 'मौसिया', व्यंजनांतता (घोड़ा-घोर, होत, होब, करत, बड़, खोट, नीक) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं। इसकी मुख्य बोलियाँ बैसवाड़ी, मिर्जापुरी तथा बनोधी हैं।

बघेली

बघेले राजपूतों के आधार पर रीवां तथा आस-पास का क्षेत्र बघेलखंड कहलाता है और वहाँ की बोली को बघेलखंडी या बेघली कहते हैं। बघेली का उद्भव अर्धमागधी अपभ्रंश के ही एक क्षेत्रीय रूप से हुआ है। यद्यपि जनमत इसे अलग बोली मानता है, किंतु भाषावैज्ञानिक स्तर पर यह अवधी की ही उपबोली ज्ञात होती है, और इसे दक्षिणी अवधी कह सकते हैं। इसका क्षेत्र रीवां, नागोद, शहडोल, सतना, मेहर तथा आस-पास का क्षेत्र है। कुछ अपवादों को छोड़कर बघेली में केवल लोक साहित्य है। सर्वनामों में मुझे के स्थान पर म्वां, मोही, तुहो के स्थान पर त्वां, तोही, विशेषण में हा प्रत्यय (नीकहा), घोड़ा का ध्वाड़, मोर का म्वार, पेट का प्याट, देत का द्यात आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

छत्तीसगढ़ी

मुख्य क्षेत्र छत्तीसगढ़ होने के कारण इसका नाम छत्तीसगढ़ी पड़ा है। अर्धमागधी अपभ्रंश के दक्षिण रूप से इसका विकास हुआ है। इसका क्षेत्र सरगुजा, कोरिया, बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग, नंदगांव, कांकेर आदि हैं। छत्तीसगढ़ी में भी केवल लोक साहित्य हैं छत्तीसगढ़ी की मुख्य उपबोलियाँ सुरगुजिया, सदरी, बगानी, बिझवाली आदि हैं। उड़िया तथा मराठी की सीमा पर की छत्तीसगढ़ी में ऋ का उच्चारण रु किया जाता है। कुछ शब्दों में महाप्राणीकरण (इलाका-इलाखा), अघोषीकरण (बंदगी-बंदकी, शराब-शराप, खराब-खराप), स का छ तथा छ का स (सीता-छीता, केना-सेना) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

पश्चिमी राजस्थानी

राजस्थानी का यह रूप पश्चिमी राजस्थान अर्थात् जोधपुर, अजमेर, मेवाड़, सिरोही, जैसलमेर आदि में बोली जाता है। इसे मारवाड़ी भी कहते हैं। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से इसका विकास हुआ है। मारवाड़ी में साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्रा में हैं। मीराबाई के पद इसी में लिखे

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

गए हैं। मारवाड़ी ढुंढारी, मेवाड़ी, सिरोही आदि इसकी उपबोलियाँ हैं। पश्चिमी राजस्थानी में ध और स को ब्लिक ध्वनियाँ हैं। से का सूँ या ऊं मैं का मांय, का, की, के का नो, नी ने आदि इसकी कुछ-कुछ विशेषताएँ हैं।

उत्तरी राजस्थानी

उत्तरी राजस्थान में इसका क्षेत्र अलवर, गुड़गांव, भरतपुर तथा आस-पास है। इसे मेवाती कहते हैं। मेवाती का नाम 'मेव' जाति के इलाके मेवात के नाम पर पड़ा है। इसकी एक मिश्रित बोली अहीरवाटी है जो गुड़गांव, दिल्ली तथा करनाल के पश्चिमी क्षेत्रों में बोली जाती है। अन्य बोलियाँ राठी, नहेर, कठर, गूजरी आदि हैं। इस पर हरियाणी का बहुत प्रभाव है। कर्त्ता कर्म में नै, कर्म-संप्र. मों, के करम, अपादान सें, तें, इसको, उनको, आदि के अतिरिक्त, बैंकों, कैहको, आदि विशेषताएँ हैं। मेवाती में केवल लोकसाहित्य है। उत्तरी राजस्थानी का उद्‌भव शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से हुआ है।

पूर्वी राजस्थानी

राजस्थान में पूर्वी भाग में जयपुर, अजमेर, किशनगढ़ आदि में यह बोली जाती है। इसकी प्रतिनिधि बोली जयपुरी है जिसका केन्द्र जयपुर है। जयपुरी को ढुंढाणी कहते हैं, क्योंकि इस क्षेत्र का पुराना नाम ढुंढाण है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित इस बोली में केवल लोक-साहित्य है। तोरावटी, काठेड़ा, चौरासी आदि मुख्य उपबोलियाँ हैं। इसकी कुछ विशेषताएँ अधिकरण में मालै, मैने के लिए मैंने, और मूने, पूर्णकृदन्त दीनू, लीनू आदि हैं।

दक्षिणी राजस्थानी

इंदौर, उज्जैन, देवास, रतलाम, भोपाल, होशंगाबाद में तथा आस-पास इनका क्षेत्र है। इसकी प्रतिनिधि बोली मालवी, है, जिसका मुख्य क्षेत्र मालवा है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित इस बोली में कुछ साहित्य तथा पर्याप्त लोक-साहित्य है। सोंडवाडी, रांगड़ी, पाटवीं, रतलामी आदि इसकी कुछ मुख्य बोलियाँ हैं। कर्म परसर्ग खे, रे, करण-अपा. ती, तारे संप्रत्र दे. सारू संबंध थाके, थाका, थाकी, इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

पश्चिमी पहाड़ी

जौनसार, सिरमौर, शिमला, मंडी, चंबा तथा आस-पास इसका क्षेत्र है। इसे प्रायः खस नामक एक कल्पित अपभ्रंश से विकसित माना जाता है, किंतु मेरे विचार में यह शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से विकसित है। पश्चिमी पहाड़ी में केवल लोक-साहित्य मिलता है। यह जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, चमेआलो, क्योंठली आदि का सामूहिक नाम है।

मध्यवर्ती पहाड़ी

शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित इस बोली का क्षेत्र गढ़वाल, कुमायूं तथा आस-पास का कुछ क्षेत्र है। वस्तुतः यह गढ़वाली और कुमायूंनी दो बोलियों का सामूहिक नाम है। इन बोलियों में लोक-साहित्य तो

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पर्याप्त मात्रा में है। साथ ही कुछ साहित्य भी है। कुमायूंनी मुख्य की उपबोलियाँ खसपर जिया, कुमैयां, गंगोया तथा गढ़वाली की राठी, बघानी, सलानी, टेहरी आदि हैं।

भोजपुरी

बिहार के शाहबाद जिले के भोजपुर गाँव के नाम के आधार पर इस बोली का नाम भोजपुरी पड़ा है, मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से विकसित इस बोली का क्षेत्र बनारस (अंशतः), जौनपुर (अंशतः), मिर्जापुर (अंशतः), गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरियां, आजमगढ़ बस्ती, शाहाबाद, आरा, छपरा, चंपारन, सारन तथा आस-पास का कुछ क्षेत्र है। हिंदी प्रवेश की बोलियों में भौजपुरी के बोलने वाले सबसे अधिक हैं। इसमें केवल लोक-साहित्य मिलता है। इधर कुछ वर्षों से साहित्य की रचना भी हुई है। ये दोनों ही पर्याप्त मात्रा में प्रकाशित हैं भोजपुरी की मुख्य उपबोलियाँ उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी तथा नागपुरिया हैं। स्वर मध्यम र का लोप (धरि, धइ, लरिका-लड़का, करि-कइ), ढ़ का ई (कार्हा), न्द का न्न, सुन्नर-सुंदर, म्भ का म्ह (खंभा-खम्हा), न का ल (लोट, लम्बर, लोटिस) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

मगही

संस्कृत 'मगध' के विकसित शब्द 'मगह' के आधार पर इसका नाम पड़ा है। मागधी अपभ्रंश से विकसित यह बोली पटना, गया, पलामू, हजारीबाग, मुंगेर, भागलपुर में तथा आस-पास बोली जाती है। इसमें लोक-साहित्य काफी है। पूर्वी, टलहा, जंगली आदि कुछ उपबोलियाँ हैं।

मैथिली

मागधी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से विकसित यह बोली हिंदी क्षेत्र और बंगाली क्षेत्र की संधि पर मिथिला में बोली जाती है। 'मिथिला' से ही इस बोली के नाम का संबंध है। दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया तथा मुंगेर आदि में इसका क्षेत्र है। लोक-साहित्य की दृष्टि से मैथिली बहुत संपन्न है, साथ ही इसमें साहित्य-रचना अत्यन्त प्राचीन काल से होती चली आई है। हिंदी साहित्य को विद्यापति जैसे रससिद्ध कवि देने का श्रेय मैथिली को ही है। इनके अतिरिक्त गोविंददास, रणजीतलाल, हरिमोहन झा आदि भी इसके अच्छे साहित्यकार हैं। इसकी मुख्य उपबोलियाँ उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी छिकाछिकी आदि हैं। अवधी की तरह तीन रूप (घोरा, घोरवा, घोरडवा) ड़ के स्थान पर र (घोरा, सरक), स, श, ष, का संयुक्त होने पर ह (मास्टर-महटर, पुष्प-पुहुप) हो जाना, ज़ का चं (मेज़ मेच, कमीज-कमेच) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

ऊपर जिन पाँच को उपभाषाएँ कहा गया है, उन्हें बोली-वर्ग भी माना जा सकता है। अर्थात् बोलियों का पश्चिमी हिंदी वर्ग, पूर्वी हिंदी वर्ग, राजस्थानी वर्ग, पहाड़ी वर्ग तथा बिहारी वर्ग।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.4.1 बोध प्रश्न

(1) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

(क) ब्रजभाषा ....की बोली है। (पूर्वी हिंदी/ पहाड़ी/ पश्चिमी हिंदी)

(ख) मेरठ ....का क्षेत्र है। (ब्रजभाषा/खड़ी बोली/ अवधी)

(ग) हरियाणवी ....में बोली जाती है। (छत्तीसगढ़/ करनाल/ जबलपुर)

2.5 भारत में अन्य भाषाओं के क्षेत्र में हिंदी बोलियाँ

इनमें तीन बोलियाँ मुख्य हैं–

दक्खिनी

दक्षिण भारत में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी नाम से अभिहित किया गया है। इनका मूल आधार दिल्ली के आस-पास की 14-15वीं सदी की खड़ी बोली है। मुसलमानों (फ़ौज, फकीर, दरवेश) के साथ यह भाषा वहाँ पहुँची तथा उत्तर भारत से जाने वाले मुसलमानों और हिन्दुओं द्वारा प्रयुक्त होने लगी। इसमें कुछ तत्त्व पंजाबी, हरियाणी, ब्रज तथा अवधी के भी हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों से भी लोग दक्षिण में गए, जिनके माध्यम से यह भाषा काफी कुछ मिश्रित हो गई है। इसका क्षेत्र मुख्यतः बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर तथा गौणतः बरार, बंबई तथा मध्य प्रदेश है। इस पर बाद में उर्दू का भी प्रभाव पड़ा, साथ ही तमिल, तेलगू तथा कन्नड़ का भी प्रभाव पड़ा, मुख्यतः शब्दसमूह के क्षेत्र में। इसमें काफी प्राचीन काल से साहित्य रचना हुई है। इसकी उपबोलियाँ गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी तथा हैदराबादी आदि हैं।

बंबइया हिंदी

यह बंबई नगर में बोली जाती है। इसका मूल आधार खड़ी बोली हिंदी है, किंतु इस पर मराठी, गुजराती आदि का प्रभाव पड़ा है। बंबइया हिंदी तकनीकी दृष्टि से पिजिन है, अर्थात् यह बोली तो है किंतु किसी की मातृबोली नहीं है, न उच्च वर्ग के लोग औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग करते हैं। हां, इस बोली का प्रयोग फिल्मों में तथा उसी अंचल से संबद्ध तथा साहित्य में अवश्य होता है। जगदंबाप्रसाद दीक्षित का उपन्यास 'मुर्दाघर' बंबइया हिंदी में ही लिखा गया है।

कलकतिया हिंदी

इसका प्रयोग कलकत्ता में होता है। यह भी पिजिन है। हिंदी की इस बोली पर बंगाल तथा भोजपुरी का काफी प्रभाव है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.6 भारत के बाहर बोली जाने वाली बोलियाँ

इनमें कुछ मुख्य ताजुज्बेबी (सोवियत संघ में ताजाकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान की सीमा के पास बोली जाती हैं), मारीशसी (मारीशस में), फीजी (फीजी में), सूरनामी (सूरीनाम में) तथा ट्रिनिडाड (ट्रिनिडाडी में) मुख्य हैं। इनमें ताज्जुबेकी का मूल आधार मेवाती लगता है जिस पर पंजाबी, ताजिक, उज्बैक तथा रूसी का प्रभाव पड़ा है। शेष का मुख्य आधार भोजपुरी है, तथा कुछ में कुछ अवधी तत्त्व भी हैं। साथ ही स्थानीय भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। कुछ यूरोपीय प्रभाव भी है। जैसे मारीशसी पर फ्रांसीसी प्रभाव है तो सूरनामी पर डच। ताजुज्बेकी को छोड़कर सभी पर आज की मानक हिंदी का प्रभाव पड़ा रहा है।

2.7 ब्रज, खड़ी बोली तथा अवधी : विशेष परिचय

ऊपर इनके बारे में कुछ बातें बताई गई हैं। यहाँ इनके संबंध में कुछ और बातें दी जा रही हैं :–

ब्रजभाषा – ब्रजभाषा का संबंध, जैसा कि पीछे कहा गया, शौरसेनी अपभ्रंश में मध्यवर्ती रूप से है। इनका जन्म 1000 ई. के आस-पास माना जा सकता है। ब्रजभाषा का इतिहास या विकास तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है– आदिकाल (प्रारम्भ में 1525); मध्यकाल (1525-1800), आधुनिक काल (1800–अब तक) आदिकालीन ब्रजभाषा, जैसा कि स्वाभाविक है, अपभ्रंश से बहुत प्रभावित है तथा उसके सभी रूपों का समुचित विकास नहीं हुआ है। हेमचंद्र के व्याकरण में जो उदाहरण हैं, उनकी भाषा में ब्रजभाषा का पूर्वरूप सुरक्षित है। ब्रजभाषा की–हि (कर्म करण, सम्प्रदान, अधिकरण) विभक्ति, उसमें –हि (अंगहि-करण कारक) रूप में मिलती है। संबंध परसर्ग उसमें 'केरउ' रूप में हैं, तथा अधिकरण परसर्ग मंझे, मन्झ के रूप में। इन्हीं से ब्रज को, के, की एवं मांझ, मांहि का विकास हुआ है। ब्रज पै, पर हेमचंद्र में 'उप्परि' रूप में है। सर्वनाम में भी यही स्थिति है। 'हों' 'हउ' रूप में 'मैं', 'मई' रूप में, 'वो', 'ओई' रूप में तथा 'तू' रूप में है। 'अइसो' आदि सार्वजनिक विशेषण भी हैं। जाणिउं (ब्रजं जान्यो), दिण्णी (ब्रज दीन्ही), गोवइ (ब्रज गोवै) आदि क्रियारूप हैं। संदेशरासक, प्राकृतपैंगलम् आदि संधिकालीन रचनाओं में भी ब्रज के रूप हैं। लगभग 1350 ई. से ब्रज का अधिक स्पष्ट रूप मिलने लगता है। इस दृष्टि से अग्रवाल कवि का पद्युम्नचरित (1354 ई.), विष्णुदास (15वीं सदी पूर्वार्द्ध) की महाभारत कथा, रूक्मिणमंगल, स्वर्गारोहण, स्नेहलीला, मानिक की बैतालपचीसी (1489 ई.), छिताईवार्ता; थेघनाथ की गीता भाषा (1500 ई.) आदि प्रमुख हैं। इस काल के प्राप्त ब्रजरूप निम्नांकित हैं : परसर्ग–नैं, कहुं, कौ, को, कूं, सौं, तैं, ते; कौं, को, के की, कउ, मांझि मांहि, में, मंहि, मन्झि। सर्वनाम– हउं, हों, मई, मो, मोहि, मोरो, मोरी, मेरे; तुम, तुम्हरे, सो, ताको, बहइ, वै, उन, जो, को, कौण, आपणे, आपनी, अपनी। क्रिया–हौ, भये, भई, हो, आदि। **अव्यय**– अब, तब, जब, तिहाँ कहं, आगे, भीतर आदि। मध्यकालीन ब्रजभाषा सूर, नंद, नरोत्तमदास, नाभादास, केशवदास, रसखान, सेनापति, बिहारी, भूषण, देव, घनानंद आदि में सुरक्षित है। इस काल की ब्रज का रूप परिनिष्ठित हो गया है। शब्द समूह की दृष्टि से, इस काल की ब्रजभाषा में अरबी-फारसी-तुर्की के काफी शब्द आ गए हैं। अंतिम काल में लल्लूलाल,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

भारतेंदु, रत्नाकार, कविरत्न आदि प्रमुख हैं। इस काल की साहित्यिक ब्रज पर खड़ी बोली का कुछ प्रभाव है। शब्द समूह में आधुनिक ब्रज में अंग्रेजी के अनेक शब्द आ गए हैं।

इसके परसर्ग हैं–

परसर्ग : कर्त्ता–ने, नें, नै, नैं न

कर्म–संप्रदान–कु कुं, कूं, कू कों, को, कौं, ऐ, ए, इ, कैं, कें

करण–अपादान–ते, ते, तैं, सू, सूं, सौं, सों, सै, तें, तै

संबंध–को, कौ (पुल्लिंग एकवचन अविकारी), कि, की (स्त्रीलिंग) के (पुल्लिंग विकारी बहु.)

अधिकरण–में, मैं, महं, मांहि, माहीं, महि, म, प, पै, पे

इसके **कारक** रूप हैं।

कारक रूप	**एकवचन**	**बहुवचन**
पुल्लिंग :	अविकारी रूप–आम, आमु	आम; आंमु
	विकारी रूप–आम, आमु	आमन, आमनु, आमौं, अमानि
	अविकारी रूप–कांटा कांटो कांटों	कांटे, कांटन, कांटान, कांटे
विकारी रूप–	कांटे, कांटा, कांटै	कांटन, कांटनि, कांटों, कांटे, कांटो
स्त्रीलिंग :	अविकारी रूप–किताब	किताबें, किताबन, कितबैं
	विकारी रूप–किताब	किताबन, किताबन, किताबों
	अविकारी रूप–रोटी	रोटिन, रोटीन, रोटियनि,
	विकारी रूप–रोटी	" " रोटियन, रोटियों, रोटियां

कुछ सर्वनामरूप हैं

सर्वनाम : उत्तम पुरुष	**एकवचन**	**बहुवचन**
	अविकारी रूप–मैं, में, हौं, हों, हूं	हम
	विकारी रूपी–मों, मो, मोहि, मुहि, मुज् मोय्	हम, हमन, हमनि, हमौं

2.8 सारांश

भाषा और बोली का घनिष्ठ संबंध है। राजनीतिक साहित्यिक कारणों से एक बोली, भाषा का रूप ले लेती है तो कभी भाषा, बोली में परिवर्तित हो जाती है। हिंदी के कई रूप समाज में प्रचलित हैं। बोलचाल की हिंदी, कार्यालयी हिंदी, साहित्यिक हिंदी। खड़ी बोली और हिंदी भाषा की व्यंजना के अंतर

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

की समझ भी आवश्यक है। खड़ी बोली कुछ जनपदों की बोली है, जबकि हिंदी भाषा अठारह बोलियों का समुच्चय है। हिंदी भाषा लोचदार एवं गतिशील भाषा रही है। हिंदी भाषा ने न केवल दूसरी भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया है, अपितु संवेदना का विस्तार भी किया है। प्रत्येक बोली के प्रयोग का एक निश्चित क्षेत्र है और इन क्षेत्रों के नाम पर ही बोलियों का नामकरण किया गया है। कुछ बोलियों का महत्वपूर्ण साहित्यिक इतिहास है, तो कुछ में साहित्यिक सृजन का प्रयास अभी हो रहा है। कुछ बोलियाँ अपने बोलने वालों की संख्या अथवा साहित्यिक अवदान को आधार बनाकर स्वतंत्र भाषा का दर्जा दिए जाने का माँग उठा रही है तो 'मैथिली' ऐसी बोली है जिसे अब हिंदी से स्वतंत्र भाषा का दर्जा मिल भी चुका है।

2.9 अभ्यास प्रश्न

(1) हिंदी तथा उसकी बोलियों के अंतःसंबंध को स्पष्ट कीजिए ?
(2) पश्चिमी हिंदी की बोलियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
(3) हिंदी भाषा के भौगोलिक विस्तार को बताइए।
(4) हिंदी भाषा क्षेत्र से आप क्या समझते हैं? बताइए।
(5) हिंदी क्षेत्र की बोलियों को कितने वर्गों में विभाजित किया गया है? स्पष्ट कीजिए।
(6) अवधी बोली का सामान्य परिचय दीजिए।
(7) पहाड़ी हिंदी की बोलियों का परिचय दीजिए।

1.10 संदर्भ-ग्रंथ

- *'हिंदी : उद्‌भव विकास और रूप'* - हरदेव बाहरी
- *'हिंदी और उसकी विविध बोलियाँ'* - कैलाश तिवारी
- *'हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप'* - अंबा सुमन प्रसाद
- *'हिंदी भाषा का अंतरराष्ट्रीय संदर्भ'* - भोलानाथ तिवारी
- *'हिंदी भाषा का उद्‌गम और विकास'* - उदय नारायण तिवारी
- *'हिंदी भाषा का इतिहास'* - धीरेंद्र वर्मा (भूमिका)
- *'ग्रामीण हिंदी बोलियाँ' - हरदेव बाहरी*
- *'हिंदी भाषा'* - भोलानाथ तिवारी (भूमिका)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3. राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी

लेखक–डॉ. मनीराम यादव
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भाषा के विविध रूपों-सामान्य भाषा, बोली, विभाषा, भाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा, साहित्यिक भाषा, कृत्रिम भाषा, संपर्क भाषा आदि-में केवल राष्ट्रभाषा और राजभाषा तथा संपर्क भाषा के बारे में विवेचन करना यहाँ अभीष्ट है।

रूपरेखा

3.0 अधिगम का उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 राष्ट्रभाषा और राजभाषा
3.3 राजभाषा के रूप में हिंदी
3.4 भाषा - नीति विषयक संकल्प
3.4.1 बोध प्रश्न
3.5 संपर्क भाषा के रूप में हिंदी
3.5.1 बोध प्रश्न
3.6 सारांश
3.7 अभ्यास प्रश्न
3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.0 अधिगम का उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- राजभाषा की परिभाषा और महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- राजभाषा और राष्ट्रभाषा के अंतर को समझ सकेंगे।
- राजभाषा, राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा का अर्थ तथा महत्त्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- राजभाषा तथा संपर्क भाषा के रूप में हिंदी पर प्रकाश डाल सकेंगे।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम राजभाषा के स्वरूप और उसके कार्यान्वयन पर विचार करने जा रहे हैं। सबसे पहले हमने राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा के स्वरूप को समझने की कोशिश की है। उसके पश्चात् राजभाषा की परिभाषा और उसके महत्त्व पर प्रकाश डाला है। किसी भी राष्ट्र के लिए एक संपर्क भाषा का होना आवश्यक है। भारत जैसे बहुभाषी देश में तो इसकी अनिवार्यता और भी बढ़ जाती है। आज हिंदी संपर्क भाषा का काम कर रही है। राजभाषा के रूप में हिंदी के विकास के लिए विभिन्न सरकारी समितियों का गठन हुआ है। इसमें केन्द्रीय हिंदी समिति, हिंदी सलाहकार समिति और राजभाषा कार्यान्वयन समिति प्रमुख है।

3.2 राष्ट्रभाषा और राजभाषा

देश की भाषा ही राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक आदि कारणों से समग्र राष्ट्र के सार्वजनिक प्रयोग में आ जाती है, उसमें देश की संस्कृति एवं उसमें बद्धमूल आदर्शों की अन्विति होती है तथा उसकी प्रकृति और उसके सम्पन्न साहित्य में यह सामर्थ्य होता है कि देश की अन्य भाषाओं को बिना उनकी प्रगति के बाधक हुए अपने साथ ले चल सके। हिन्दी जो राष्ट्र की राष्ट्रभाषा हुई है, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारणों से देशभर में प्रचलित हुई। यह समस्त भारत में फैल गई और बहुत दिनों बाद स्वतः कश्मीर से कन्याकुमारी तथा अटक से कटक तक पारस्परिक विचार-विनिमय का माध्यम बनी। धार्मिक जनों तथा साधु-सन्तों द्वारा भी सांस्कृतिक आदान-प्रदान का माध्यम हिन्दी को ही प्राप्त हुआ था। अनेक विरोधों के होते हुए भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त हुआ और क्रमशः बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, मलमयालम और कन्नड़ जैसे अहिन्दी क्षेत्रों में भी लोकप्रिय होती जा रही है। 'हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास' प्रस्तुत करते हुए डॉ. शिवराज वर्मा ने हिन्दी की व्यापकता सम्पूर्ण देश के क्षेत्रों में प्रदर्शित की है। मुस्लिम शासनकाल के दिनों में भी हिन्दी ही सामान्य बोलचाल की भाषा बनी रही। मुस्लिम साम्राज्य यहाँ दीर्घकाल तक रहा परन्तु उनकी भाषा फारसी लोकभाषा कभी नहीं बनी। मुस्लिम शासनकाल में राजभाषा फारसी के साथ हिन्दी भी चलती रही। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी यह परम्परा सन् 1830 ई. तक जारी रखी।

19वीं शती का समय हिन्दी के सर्वतोन्मुखी विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। खड़ी बोली गद्य का निर्माण इसी काल से हुआ।

राष्ट्रीय विकास में उस देश की राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त वहाँ की राजभाषा का भी विशिष्ट महत्त्व है। दोनों में अंतर यह है कि राष्ट्रभाषा किसी राष्ट्र की आत्मा है और राजभाषा वहाँ का मुख। राष्ट्रभाषा का विकास स्वतः स्फूर्त और प्रवाहमान होता है, जबकि राजभाषा शासन तंत्र की नीतियों के संयोजन का साधन। शासक ओर शासित के बीच फैले अन्तराल को समाप्त करने में राजभाषा सहायक होती है। पराधीन भारत में मुगलकाल में फारसी और अंग्रेजी राजत्वकाल में अंग्रेजी भारत की राजभाषा थी।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

आक्रांत अपनी सुविधा के लिए बाहरी भाषा को राजभाषा के रूप में थोप देता है, किन्तु उसे राष्ट्रभाषा का पद जनमानस के व्यवहार के बिना नहीं मिलता। स्वाधीन भारत के नये प्रजातांत्रिक शासनतंत्र में प्रजोन्मुखी शासन नीति के लिए एक भाषा ऐसी भी सर्वमान्य होनी चाहिए जिसे शासक और शासित दोनों स्वीकार करें। संविधान निर्माताओं ने निर्णय लिया था कि राजभाषा नागरी में लिखी हिन्दी होगी तथा 15 वर्षों तक सह राजभाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहेगा। किन्तु अब तक भी वही स्थिति बनाये रखने के लिए समय-समय पर राजभाषा अधिनियम बनाये जाते रहे और द्विभाषिक स्थिति के रूप में अंग्रेजी सह-राजभाषा बनी रही। सन् 1976 में राजभाषा नियम भी सम्पूर्ण भारत में प्रवृत्त नहीं हो सके, तमिलनाडु राज्य छोड़ दिया गया। वहाँ के निवासियों ने भी तमिल भाषा की समृद्धि की अपेक्षा अंग्रेजी की वृद्धि का समर्थन किया।

यहाँ राजभाषा के रूप में हिन्दी के संवैधानिक स्थिति, राजभाषा अधिनियम, भाषा-नीति विषयक संकल्प तथा राजभाषा नियम आदि का सारग्राही विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

3.3 राजभाषा के रूप में हिंदी

संवैधानिक स्थिति

भारत के संविधान के अनुच्छेद 120 (1) ओर 343 से 351 तक भारतसंघ की राजभाषा के संबंध में अलग-अलग प्रावधान हैं।

संसद में कार्य संचालन की भाषा –संविधान के अनुच्छेद 120 (1) में यह व्यवस्था है कि ''अनुच्छेद 348 के उपबन्धों के अधीन संसद की कार्यवाही हिन्दी अथवा अंग्रेजी में होगी।'' परन्तु राज्य सभा का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष इस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपने को र्प्याप्त रूप से अभिव्यक्त नहीं कर सकता, सदन को अपनी मातृभाषा में संबोधित करने की अनुमति दे सकेगा।

इसी अनुच्छेद के खण्ड (2) में यह व्यवस्था थी कि जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपलब्ध न करे तब तक संविधान के लागू होने के 15 वर्ष के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभाव होगा मानो कि ''अथवा अंग्रेजी में'' शब्द उसमें से लुप्त कर दिये गए हैं।

लेकिन 15 वर्ष पूरे होने से पहले ही राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 के अधीन यह व्यवस्था की गई कि संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद अर्थात 26 जनवरी, 1965 के बाद भी संसद में हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जाएगा।

इसी उपबन्ध के अधीन संसद में अंग्रेजी में दिए गए भाषणों का साथ-साथ अंग्रेजी में अनुवाद करने की व्यवस्था शुरु हुई। तमिल तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम में दिए जाने वाले भाषणों का भी सदन में हिन्दी और अंग्रेजी में साथ-साथ अनुवाद करने की व्यवस्था है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

संविधान के अनुच्छेद 343(3) के अनुसार अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने के लिए संसद में राजभाषा अधिनियम, 1963 के बाद भी (क) संघ में उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए जिनके लिए इस तारीख से पहले अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था, और (ख) संसद में कार्य-निष्पादन के लिए हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जाए।

धारा 4 में व्यवस्था की गई कि उक्त धारा 3 के लागू होने के 10 वर्ष बाद लोकसभा के 20 और राज्यसभा के 10 सदस्यों की एक राजभाषा समिति का गठन किया जाये। यह समिति सरकारी काम-काज में हिन्दी के प्रयोग की समीक्षा करेगी और अपनी सिफारिशों की रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करेगी। यह रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत की जाएगी और सभी राज्य सरकारों को भिजवायी जाएगी। राष्ट्रपति इस रिपोर्ट पर और राज्य सरकारों द्वारा व्यक्त की गई राय पर विचार करने के बाद उस रिपोर्ट के अनुसार निर्देश जारी कर सकते हैं।

धारा 5 में यह उपबन्ध किया गया है कि 26 जनवरी, 1965 या इसके बाद से सरकारी राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार के अधीन प्रकाशित केन्द्रीय अधिनियम अथवा राष्ट्रपति द्वारा लागू किए गए अध्यादेश अथवा किसी केन्द्रीय अधिनियम के अंतर्गत संविधान के अधीन जारी किए गए आदेशनियम, विनियम या उपनियम का हिन्दी-अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकृत पाठ माना जाएगा।

धारा 5(2) में यह व्यवस्था की गई है कि 26 जनवरी 1965 से संसद में बिलों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जाएगा जो इस अधिनियम के अधीन बनाये गए नियमों में निर्धारित ढंग से प्राधिकृत होगा।

धारा 6 में व्यवस्था है कि किसी राज्य के राजपत्र में राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित विधानमंडल द्वारा पारित अधिनियमों आदि के हिन्दी अनुवाद को हिन्दी में उनका प्राधिकृत पाठ माना जाएगा।

धारा 7 के अनुसार किसी भी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व-सहमति से उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय, डिगरी अथवा आदेश में अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी अथवा उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकता है लेकिन जहाँ कहीं इस प्रकार दिए गए निर्णय आदि में अंग्रेजी से भिन्न किसी अन्य भाषा का प्रयोग किया जाएगा, वहाँ उच्च न्यायालय द्वारा प्राधिकृत उसका अंग्रेजी अनुवाद भी साथ दिया जाएगा।

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967

इस संशोधन के अनुसार राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3 के स्थान पर निम्नलिखित व्यवस्था की गई:

संविधान के लागू होने से 15 वर्ष की अवधि बीत जाने पर भी (क) संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए जिनके लिए 26 जनवरी, 1965 से पहले अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा था, और (ख) संसद में कार्य-निष्पादन के लिए, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखा जाएगा।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

इस अधिनियम के उपबन्ध में यह भी व्यवस्था की गई कि जिन राज्यों ने हिन्दी को अपनी राज्यभाषा के रूप में नहीं अपनाया है उनके और संघ के बीच पत्र-व्यवहार के लिए अंग्रेजी का प्रयोग होगा। जिस राज्य ने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है, उसके और किसी ऐसे राज्य के बीच जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, यदि हिन्दी में पत्र-व्यवहार किया जाता है तो हिन्दी में लिखे गये पत्र के साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजा जाएगा। साथ ही, जिस राज्य ने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप मे ंनहीं अपनाया है, वह भी संघ के साथ हिन्दी में पत्र-व्यवहार कर सकता है और ऐसी स्थिति में उस राज्य के साथ किये जाने वाले पत्र-व्यवहार में अंग्रेजी का प्रयोग अनिवार्य नहीं होगा।

धारा (2) में व्यवस्था है कि केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों के बीच परस्पर पत्र-व्यवहार के लिए जब हिन्दी अथवा अंग्रेजी का प्रयोग किया जाये तो उसके साथ अंग्रेजी या हिन्दी अनुवाद, जैसी भी स्थिति हो, भेजने की तब तक व्यवस्था की जानी चाहिए जब तक संबंधित मंत्रालय/विभाग/कार्यालय के कर्मचारी हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते।

धारा 3 के अनुसार संघ के निम्नलिखित सरकारी प्रयोजनों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाएगाः

(1) संकल्प, सामान्य आदेश, नियम, अधिसूचनाएँ, प्रशासनिक या अन्य रिपोर्ट और प्रेस विज्ञप्तियाँ,

(2) संसद के किसी एक या दोनों सदनों में रखी जाने वाली प्रशासनिक और अन्य रिपोर्ट और अन्य सरकारी कागजात,

(3) संविदा, करार, लाइसेंस, परमिट, नोटिस, निविदा फार्म

धारा 4 में व्यवस्था है कि राजभाषा के प्रयोग के संबंध में नियम बनाते समय केन्द्रीय सरकार द्वारा सरकारी काम-काज के शीघ्र और दक्षतापूर्वक निबटारे का और जन-साधारण के हितों का सम्यक् ध्यान रखा जाएगा और इस बात का भी ध्यान रखा जाएगा कि जो व्यक्ति हिन्दी अथवा अंग्रेजी किसी एक भाषा का ज्ञान रखते हों, वे प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें और दोनों भाषाओं में प्रवीण न होने की स्थिति में उनका कोई अहित न हो। धारा 5 में यह उपबन्ध किया गया है कि उपर्युक्त व्यवस्था तब तक कायम रहेगी जब तक वे सभी राज्य जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया, अपने विधान मंडल में इस आशय के संकल्प पारित नहीं कर लेते कि अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर दिया जाये और इन संकल्पों पर विचार करने के बाद संसद के प्रत्येक सदन द्वारा भी अंग्रेजी का प्रयोग समाप्त करने का संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता।

3.4 भाषा-नीति विषयक संकल्प

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 के साथ-साथ संसद के दोनों सदनों ने संघ की भाषा नीति के संबंध में एक संकल्प भी पारित किया जिसमें सरकार से कहा गया है–

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(1) कि हिन्दी का प्रसार और विकास करने और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रगामी प्रयोग में तेजी लाने के लिए एक व्यापक और विस्तृत कार्यक्रम तैयार किया जाए और उसे कार्यान्वित किया जाए।

(2) कि उपर्युक्त संदर्भ में किये गये उपायों और उनकी प्रगति का ब्यौरा देते हुए एक वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत की जाए।

(3) कि सभी राज्य सरकारों के परामर्श से भारत सरकार द्वारा निर्धारित त्रिभाषा फार्मूले के कार्यान्वयन की व्यवस्था की जाए।

(4) कि संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के बाद अखिल भारतीय और उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षाओं में संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित सभी भाषाओं और वैकल्पिक माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग की अनुमति दी जाये।

उक्त अधिनियमों एवं संकल्प के आधार पर बनी द्विभाषिक स्थिति का परिहार करने के लिए राजभाषा नियम, 1976 लागू किया गया, जो तमिलनाडु को छोड़कर समस्त भारत में लागू है।

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ

1. इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है।

2. इन नियमों का विस्तार तमिलनाडु राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर होगा।

3. ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. परिभाषाएँ : इन नियमों में, जब तक कि प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो

(क) 'अधिनियम' से राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) अभिप्रेत है,

(ख) 'केन्द्रीय सरकार के कार्यालय' में निम्नलिखित भी सम्मिलित हैं–

(i) केन्द्रीय सरकार का कोई मंत्रालय, विभाग या कार्यालय,

(ii) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त आयोग, समिति या अभिकरण का कोई कार्यालय और

(iii) केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी का कार्यालय

(ग) 'कर्मचारी' से केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत हैं,

(घ) 'अधिसूचित कार्यालय' से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय अभिप्रेत हैं,

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(ङ) 'हिन्दी में प्रवीणता' से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत हैं।

(च) 'क क्षेत्र' से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के राज्य तथा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(छ) 'ख क्षेत्र' से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब के राज्य तथा अण्डमान और निकाबार द्वीप तथा चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं।

(ज) 'ग क्षेत्र' से खण्ड (च) और (छ) में निर्दिष्ट से भिन्न राज्य और संघ क्षेत्र अभिप्रेत हैं,

(झ) 'हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान' से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत हैं।

3. राज्यों आदि, केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न के साथ पत्रादि

1. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क क्षेत्र के राज्य को या ऐसे राज्य (केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से भिन्न) किसी कार्यालय या व्यक्ति पत्रादि, असाधारण दशाओं में के सिवाय, हिन्दी में होंगे तथा यदि कोई पत्रादि उनमें से किसी को अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ-साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

2. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से–

   (क) ख–क्षेत्र के राज्य को या ऐसे राज्य में (केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से भिन्न) किसी कार्यालय को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि कोई पत्रादि उसे अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा। परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य ऐसी इच्छा करता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके कार्यालयों में से किसी के लिए आशयित पत्रादि, उसकी अवधि तक जो संबंधित राज्य की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट की जाये, अंग्रेजी में या हिन्दी में, दूसरी भाषा में अनुवाद सहित भेजे जायें तो ऐसे पत्रादि उसी रीति से भेजे जायेंगे।

   (ख) ख–क्षेत्र के राज्य में किसी व्यक्ति को पत्रादि उसी रीति से भेजे जायेंगे।

3. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से ग क्षेत्र के राज्य को या ऐसे राज्य में (केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से भिन्न) किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे।

4. उपनियम (1) और (2) में किसी बात से होते हुए भी ग क्षेत्र में के केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क क्षेत्र या ख क्षेत्र के राज्य को या ऐसे राज्य में (केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से भिन्न) किसी कार्यालय या व्यक्ति करें पत्रादि हिन्दी में या अंग्रेजी में हो सके हैं।

4. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि–

(क) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्रादि हिन्दी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

(ख) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क क्षेत्र में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार, ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने के लिए सुविधाओं और उनके आनुषंगिक विषयों को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अवधरित करें,

(ग) क क्षेत्र में स्थित, खण्ड (क) या खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट से भिन्न केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्राादि हिन्दी में होंगे;

(घ) क क्षेत्र और ख क्षेत्र में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं–

(ङ) ख क्षेत्र या ग क्षेत्र में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में या अंग्रेजी में हो सकते हैं–

(अ) जहाँ पत्रादि क क्षेत्र या ख क्षेत्र के कार्यालय को संबोधित है वहाँ, यदि आवश्यक हो तो, पहुँच के स्थान पर उपलब्ध कराया जाएगा।

(ब) जहाँ पत्रादि ग क्षेत्र के कार्यालय को संबोधित है, वहाँ ऐसे पत्रादि के साथ उपलब्ध कराया जाएगाः परन्तु यह और कि दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी यदि पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को संबोधित हैं।

5. हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर

नियम 3 ओर नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से उत्तर हिन्दी में होंगे।

6. हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का ही प्रयोग

अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही प्रयोग में लाई जाएंगी और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह दायित्व होगा कि वे सुनिश्चित कर लें कि ऐसे दस्तावेज हिन्दी और दोनों ही में तैयार किए जाते हैं, निष्पादित किए जाते हैं या जारी किए जाते हैं।

7. आवदेन, अभिवेदन, आदि –

1. कर्मचारी कोई आवेदन, अपील या अभिवेदन हिन्दी में या अंग्रेजी में कर सकता है।
2. उपनियम (1) में निर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभिवेदन जब भी हिन्दी में किया जायेगा या उसमें हिन्दी में हस्ताक्षर किए जायें तो उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा।
3. जब कोई कर्मचारी यह वादा करता है कि सेवा विषयों से (जिसमें अनुशासनिक कार्यवाहियाँ सम्मिलित हैं) संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामिल किया जाना अपेक्षित

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

है, यथास्थिति, हिन्दी में या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे बिना किसी अनुचित विलंब के उसी भाषा में दी जाएगी।

8. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणों का लिखा जाना

1. कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत हिन्दी में या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में भी प्रस्तुत करें।
2. केन्द्रीय सरकार का कर्मचारी, जिसे हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त है, किसी हिन्दी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग कर सकता जब दस्तावेज विधिक या तकनीक प्रकृति का है।
3. यदि कोई ऐसा प्रश्न उठता है कि अमुक दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नहीं तो उसका विनिश्चय विभाग या कार्यालय के अध्यक्ष द्वारा किया जाएगा।
4. उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश देना, ऐसा अधिसूचित कार्यालय विनिर्दिष्ट कर सकती है जहाँ टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों, के लिए जो आदेश में विनिर्दिष्ट किये जायें, उन कर्मचारियों द्वारा जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जायेगा।

9. हिन्दी में प्रवीणता

कर्मचारी के बारे में यह समझा जाएगा कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है यदि–

(क) उसके मैट्रिक परीक्षा या उसकी कोई समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा, हिन्दी को परीक्षा के माध्यम के रूप में अपनाकर, उत्तीर्ण की है; अथवा

(ख) स्नातकोत्तर परीक्षा में अथवा स्नातकोत्तर परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी उसका एक वैकल्पिक विषय थी, अथवा

(ग) वह इन नियमों से उपाबद्ध प्रारूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है।

10. हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान

1. कर्मचारी के बारे में समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है–

(क) यदि उसने –

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण की है, अथवा

(ii) केन्द्रीय सरकार की हिन्दी प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या, जब उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में ऐसा विनिर्दिष्ट किया जाये, उसे योजना के अंतर्गत कोई निम्नतर परीक्षा उत्तीण की है, अथवा

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

2. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय के कर्मचारीवृन्द के बारे में सामान्यतः यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है यदि उस कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारीवृन्द में से 80 प्रतिशत ने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

3. केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारण कर सकेगा कि केन्द्रीय सरकार के कार्यालय के कर्मचारीवृन्द ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, या नहीं।

4. केन्द्रीय सरकार के उन कार्यालयों के नाम, जहाँ के कर्मचारीवृन्द ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, राजपत्र में अधिसूचित किये जाएँगेः

परन्तु यदि केन्द्र सरकार की यह राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर्मचारीवृन्द का प्रतिशत किसी तारीख से उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से गिर गया है तो, वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रहेगा।

11. मैन्युअल, संहिताएँ और अन्य प्रक्रिया संबंधी साहित्य, स्टेशनरी आदि

1. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैन्युअल, संहिताएँ और अन्य प्रक्रिया संबंधी साहित्य, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में द्विभाषिक रूप में, यथास्थिति, मुद्रित किया जाएगा, साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा।

2. केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग में लाये जाने वाले प्रारूपों और रजिस्टरों के शीर्ष हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे।

3. केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए लिखे गए, मुद्रित या उत्कीर्ण सभी नामपट्ट, सूचनापट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा स्टेशनरी का अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में होंगी। परन्तु केन्द्रीय सरकार, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझती है तो, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है।

12. अनुपालन का उत्तरदायित्व

1. केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वहः

(i) यह सुनिश्चित करें कि अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों का समुचित रूप से अनुपालन किया जाता है और

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

(ii) इस प्रयोग के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जाँच पड़ताल के उपाय करें।

2. केन्द्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों के अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय-समय पर ऐसे निर्देश जारी कर सकती हैं जैसे कि आवश्यक हों।

ये नियम 28 जून, 1976 को जारी किए गये थे।

प्ररूप

(नियम 9 और 10 देखिए)

मैं घोषणा करता हूँ कि निम्नलिखित के आधार पर मुझे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है। मैंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है–

तारीख हस्ताक्षर

संविधान के अनुच्छेद 351 में हिन्दी के प्रगामी विकास की दिशा में उठाये गये कदम भी सराहनीय होंगे।

3.4.1 बोध प्रश्न

1. राजभाषा (संशोधन) अधिनियम कब लागू हुआ था?
2. राजभाषा से क्या आशय है?
3. भारत में सरकारी काम-काज की भाषा क्या है?

3.5 संपर्क भाषा के रूप में हिंदी

'सम्पर्क भाषा' शब्द अंग्रजी शब्द लिंग्वा फ्रेंस (Lingue France) के रूप में व्यवहृत होता है जिसका अर्थ है 'सामान्य बोली' या 'लोक बोली'। हिन्दी अपने राष्ट्रीय स्वरूप में ही पूरे देश की सम्पर्क भाषा बनी हुई है। अपने सीमित रूप में, राजभाषा के रूप में, हिन्दी राज-काज के व्यवहार में भिन्न भाषा-भाषियों के बीच परस्पर सम्प्रेषण का माध्यम बनी हुई है। भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के मध्य परस्पर विचार-विनिमय का माध्यम बनने वाली भाषा को सम्पर्क भाषा कहा जाता है। यद्यपि अंग्रेजी भाषा भारत में सह-राजभाषा के रूप में स्वीकृत है तथापि विश्व के अनेक देशों में वह सम्पर्क भाषा बनी हुई है, जहाँ विभिन्न देशवासी परस्पर अपना सम्पर्क अंग्रेजी में साधते हैं। संपूर्ण भारतवर्ष में बोली और समझी जानेवाली राष्ट्रभाषा हिन्दी है, वह सरकार की राजभाषा भी है तथा सारे देश को एक सूत्र में पिरोने वाली सम्पर्क भाषा भी है। इस तरह अपने तीनों रूपों-राष्ट्रभाषा, राजभाषा और सम्पर्क भाषा में हिन्दी भाषा अपना दायित्व सहजता से निभा रही है क्योंकि इन तीनों में अन्तः संबंध है। राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण स्वीकृत भाषा होती है जबकि प्रशासनिक कार्यों के व्यवहार में प्रयुक्त होने वाली 'राजभाषा' घोषित की जाती है तथा सम्पर्क भाषा का विकास प्राकृतिक और स्वैच्छिक आधार पर होता है जो सामाजिक आवश्यकताओं की

© DDCE/COL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पूर्ति करता है। सम्पर्क भाषा ही सर्व-स्वीकृत होकर राष्ट्रभाषा बनती है। समृद्ध देशों में राष्ट्रभाषा, राजभाषा और सम्पर्क भाषा के रूप में एक ही भाषा का प्रयोग होता है, जैसे जापान, अमेरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि देश। इस दृष्टि से भारतवर्ष भी समृद्ध देश है जहाँ हिन्दी ही अपने तीनों रूपों में प्रयुक्त होती है। हिन्दी ही राष्ट्रभाषा भी है और राजभाषा भी तथा सम्पर्क भाषा भी। विश्व के अनेक देशों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार हो रहा है। हिन्दी की गुणवत्ता का अनुभव सभी राजनीतिज्ञों, शिक्षाविदों, विद्वानों, लेखकों और सहृदय सामाजिकों ने किया है। किन्तु हिन्दी के प्रगामी विकास की दिशा में सबसे बड़ी बाधा प्रयोग और व्यवहार के स्तर पर उपेक्षा और उदासीनता की है।

3.5.1 बोध प्रश्न

1. भारत की संपर्क भाषा क्या है?
2. संपर्क भाषा के लिए अंग्रेजी शब्द क्या है?

3.6 सारांश

राज्य या प्रशासन की भाषा को राजभाषा कहा जाता है। भारतीय संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी स्वीकार की गई है। संविधान के प्रावधानों के अनुसार संविधान लागू होने के पन्द्रह वर्षो बाद अर्थात् 1965 तक हिंदी को पूर्णरुपेण राजभाषा का स्थान लेना था किन्तु 1967 में हुए संशोधन के अनुसार अंग्रेजी को सह राजभाषा के रूप में जारी रखने का संकल्प लिया गया। राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय सम्मान की वाहिका होती है। पूरा भारत स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व हिंदी को राष्ट्रभाषा मानता था। किंतु आजादी के बाद संविधान ने हिंदी को राष्ट्रभाषा नहीं राजभाषा का दर्जा दिया है। संपर्क भाषा का अर्थ है जोड़ने वाली भाषा। यह संपर्क केवल बातचीत के स्तर तक ही सीमित न होकर व्यवहार के सभी क्षेत्रों तक विस्तृत होता है।

3.7 अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रभाषा और राजभाषा के अंतर को समझाएं।
2. राजभाषा हिंदी के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
3. भाषा नीति से आप क्या समझते हैं?
4. संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का विवेचन कीजिए।

3.5 संदर्भ-ग्रंथ

1. *राजभाषा हिंदी* - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. *राष्ट्रभाषा हिंदी : समस्याएँ और समाधान* - प्रो. देवेंद्रनाथ शर्मा
3. *विश्व हिंदी* - डॉ. रविन्द्रनाथ श्रीवास्तव

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-2

(क) हिंदी साहित्य का इतिहास

1. आदिकाल : सामान्य परिचय

लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 आदिकाल : काल विभाजन
  1.2.1 बोध प्रश्न
1.3 आदिकाल का नामकरण
  1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 आदिकाल की परिस्थितियाँ
  1.4.1 राजनीतिक
  1.4.2 धार्मिक
  1.4.3 सामाजिक
  1.4.4 साहित्यिक
1.5 सारांश
1.6 अभ्यास प्रश्न
1.7 संदर्भ-ग्रंथ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ के माध्यम से आप निम्नलिखित बिंदुओं को समझ सकेंगे–

- आदिकाल के समय-सीमा से अवगत हो सकेंगे।
- आदिकाल की परिस्थितियों को जान सकेंगे।
- आदिकाल के विभिन्न नामों से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1.1 प्रस्तावना

साहित्य मानव-समाज के विविध भावों एवं नित नवीन रहने वाली चेतना की अभिव्यक्ति है। किसी काल विशेष के साहित्य की जानकारी से तद्युगीन मानव-समाज को समग्रतः जाना जा सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी काल विशेष के साहित्य में पाई जाने वाली प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के सापेक्ष होती हैं। यह सिद्धांत इस बात की आवश्यकता पर बल देता है कि साहित्य के प्रेरक तत्व के रूप में हम युगीन परिवेश को अवश्य जान लें। आदिकालीन साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। इस इकाई में आदिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, काल-विभाजन, नामकरण तथा आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिंदु तथा आदिकालीन साहित्य की सामग्री के स्वरूप आदि का विवेचन किया गया है।

1.2 आदिकाल : काल विभाजन

हिंदी साहित्य के प्रारंभ से लेकर अब तक के विकास की विभिन्न प्रवृत्तियों, रचनाओं, कृतिकारों और उनकी विशेषताओं की जानकारी आवश्यक है। आपके पाठ्यक्रम में हिंदी कविता प्रत्येक काल की प्रमुख धाराएँ और हिंदी-गद्य विधाओं का विकास (नाटक, उपन्यास, कहानी और निबंध) निर्धारित किए गए हैं। इसी उद्देश्य से इस पाठ के द्वारा आपको हिंदी साहित्य के इतिहास के संबंध में संक्षिप्त जानकारी देने के लिए अलग-अलग शीर्षकों के अधीन आदिकालीन काव्य धाराएँ, भक्ति कालीन काव्यधाराएँ (ज्ञानाश्रयी काव्य धारा, प्रेमाश्रयी काव्यधारा, राम काव्यधारा और कृष्ण काव्यधारा), रीतिकालीन काव्यधाराएँ एवं आधुनिककालीन काव्यधाराओं पर अध्ययन सामग्री भेजी जा रही है। आशा है, आप इसे ध्यान से पढ़ेंगे और हिंदी साहित्य के इतिहास का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे।

आप जानना चाहेंगे कि साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन या भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न नामों की सार्थकता क्या है? किसी विशेष युग में खास ढंग की ही रचनाएँ प्रायः मिलती हैं, खास प्रकार की प्रवृत्तियों की प्रमुखता होती है—अंतः इन्हीं के आधार पर उस युग का नाम रख दिया जाता है।

साहित्य में सदा एक जैसी प्रवृत्तियाँ नहीं रहतीं। परिस्थितियों के अनुसार साहित्य की प्रवृत्तियाँ भी बदलती रहती हैं। अतः साहित्य के इतिहास का अध्ययन प्रत्येक समय की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के आधार पर उसे विभाजित करके किया जाता है। इसी को 'काल-विभाजन' कहा जाता है।

हिंदी-साहित्य का सर्वप्रथम प्रामाणिक और व्यवस्थित इतिहास प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को है। उन्होंने हिंदी-साहित्य के इतिहास को चार कालों में इस प्रकार विभाजित किया है—

(1) वीर-गाथा काल[1] (संवत् 1050 से 1375 वि.) या (993 ई. से 1318 ई.)[1]

[1] आजकल वीरगाथा–काल का नाम अधिकतर 'आदिकाल' ही चलता है। यह नाम डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा दिया हुआ है। आगे वीरगाथा–काल का विवेचन 'आदिकाल' नाम से ही होगा।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(2) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375 से 1700 वि.) या (1318 ई. से 1643 ई.)

(3) उत्तर-मध्यकाल (रीतिकाल संवत् 1700 से 1900 वि.) या (1643 से 1843 ई.)

(4) आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900 से अब तक) या (1843 से अब तक)

आधुनिक काल को उन्होंने 'गद्यकाल' भी कहा है, वह इसलिए कि विधा की दृष्टि से उसमें गद्य की प्रमुखता है। इस प्रकार का विभाजन इन कालों की रचनाओं की विशेष बहु-प्रचलित प्रवृत्ति के अनुसार ही किया गया है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी काल में अन्य प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थीं। उदाहरण के लिए भक्तिकाल अथवा रीतिकाल में भक्ति तथा रीति-संबंधी रचनाओं के अतिरिक्त वीर-रस के भी अनेक काव्य प्राप्त होते हैं, जिनमें वीरगाथाकाल अथवा आदिकाल की रचनाओं की ही भाँति वीरों का गायन किया गया है। अतएव इस प्रकार के काल-विभाजन में किसी एक प्रवृत्ति के प्राधान्य को ही आधर माना गया है तथा अन्य प्रकार की रचनाओं को गौण स्थान दिया गया है।

1.2.1 बोध प्रश्न

1. **हिंदी साहित्य का सर्वप्रथम प्रमाणिक और व्यवस्थित इतिहास प्रस्तुत करने का श्रेय किसे जाता है?**
2. **आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल का समय क्या बताया है?**

1.3 आदिकाल का नामकरण

हिंदी साहित्य के आदिकाल के नामकरण के संबंध में विविध नाम दृष्टिगोचर होते हैं। किसी साहित्यिक युग का नामकरण उनकी मुख्य प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है। इस संबंध में विचार करने वालों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, राहुल सांकृत्यायन तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वान प्रमुख हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग का नामकरण 'वीरगाथा काल' किया है। शुक्ल जी ने निम्नलिखित बारह रचनाओं को आधार मानकर इस काल का नाम वीरगाथा काल रखना उचित समझा–

(1) विजय पाल रासो, (2) हम्मीर रासो, (3) कीर्तिलता, (4) कीर्तिपताका, (5) खुमान रासो, (6) बीसलदेव रासो, (7) पृथ्वीराज रासो, (8) जयचंद्र प्रकाश, (9) जयमयंक जस चंद्रिका, (10) परमाल रासो, (11) खुसरो की पहेलियाँ और (12) विद्यापति की पदावली।

इस संबंध में उन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है– **"इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से आदिकाल का लक्षण-निरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से तीन विद्यापति-पदावली,**

[1] शुक्ल जी ने अपने इतिहास में विक्रमी संवत् का प्रयोग किया है। विक्रमी संवत् में से सत्तावन (57) वर्ष घटा देने से ईसवी सन् निकल आता है या ईसवी सन् में सत्तावन वर्ष जोड़ देने से विक्रमी संवत् मालूम हो जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

खुसरो की पहेलियाँ और बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक है। अतः आदिकाल का नाम वीरगाथाकाल ही रखा जा सकता है।"

शुक्ल जी द्वारा गिनाई गई इन रचनाओं में से अधिकांश अप्रमाणिक एवं नोटिस मात्र हैं। इस प्रकार शुक्ल जी द्वारा जिन ग्रंथों के आधार पर आदिकाल का नामकरण वीरगाथा काल किया गया, वह आधार विलुप्त प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त शुक्ल जी ने तत्कालीन धार्मिक साहित्य को उपदेश प्रधान मानकर उसे साहित्य की कोटि में ही नहीं रखा। इन नई खोजों से जो ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं, उनकी भी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार, 'वीरगाथा काल' नाम अब मान्य नहीं रहा।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य के आदिकाल की कालावधि सं. 750 से 1375 तक मानकर इसे दो भागों में बांटा है। संधिकाल (750 से 1000 वि.) तथा चारणकाल (1000 से 1375)। उन्होंने 'संधिकाल' में जैन, सिद्ध तथा नाथ साहित्य को तथा 'चारणकाल' में वीरगाथात्मक रचनाओं को समाविष्ट किया है। संधिकाल दो भाषाओं एवं दो धर्मों का संधियुग है, जो वस्तुतः अपभ्रंश साहित्य ही है। 'चारणकाल' नाम 'वीरगाथा काल' की भाँति ही सदोष है, क्योंकि इस रूप में भीतर गिनाई गई चारणों की रचनाएँ अप्रामाणिक एवं परवर्ती हैं। कुछ आलोचकों का यह कहना है कि वीरगाथा काव्यों में रचयिता चारण न होकर भाट थे। इसके साथ ही 'चारण काल' नाम से उस युग के काव्य की भावनाओं या शैली संबंधी विशेषताओं का भी संकेत नहीं मिलता। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा 'आदिकाल' को दिए गए नाम को साहित्य-जगत में अधिक स्वीकृति नहीं मिली। वर्मा जी को इस बात का श्रेय अवश्य है कि उन्होंने इस युग की बहुत-सी अज्ञात या अल्पज्ञात सामग्री का भी ऐतिहासिक विवेचन किया है।

श्री राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश तथा हिंदी के इस युग की 'सिद्ध-सामंत युग' कहा है। प्रस्तुत नामकरण बहुत दूर तक तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। इस काल में सिद्धों के साहित्य की प्रधानता है तथा सामंत शब्द चारण कवियों की एक स्तुतिकरण रचनाओं के प्रेरणा-स्रोत की ओर संकेत करता है। यह नाम भी अधिक प्रचलित नहीं हो सका। साथ ही इस नाम से जैन साहित्य तथा लौकिक साहित्य का बोध नहीं होता है। राहुल भी अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी को एक ही मानते हैं और साथ ही युग की रचनाओं को मराठी, उड़िया, बंगला आदि की नीति भी स्वीकारते हैं। इस प्रकार 'सिद्ध सामंत युग' नाम भी तत्कालीन साहित्य की प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने में स्पष्ट समर्थ नहीं है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी-साहित्य के इस प्रारंभिक काल को 'आदिकाल' कहना उपयुक्त समझा है। उनका यह नामकरण भी सर्वथा दोष-रहित नहीं है। वस्तुतः आदिकाल नाम भी भ्रामक धारणा उत्पन्न करता है। इस नाम से यह लगता है कि यह काल स्वतंत्र रूप से विकसित होने वाले, पूर्ववर्ती-परम्पराओं और काव्य-रूढ़ियों से मुक्त एक सर्वथा नवीन साहित्य काल है। किंतु पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य से प्रभावित होने के कारण हम हिंदी के प्रारंभिक साहित्य को पूर्णतया स्वतंत्र तथा नूतन साहित्य नहीं कह सकते। साहित्य की दृष्टि से यह अपभ्रंश-काल का ही विकसित रूप है। साहित्य के किसी काल का नामकरण इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों तथा प्रतिपाद्य विषय के आधार पर अधिक

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

वैज्ञानिक और प्रामाणिक माना जाता है। आचार्य द्विवेदी जी का 'आदिकाल' नामकरण तत्कालीन साहित्य प्रवृत्ति की ओर आकृष्ट करने में असमर्थ प्रतीत होता है, परंतु हिंदी साहित्य का प्रारंभिक युग होने का सूचक यह नाम आदिकाल पर्याप्त प्रचलित हो चुका है इसीलिए अब प्रायः इस युग को आदिकाल नाम से ही संबोधित किया जाता है।

1.3.1 बोध प्रश्न

1. आदिकाल को संधिकाल किसने कहा है?
2. आदिकाल को विद्वानों नें किस-किस नाम से अलंकृत किया है?

1.4 आदिकाल की परिस्थितियाँ

1.4.1 राजनीतिक

उत्तर भारत में हर्षवर्धन का विशाल साम्राज्य उनकी मृत्यु (647-48 ई.) के बाद विघटित हो गया है। राजपूतों का अभ्युदय हुआ और अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए, जो निरंतर युद्ध या संघर्ष में अपनी शक्ति क्षीण करते रहे। 1200 ई. तक राजनीति का केंद्र कान्यकुब्ज प्रदेश रहा। 1175 ई. में मुहम्मद गोरी ने मुलतान पर अधिकार कर लिया। 1193 ई. में पृथ्वीराज की पराजय के बाद आक्रांताओं के लिए भारत का द्वार खुल गया। 1194 ई. में कन्नौज का केंद्र टूट गया। 1206 ई. तक बंगाल सहित उत्तर भारत में एक नये विदेशी शासन की स्थापना हो गई। पृथ्वीराज की पराजय के बाद गुजरात के स्वाधीन जैन-कनौज राजाओं ने तब तक साहित्य और संस्कृति को संरक्षण दिया जब 1299 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के कारण स्वयं गुजरात पराधीन नहीं हो गया। गुजरात का यह संरक्षण केंद्र कुमारपाल (1145-1171 ई.) के समय से ही प्रारंभ हो गया था। जैनाचार्य हेमचंद का प्रभाव और उनकी कृतियाँ इस तथ्य की साक्षी हैं। दास, खिलजी और तुगलक वंश के पठानों का समस्त शासन काल (1206 ई.-1414 ई.) मंदिरों, पुस्तकालयों और संस्कृति के केंद्रों के नष्ट किए जाने का काल है। उत्तर भारत में संघर्ष और सुरक्षा के इस काल की साहित्यिक कृतियों की अनुपलब्धि अधिक आश्चर्य की बात नहीं है।

1.4.2 धार्मिक

धार्मिक परिस्थिति की दृष्टि से विचार किया जाय, तो मुसलमानों के प्रवेश से पूर्व हिंदी-प्रदेश में बौद्ध और हिंदी विचारधारा में संघर्ष चल रहा था। काशी हिंदुओं का और नालंदा बौद्धों का मुख्य केंद्र था। हिंदी प्रदेश के पूर्वी भाग से सिद्ध साहित्य मिलता है। शंकराचार्य के समय से ही बौद्ध प्रभाव समाप्त होने लगा था। दसवीं शती के बाद बौद्ध धर्म की हीनयानी विचारधारा वज्रयान की गुह्य-साधना की ओर हो चुकी थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं नालंदा की समाप्ति एवं ध्वंस (1197 ई.) के बाद यह नामपंथी विचारधारा में लुप्त हो गई। महायानी विचारधारा वैष्णवों के भक्ति एवं अवतारवाद में समाहित हो गयी। जैन विचारधारा हिंदू परंपरा से संघर्ष देखने को नहीं मिलता, जैसा हिंदू और बौद्ध-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

विचारधाराओं का हुआ, फिर भी गुजरात में राजनीतिक प्रभाव-विस्तार के लिए इनमें संघर्ष तब तक होता रहा, जब तक मुसलमानों ने दोनों को पराजित नहीं कर दिया।

हिंदुओं में भी शैव, शाक्त और वैष्णवों में संघर्ष होते रहते थे। राजपूतों द्वारा शैव और शाक्त मतों को अधिक प्रश्रय मिला। वैष्णवाचार्यों का प्रभाव दक्षिण से उत्तर की ओर उन्मुख हो रहा था। निंबार्क (12वीं शती), मध्य (जन्म 1237 ई.) तथा रामानंद (1299-1411) का प्रभाव वैष्णव भक्ति की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पौराणिक धर्म और अवतारवाद की धारणाओं ने इस समय हिंदू विचारधारा को पर्याप्त प्रभावित किया।

मुस्लिम आक्रांताओं के साथ सूफी साधक और फकीर भी आये। कश्मीर और अवध के प्रदेशों में इसके केंद्र स्थापित होने का काल भी यही है।

1.4.3 सामाजिक

राजनीतिक और धार्मिक विशृंखलता एवं उथल-पुथल के युग में सुसंगठित एवं व्यवस्थित समाज की आशा नहीं की जा सकती। सातवीं से दसवीं शती तक बाहर से आई हुई अनेक जातियों को हिंदू-समाज आत्मसात करता रहा। वर्ण व्यवस्था नाममात्र की रह गई। नई-नई जातियों का उद्भव हुआ और हिंदू-समाज के पुराने संगठन का ढाँचा बदल गया है। ब्राह्मण और क्षत्रियों के ही नहीं, वैश्यों और शूद्रों के भी भेदोपभेद बन गये। ब्राह्मणों की अनेक जातियों के समान क्षत्रियों की भी अनेक जातियाँ हो गई। इस जाति-भेद ने खान-पान और वैवाहिक संबंधों में नई-नई मान्यताओं का समावेश कर दिया। छुआछूत को प्रश्रय मिला। राजपूत जाति पहली पंक्ति में गई। तांत्रिक, योगी, महायानी, बौद्ध और हिंदू-समाज की निम्न जातियाँ सामूहिक रूप से मुसलमान बन गईं। शासकीय धर्म की श्रेष्ठता, सामाजिक भ्रातृभाव की भावना और बलात् धर्म परिवर्तन के कारण इस्लाम धर्म ने इन्हें अधिक आकर्षित किया। मुसलमानों के प्रति सामाजिक बहिष्कार की भावना का श्रीगणेश इसी समय हुआ। इसी सामाजिक परिस्थिति ने एक ओर नाथपंथियों और दूसरी ओर सूफियों को यह अवसर दिया कि वे इस्लाम और हिंदू धर्म के कुछ समन्वयात्मक तथ्यों को प्रभावशाली बनाकर अपने दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार कर सके।

जनसामान्य से व्यवहार के लिए शासक-वर्ग प्रचलित जनभाषा का ही व्यवहार कर सकता था। सिद्ध, जैन, नाथपंथी, सूफी और विविध वैष्णव संप्रदायों के लिए भी यह आवश्यक था कि वे जन-सामान्य पर अपनी विचारधारा का प्रभाव डालने के लिए जनभाषा अपनाते। आदिकाल के पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध में उपलब्ध कृतियों पर अपभ्रंश का प्रभाव तीव्र गति से क्षीण हुआ।

1.4.4 साहित्यिक

साहित्यिक प्रवृत्ति की दृष्टि से उत्तर भारत की समकालिक कृतियों की भाषा कोई भी हो, उनकी प्रवृत्तियों में पर्याप्त समानताएँ मिलती हैं। थोड़े कालांतर से उत्तर और दक्षिण का साहित्य भी एक-दूसरे को प्रभावित करता रहा है। आदिकाल में संस्कृत-साहित्य प्रचुर मात्रा में निर्मित हुआ। प्राचीन ग्रंथों पर टीकाएँ भी खूब लिखी गईं। संस्कृत साहित्य में चरित-काव्य निर्माताओं में पद्मगुप्त

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(1005 ई.), विल्हण (1076-1126 ई.), कल्हण (1140-51 ई.), जयानक (1200 ई.), नाटकों के विविध प्रयोग कर्त्ताओं में कृष्ण मिश्र (1100 ई.), जयदेव (1200 ई.), वत्सराज (1163-1203 ई.), जयसिंह सूरि (1230 ई.), महाकवि श्री हर्ष (1169-1195 ई.) तथा दूत या संदेश काव्य-निर्माता धोयी (1116 ई.), गीतगोविंदकार जयदेव (1116 ई.), उच्च कोटि के विद्वान, कवि और आचार्य भोज (1018-1063 ई.) आदि ने इसी युग में अपना साहित्य प्रस्तुत किया। शिलालेखों से हटकर गद्य-पद्य-मिश्रित चंपू काव्यों का आरंभ त्रिविक्रम (915 ई.) तथा सोमदेव सूरि (959 ई.) किया। जैन कवि सोमदेव सूरि का चंपू काव्य यशस्तिलक चंपू या यशोधर चरित्र चंपू संस्कृत में हैं। इन्हीं के समकालिक पुष्यदंत ने उसी कथानक पर अपभ्रंश में 'जसहर चरित्र' लिखा। जैन चंपू काव्यों में वीर, श्रृंगार और शांत रस की प्रमुखता रही। जैन शिलालेखों में भी गद्य-पद्य-मिश्रित शैली के साथ-साथ रूप-चित्रण की प्रमुखता रही है। रोड़ा कवि के शिलालेख 'राउल बेलि' की रूप-चित्रण-प्रवृत्ति को होय्सल नरेश बल्लाल के एक शिलालेख (1180 ई.) में अंकित आचल देवी के रूप-चित्रण के सामने रखकर समझा जा सकता है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका की अलंकृत गद्य-पद्य शैली चंपू काव्यों की प्रवृत्तियों से ही प्रभावित है। संस्कृत की गद्य और पद्य की शैली में इस युग की कृतियाँ अलंकरण की ओर अधिक उन्मुख रही हैं।

अपभ्रंश से आदिकालीन हिंदी-साहित्य का सीधा संबंध रहा है। किंतु संस्कृत-अपभ्रंश और पुरानी हिंदी की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ परस्पर होती हैं। डॉ. शिव प्रसाद सिंह का विचार है कि जयदेव ने अपना गीत गोविंद पहले अपभ्रंश में लिखा, बाद में उसे संस्कृत में अनूदित किया है। (तूलनीय-प्राकृत पैंगलम् 570/270 और गीत अष्टपदी 1 श्लोक 12) ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने संस्कृत नाटकों में मैथिली गीतों का समोवश किया है। विद्यापति की संस्कृत, अवहट्ट तथा मैथिली तीनों में रचनाएँ मिलती हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपभ्रंश साहित्य में तीन प्रकार के बंधों का उल्लेख किया है– 'दोहा बंध, पद्धड़िया बंध और गेय-पद बंध। दोहाबंद के अन्तर्गत-निर्गुणप्रधान धार्मिक और उपदेशमूलक, श्रृंगार-प्रधान, नीतिविषयक और वीररस प्रधान साहित्य मिलता है। पद्धड़िया बंध में अनेक चरित्र काव्य लिखे गये। गये-पद-बंध में कई प्रकार के पद होते थे। जिसमें रासक छंद अधिक लोकप्रिय था। बाद में रासक, गेयपदों का पर्याय बन गया। अपभ्रंश के महाकवि स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है, जिनमें से अनेक छंद मध्यकाल में लोकप्रिय बने हैं। बरवे और अतिबरवे का प्रयोग भी (पउमचरिउ : 19वीं 45वीं संधि) उन्होंने ही पहले किया था। प्रवृत्ति और शैली दोनों ही दृष्टियों से हिंदी ने अपभ्रंश से पर्याप्त उपहार प्राप्त किया है।

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकते हैं कि इतिहास के कालविभाजन और नामकरण की आवश्यकता अध्ययन की सुविधा के लिए तो है ही; इतिहास को सही ढंग से समझने के लिए भी यह बेहद जरूरी है। कालविभाजन और नामकरण करते समय प्रायः साहित्यिक प्रवृत्ति को आधार बनाया जाता है। आदिकालीन परिस्थितियों के अध्ययन के उपरांत यह स्पष्ट होता है कि युग के साहित्य को

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

नियमित नियंत्रित करने वाली स्थितियों के कारण आदिकालीन साहित्य परस्पर विरोधी चिंतनधाराओं की वैविध्यमयी अभिव्यक्ति का साहित्य है। आदिकालीन परिवेश, रुचि, स्थितियों और चित्तवृत्तियों ने भाषा एवं साहित्य को जनता तथा शासक की अपेक्षाओं के अनुकूल बनाने के लिए नियमित एवं नियंत्रित किया।

1.6 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी साहित्य का आरंभ कब से माना जाता है?
2. हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों के बारे में लिखिए।
3. हिंदी साहित्येतिहास के कालविभाजन का प्रयास सर्वप्रथम किसने किया? उसके बारे में लिखिए।
4. आदिकाल के नामकरण पर विचार कीजिए।
5. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थीं? विस्तार से विवेचन कीजिए।
6. आदिकालीन साहित्यिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की समीक्षा कीजिए।
7. आदिकालीन साहित्य को युगीन परिस्थितियों ने कैसे प्रभावित किया? तर्कपूर्ण उत्तर लिखिए।

1.7 संदर्भ-ग्रंथ

1. '*हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*' - विश्वनाथ त्रिपाठी
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - सं.-डॉ. नगेन्द्र
4. '*हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*' - बच्चन सिंह
5. '*हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*' - रामस्वरूप चतुर्वेदी
6. '*हिंदी साहित्य का आदिकाल*' - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
7. '*हिंदी साहित्य की भूमिका*' - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2. मध्यकाल : भक्तिकाल – सामान्य परिचय

लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 भक्ति काल (भक्ति आंदोलन) की परिस्थितियाँ
  2.2.1 धार्मिक परिस्थिति
  2.2.2 राजनीतिक परिस्थिति
  2.2.3 सामाजिक परिस्थिति
  2.2.4 बोध प्रश्न
2.3 भक्ति आंदोलन का उद्भव और विकास
  2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 सारांश
2.5 अभ्यास प्रश्न
2.6 संदर्भ-ग्रंथ

2.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ के माध्यम से आप निम्नलिखित बिंदुओं को जान सकेंगे—

- भक्तिकाल की परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि संपूर्ण भक्ति काव्य में विशेष बातें कौन-कौन सी हैं ?
- संपूर्ण भक्ति काव्य के महत्व को समझ सकेंगे।
- भक्तिकालीन प्रमुख भक्त कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.1 प्रस्तावना

भक्ति काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। भक्ति आंदोलन को एकांगी दृष्टि से नहीं समझा जा सकता है। इसका सबसे बड़ा कारण है इस आंदोलन का बहुमुखी प्रभाव। भक्ति को आधार बनाकर जनमानस की आस्था और भक्ति के भीतर से एक व्यापक आंदोलन खड़ा हुआ, जिसे भारतीय इतिहास एवं सांस्कृतिक जीवन में भक्ति आंदोलन के नाम से जाना जता है। इस आंदोलन के फलस्वरूप अखिल भारत में सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन में नवीन शक्ति एवं गतिशीलता का संचार हुआ। विचार और कर्म दोनों स्तरों पर समाज का उन्नयन इस आंदोलन की विलक्षण उपलब्धियाँ थीं। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन का विकास जिस उर्वर भूमि में हुआ, उस समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ अनेक विषमताओं से ग्रसित थीं।

2.3 मध्यकाल भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

आदिकाल के बाद हिंदी में भक्ति–साहित्य उदय हुआ। राजनैतिक और सामाजिक कारणों से भक्ति की प्रवृत्ति बढ़ी, जो भक्ति साहित्य में हुई। यह भक्ति काव्य उसके वर्ण्य विषय के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया गया है–निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्तिकाव्य/भक्ति की निर्गुण धारा की भी दो शाखाएं हैं–ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। इसी प्रकार सगुण भक्तिधारा की भी दो शाखाएं हैं–रामभक्ति शाखा और कृष्णाभक्ति शाखा। संपूर्ण विभाजन को निम्नलिखित वृक्ष की सहायता से भलीभांति समझा जा सकता है–

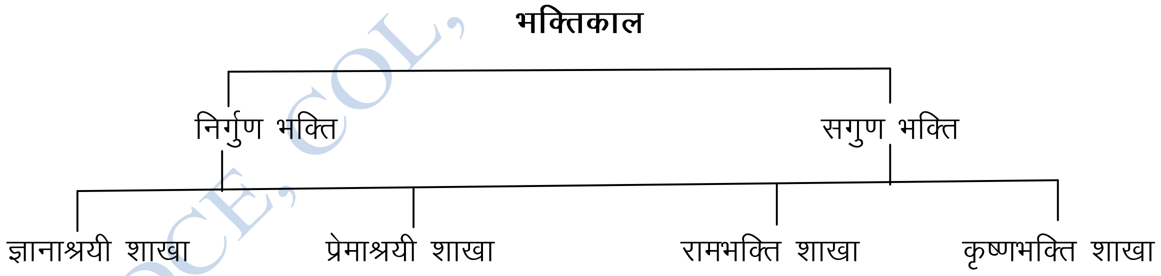

1.2.1 धार्मिक परिस्थिति

प्राचीन भारत में वैदिक धर्म का बोलबाला था। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' अर्थात् 'भगवान एक ही है परंतु लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं," के अनुसार लोग एक ही ईश्वर का मन में, एकान्त स्थान में, ध्यान किया करते थे। वे यज्ञादि द्वारा वायुमंडल शुद्ध किया करते थे और सदाचारपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। परंतु समय सदा एक-सा नहीं रहता। देश में अज्ञान का अंधकार छा गया और निराकार की उपासना लोगों को कठिन प्रतीत होने लगी। तब अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बना ली गयीं और ईश्वर के अवतारों की कल्पना की गयी। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि की मूर्तियों की

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पूजा होने लगी। व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव की अपेक्षा उसके वंश और जाति को प्रधान माना जाने लगा। धर्म के इस पतन को देखकर महात्मा बुद्ध के हृदय पर चोट लगी। उन्होंने धार्मिक अवस्था में सुधार करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने धर्म में ईश्वर तथा जन्ममूलक वर्णों को कोई स्थान नहीं दिया। परंतु जब मनुष्य किसी को अपने से अधिक शक्तिशाली नहीं पाता, तब वह निडर हो मनमानी करने लगता है। इसलिए बौद्ध-धर्म में भी कुछ काल बाद विकार आरंभ हो गया। स्वामी शंकराचार्य ने बौद्ध विद्वानों से स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ करके भारत से बौद्ध धर्म को बहुत कुछ उखाड़ फेंका, परंतु वह क्षीण रूप में चलता रहा और उसमें मद्य, मांस, मैथुन आदि का भी प्रचार होने लगा। यह अनाचार तथा दुराचार देखकर यहाँ नाथ-पंथ प्रवर्तित हुआ, जिसमें सदाचार के नियम बहुत बड़े थे और स्त्री-स्पर्श तक का निषेध कर दिया गया था। भगवान महावीर के पंथ 'जैन धर्म' ने अहिंसा का इतना अधिक प्रचार किया कि देश नपुंसकता की सीमा लाँघ गया। भाग्यवाद, पाखंड, निकम्मापन, स्वार्थ और निर्धनता ने यहाँ की जनता को घेर लिया। यह तो थी हिंदुओं की अवस्था।

मुसलमानों को भारत में आये हुए अनेक शताब्दियाँ बीत चुकी थीं। वे विजेयता के रूप में आए थे और अपने धर्म को हिंदू धर्म से ऊँचा समझते थे। वे एक ईश्वर के पूजक थे और मूर्तियों तथा मूर्तिपूजा का खंडन करते थे। परंतु दोनों में कुछ समानताएँ भी थीं। हिंदू अनेक व्रत रखते थे, वैसे ही वे रोजा रखते थे; जैसे हिंदू माला फेरते थे, वैसे ही वे तस्बीह (माला) फेरते थे, हिंदू तीर्थ-यात्रा करते थे, वैसे ही वे हज-यात्रा को पावन कर्त्तव्य समझते थे, हिंदू घंटे-घड़ियाल बजाते थे, वैसे ही वे मस्जिद में अजान देते थे, हिंदू वेद-शास्त्रों को पवित्र मानते थे, वैसे ही मुसलमान कुरान-हदीस का आदर करते थे। सारांश यह है कि दोनों ही धर्मों में बाहरी आडंबरों पर बहुत बल था, परंतु धर्म का वास्तविक तत्त्व, एक प्रभु से सच्चा विश्वास और मनुष्य मात्र से प्रेम लुप्त हो रहा था। यह थी धार्मिक अवस्था, जिसे देखकर कबीर जैसे संतों का हृदय काँप उठा और उन्होंने प्राणों की चिंता छोड़कर लोगों को सत्पथ पर लाने के लिए कमर कस ली।

1.2.2 राजनीतिक परिस्थिति

भारत की राजनीतिक दशा सम्राट हर्षवर्धन (7वीं सदी ई.) के बाद से ठीक न थी। उनके बाद केंद्रीय शासन निर्बल हो गया और भारत के विभिन्न भागों पर विभिन्न राजपूतों और विदेशी जातियों का अधिकार हो गया। प्रत्येक राज्य का शासक पड़ोसी राज्य को हड़प कर अपना राज्यक्षेत्र बढ़ाने की धुन में मग्न था। इस समय मुसलमानों ने भी भारत पर आक्रमण आरंभ कर दिए। महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी तो अपने आक्रमणों में लूट-मार करके चले गये परंतु उनके पश्चात् गुलाम, खिलजी और तुगलक वंशों ने भारत पर शासन किया। इन वंशों के शासनकाल में भारी अव्यवस्था रही। मुहम्मद बिन तुगलक से लेकर इब्राहीम लोदी तक (सन् 1325-1526 ई.) दो सौ वर्षों में सोलह शासक सिंहासन पर बैठे। इनमें से अधिकतर शासकों में सहनशीलता नहीं थी। जनता की शासकों के प्रति सहानुभूति नहीं थी, इसी प्रकार दोनों धर्मों के अनुयायियों में भी प्रेम-भाव न रह गया था। मुसलमान अपने धर्म को ऊँचा समझते थे और वही शासक भी थे। हिंदू राजनीतिक दृष्टि से मिट चुके थे परंतु प्राचीन धर्म, संस्कृति

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

और इतिहास को दृष्टि में रखकर अपने को छोटा समझने को तैयार न थे। इसके अलावा हिंदू सामंत और धर्माचार्य भी उन्हें मुस्लिमों के विरुद्ध भड़काते रहते थे। ऐसी परिस्थिति में दोनों के दर्प को दलित करने के लिए कबीर ने एक नये पंथ का आरंभ किया, जिसमें सब मानव एक भगवान की संतान थे, भाई-भाई थे, ऊँच-नीच का प्रश्न न था।

1.2.3 सामाजिक परिस्थिति

आरम्भ में आर्य लोग चार वर्णों में बंटे हुए थे। जो पठन-पाठन, यज्ञ-याग आदि क्रिया करते थे, उन्हें ब्राह्मण कहते थे, जो युद्धों और राजकार्यों में सम्मिलित होते थे, उन्हें क्षत्रिय जो व्यापार, कृषि, गो-पालन आदि करते थे उन्हें वैश्य और जो लोग छोटे-मोटे काम करते थे, उन्हें शूद्र कहा जाता था। कालांतर में यह क्रम बिगड़ गया और ब्राह्मण का अनपढ़ पुत्र भी ब्राह्मण तथा शूद्र का अध्यापक बेटा भी शूद्र कहलाने लगा। इस न्याय-विरोधी व्यवस्था का बौद्ध धर्म ने कड़ा खंडन किया। परंतु जब बौद्ध धर्म क्षीण हो गया और ब्राह्मण धर्म ने पुनः जोर पकड़ा तब फिर कर्म की अपेक्षा जन्म को महत्त्व दिया जाने लगा। ब्राह्मण संन्यासी आदि अपने को बहुत ऊँचा और दूसरे वर्गों तथा जातियों के लोगों को नीचा समझने लगे। कबीर, रैदास, दादू आदि अनेक ज्ञानाश्रयी संत कवि एक तो स्वयं ऊँचे न माने जाने वाले कुलों में पैदा हुए थे और दूसरे, कर्म की अपेक्षा जन्म को ऊँचा मानना है भी अन्याय, इसलिए इन संतों-कवियों ने अपने पूर्वज जैन कवियों की परंपरा का निर्वाह करते हुए इस सामाजिक बुराई को जड़ से उखाड़ फेंकने में कोई कसर न छोड़ी, यथा–

> गरभ वास महि कुल नहीं जाती। ब्रह्म हिंदू से सभ उतपाती।।
> जो तूं ब्राह्मण ब्राह्मणी जाइआ। तउ आन बाट काहे नहीं आइआ।।
> तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद। हम कत लोहू तुम कत दूध।।
> कहु कबीर जो ब्रह्म बीचारे। सो ब्राह्मण कहीअतु है– हमारे।। –**कबीर**

इसी प्रकार साधु-संन्यासियों में भी भेद-भाव चल रहा था। प्रत्येक वर्ग अपने को ही तीसमारखाँ समझता था। वे लोग अपने सिर मुंडवा कर, वस्त्र रंगवा कर लोगों को बुद्धू बनाकर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। ऐसे दंभ और पाखंड को देखकर ही संत कवि यह कहने को विवश हुए–

> पंडित जन माते पढ़ि पुराण। जोगी माते जोग पियान।।
> सनिआसी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव।। –**कबीर**

सामान्य लोगों का ध्यान भगवान् की ओर न था। वे कंचन और कामिनी के जाल में ऐसी बुरी तरह फंसे हुए थे कि उन्हें ही जीवन का लक्ष्य बना लिया था। परिणाम यह हुआ कि सदाचार के नियमों की तनिक भी परवाह न की जाती थी और प्रत्येक उचित-अनुचित उपाय से धन-संग्रह किया जाता था और अमूल्य मनुष्य जीवन रूपी रत्न कौड़ी के बदले में नष्ट किया जा रहा था। यह अवस्था देखकर उन संतों की आत्माएँ चीख उठीं। इतना ही नहीं संतान बेचकर धनोपार्जन करने में भी उन्हें संकोच न था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञानश्रयी शाखा की उत्पत्ति में उस समय की परिस्थितियों का पर्याप्त हाथ था।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.4 ज्ञानमार्गी शाखा (संत काव्य)

ज्ञानाश्रयी शाखा का संबंध निर्गुण भक्ति से है। आइए, पहले निर्गुण भक्ति को समझ लें, तब ज्ञानाश्रयी शाखा पर विचार करेंगे। 'निर्गुण' शब्द में गुण का अर्थ विशेषण या लक्षण है। जिस ब्रह्म का निरूपण किसी विशेषण या लक्षण के द्‌वारा न किया जा सके वह निर्गुण है। उपनिषदों में ऐसे ब्रह्म को 'नेति-नेति' अर्थात् 'वह ऐसा नहीं' 'वह ऐसा नहीं' कहा है। वह गुणातीत है। प्रकृति में सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण हैं। किंतु निर्गुण ब्रह्म इन तीनों प्राकृतिक गुणों से रहित है। इसलिए उसकी यह परिभाषा सबसे उपयुक्त लगती है–

"निर्गुणसत्वरजस्तमांसि गुणाः तैः वर्जितः" अर्थात् सत्त्व, रज और तम जो गुण हैं, उनसे वर्जित निर्गुण हैं।

निर्गुण ब्रह्म निराकार है। वह अव्यक्त है। उसे अपनी भक्ति का आलंबन बनाना बहुत कठिन है। हिंदी में निर्गुण भक्ति की अभिव्यक्ति सबसे पहले महाराष्ट्र के प्रसिद्‌ध संत नामदेव (संवत् 1328-1408) की रचनाओं में मिलती है पर उसके साथ ही उन्होंने सगुणोपासना को भी अपनाया है। हिंदी काव्य में निर्गुण-भक्ति की पूरी प्रतिष्ठा और प्रवर्तन करने का श्रेय कबीरदास को है। उनके अलावा दादू, नानक, रैदास, सुंदरदास, मलूकदास आदि अनेक संत हुए हैं जिन्होंने निर्गुण भक्ति की अभिव्यक्ति की है। ये कवि धर्म की तीन बातों– कर्म, ज्ञान और मुक्ति में से ज्ञान का आश्रय लेकर भक्ति-पथ की ओर अग्रसर हुए थे। अतएव इस शाखा को 'ज्ञानाश्रयी शाखा' भी कहा गया है। इसे ही 'संत काव्य' अथवा 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा' आदि नामों से पुकारा जाता है।

2.3.1 प्रमुख संत कवि

कबीर (1399-1518 ई.)

कबीरदास संत काव्य या निर्गुण भक्ति-शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। वे एक साथ समाज सुधारक, भक्त और कवि थे। वे स्पष्टवक्ता और निर्भीक पुरुष थे और समाज की रूढ़ियों पर बड़ी निर्ममता से आक्रमण करते थे। कबीर का काव्य, साखी, सबद और रमैनी में विभक्त है। इनके द्‌वारा रचित पदों तथा साखियों आदि का संग्रह इनके शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' में कर दिया था। अब 'कबीर-ग्रंथावली' में ये प्राप्य हैं। उनके काव्य में निर्गुण ईश्वर की उपासना, पाखंड-खंडन, जाति-विरोध, सदाचार आदि का प्रमुख रूप से वर्णन हुआ है।

उनके संदेश में से कुछ मुख्य बातें आपको जाननी चाहिए। उनके संदेश को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं– 1. ईश्वर; 2. गुरु; 3. धर्मग्रंथ; 4. हिंदू-मुस्लिम एकता; 5. जाति-पाँति का खंडन; 6. पाखंड-खंडन; 7. सदाचार या पवित्र जीवन।

1. **ईश्वर**– कबीर ने एक सर्वशक्तिमान, निराकार ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया। इस्लाम की आँधी का सामना करने के लिए समाज में इस तरह की भक्ति पद्‌धति का प्रचार आवश्यक था। मूर्ति

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

पूजा की बाहरी साधना के त्याग का प्रचार करने के कारण उन्होंने कहा कि अवतार, मूर्ति पूजा आदि में उनका तनिक भी विश्वास न था, जैसा कि निम्नलिखि उद्धरणों से स्पष्ट है–

(क) निर्गुण राम, निर्गुण राम जपहु रे भाई।
(ख) पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजों पहार।
तातै यह चाकी भली पीस खाय संसार।।
(ग) दशरथ–सुत तिहुं लोक बखाना
राम राम नाम का मरम है आना।।

सांसारिक काम काज-काज करते हुए, मनुष्य को भगवान् के ध्यान में मग्न रहना चाहिए–

ज्यौं तिरिया पीहर बसै सुरति रहे पिय माँहि।
ऐसे जन जग में रहें, हरि को भूले नाहिं।।

2. गुरु– हमारे देश में गुरु को ज्ञानदाता होने के कारण बहुत महत्त्व दिया गया है। बिना गुरु के ज्ञान नहीं हो सकता, तो ज्ञानमार्गी संत 'कबीर' गुरु को ईश्वर के समकक्ष बैठाते हैं, तो क्या आश्चर्य–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविंद दिया मिलाय।।

3. धर्मग्रंथ– प्रत्येक पंथ के अपने-अपने धर्मग्रंथ थे। लोग उन्हें आधार मानकर मनमाने अर्थ-अनर्थ करते थे और आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। कबीर ने लोगों का ध्यान उनसे हटाकर सच्चाई की खोज करने की ओर लगाया। शास्त्रों का अनुकरण करने की बजाय निजी अनुभव से स्वहित और अनहित का मार्ग खोजना वे श्रेयस्कर समझते थे–

(क) मैं कहता हूँ आंखिन देखी, तू कहता है कागद लेखी।।

उनका विचार था कि वेदादि धर्मग्रंथ तो झूठे नहीं हैं, परंतु लोग उनके तत्त्व को नहीं समझते।

(ख) वेद कितेव कहौ मत झूठे, झूठा जो न विचारे।

उन्होंने अपनी 'साखियों', 'सबदों' में अनेक पौराणिक कथाओं को श्रद्धा के साथ उद्धृत किया है।

4. हिंदू-मुस्लिम एकता– हिंदू और मुसलमान को परस्पर लड़ते-झगड़ते देखकर कबीर का कोमल हृदय विदीर्ण हो जाता था। उनकी दृष्टि में दोनों ही समान थे, एक ही भगवान की अलग-अलग संतान थे। इस पर भी अज्ञान के कारण एक-दूसरे के प्राण लेने पर उतारू रहते थे। अपनी वाणी द्वारा कबीर ने द्वेष को दूर कर उन्हें एक-दूसरे के समीप लाने का महान् कार्य किया। जैसे–

(क) कह हिंदू मोहिं राम पियारा, तुरुक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लरि-लरि मूये, मरम न काहू जाना।
(ख) कोई हिंदू कोई तुरक कहावै, एक जमीं पर रहिये।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(ग) वेद पुरान पढ़े वे खुतबा वे मौलानां वे पांडे।
विगत विगत के नाम धराये यक माटी के भांडे।।

5. जाति-पाँति– दोनों प्रधान धर्मों के लोग अनेक जातियों में बंटे हुए थे। प्रत्येक जाति अपने को ऊँचा समझकर अभिमान में डूबी रहती थी। कबीर ने गुणों को प्रधान माना और जाति को तुच्छ। जैसे–

(क) जात न पूछौ साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान।।

काशी जैसे ब्राह्मणों के गढ़ में रहकर यह कहना– "जो तुम बामन बामनि जाये और राह तुम काहे न आये।" कबीर की निर्भयता का सूचक है। केवल जाति के आधार पर किसी की पूजा और किसी का अपमान संतजनों को कभी नहीं भाया। कबीर मानवतावादी थे, इसलिए उन्होंने मानवीयता के नाते सभी गुणी जनों का सम्मान, बिना उसकी जाति विचारे, करने का उपदेश दिया।

6. पाखंड-खंडन– भारतीय समाज में व्याप्त अनेक पाखंडों का विरोध आदिकालिन जैन कवियों ने खुलकर किया था, तो भक्ति काल में कबीर ने उसी परंपरा को सशक्त ढंग से जीवित रखा। मन को तो पवित्र न करना और तरह-तरह के वेश बनाकर भक्त कहाने का दंभ भरना कबीर को बहुत बुरा लगता था। इसलिए वे ऐसे पाखंडों के खंडन में कभी नहीं झिझकते थे, जैसे–

(क) माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो चहुं दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं।।

(ख) केसन कहा बिगारिया, जो मूंडौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूंड़िये, जा में विषय विकार।।

जप, माला, छापा, तिलक, मूर्ति पूजा, मस्जिद की अजान आदि सब उनकी दृष्टि में पाखंड ही थे।

7. सदाचार– कबीर सत्य, अहिंसा, शील, संतोष, दया, क्षमा आदि के पालन पर और काम, क्रोध, लोभ आदि के दमन पर विशेष बल देते थे–

(क) सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच हैं ताके हिरदै आप।।

(ख) जहाँ दया तहं धर्म है, जहाँ लोभ तहं पाप।
जहाँ क्रोध तहं काल है, जहाँ क्षमा तहं आप।।

उनकी दृष्टि में सदाचार ही प्रभु-प्राप्ति का प्रमुख द्वार था।

कबीर के अतिरिक्त इस शाखा के कुछ संत कवि निम्नलिखित हैं– गुरुनानक, मलूकदास, दादूदयाल, धर्मदास, धरणीदास, सुंदरदास, दरिया साहब, यारी साहब, बुल्ला साहब, चरनदास, गरीबदास, जगजीवनदास, दयाबाई, सहजोबाई, तुलसी साहब (हाथरस वाले)।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

उपर्युक्त कवियों के वर्ण्य-विषय लगभग वही थे, जिनका वर्णन कबीर ने किया था। इनमें से कुछ प्रमुख कवियों का परिचय इस प्रकार है–

नानक (1469-1538 ई.)– सिख संप्रदाय के आदि गुरु थे। लाहौर के समीप ननकाना साहब में इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम कालू खत्री और माता का तृप्ता था। पिता द्वारा व्यापार के लिए दिया गया धन इन्होंने साधु-संतों को खिला दिया। पहले राजकीय सेवक थे, पीछे उसे त्यागकर धर्म-प्रचारार्थ देश-विदेश की यात्राएँ की। इनके दोहे, पद आदि सिखों के 'आदि ग्रंथ' में संगृहीत हैं।

काहे रे मन खोजन आई।
सर्वनिवासी सदा अलेपा ताही संग समाई।
पुहुप मध्य ज्यों बास बसत है मुकुर मांहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई।।

दादूदयाल (1544-1603 ई.)– अहमदाबाद (गुजरात) में इनका जन्म किसी धुनिए या मोची गृहस्थ के घर हुआ और दयालू होने से दादूदयाल कहाते थे। उन्होंने राजस्थान में घूम-घूमकर हिंदू-मुस्लिम एकता तथा संत मत का खूब प्रचार किया। इनके 52 शिष्य थे जिन्होंने 52 दादू द्वारों (धर्मस्थानों) की स्थापना की। वहाँ इनकी वाणी की पूजा वैसे ही होती थी जैसे सिखों के गुरुद्वारों में गुरुग्रंथ साहब की होती है। इनकी कविता का उदाहरण–

घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़ै ते और।।

सुंदरदास (1596-1689 ई.)– इनका जन्म द्योसा (जयपुर) में एक खंडेलवाल वैश्य के घर में हुआ। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों में यही एक ऐसे थे, जिन्होंने विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने कई वर्ष काशी में रहकर विद्याभ्यास किया था और घूम-घूमकर अनुभव भी खूब प्राप्त किया था। ये दादूदयाल के शिष्य थे और इनका हिंदी, संस्कृत, फारसी, गुजराती, मारवाड़ी तथा पंजाबी भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। ये सुशिक्षित थे और रस, छंद, अलंकार आदि काव्यांगों पर इनका यथेष्ट अधिकार था। इनके ग्रंथों में 'सुंदर-विलास' और 'ज्ञान समुद्र' तथा अनेक पद बहुत प्रसिद्ध हैं। भक्ति के संबंध में इनके विचार कितने भावपूर्ण हैं–

है यह अति गंभीर, उठति लहर आनन्द की।
मिष्ट सु याको नीर सकल पदार्थ मध्य है।।

2.3.2 ज्ञानाश्रयी शाखा की प्रमुख विशेषताएँ

(1) निर्गुण उपासना– इस शाखा के कवियों ने ईश्वर को निर्गुण माना है। निराकार ब्रह्म की भक्ति को आलंबन बनाना कठिन होता है। इसके संबंध में ज्ञान की चर्चा सुलभ होती है। कबीर ने सिद्धों और नाथों की विचारधारा को और आगे बढ़ाया और निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और घट-घटवासी ब्रह्म की उपासना पर बल दिया। 'निर्गुण राम जपहु रे भाई' आदि पंक्तियों से उनके ये विचार भली प्रकार

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

समझे जा सकते हैं। इनका ब्रह्म एक है। बहुदेववाद में इन्हें विश्वास नहीं। इनका ब्रह्म अवतार नहीं लेता। यह जन्म-मरण के बंधन से परे है, तथापि इन्होंने उस राम के अनेक पौराणिक नामों का प्रयोग किया है।

(2) **निरक्षर कवि**— ये कवि प्रायः निरक्षर थे। कबीरदास ने तो स्वयं कहा है कि उन्होंने "मसि कागद छूओ नहीं कलम गही नहिं हाथ"। संत कवियों में शायद केवल सुंदरदास की ही शिक्षा व्यवस्थित ढंग से हुई थी। लेकिन शिक्षा के अभाव में भी, ज्ञान और अनुभव के आधार पर अपनी बात स्पष्ट रूप से कहने के कारण, संत काव्य में सच्चाई और गहराई है। इन लोगों का जीवन भी वैसा ही था, जैसा वे कहते थे। कथनी और करनी में अंतर नहीं था। कवि-रूप की प्रधानता न होते हुए भी इनकी वाणी प्रभावपूर्ण रही, क्योंकि उसमें हृदय की सत्यता मिलती है। सत्संग ही इनके ज्ञान का आधार रहा।

(3) **जाति-व्यवस्था का विरोध**— जाति-पाँति का सभी संतों ने विरोध किया। **"जाति-पाँति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई"** कहकर उन्होंने जाति-भेद का विरोध किया है। ये सभी कवि प्रायः निम्न जाति के थे। कबीर जुलाहा थे। रैदास चमार थे। दादूदयाल मोची या धुनिया थे। अपनी जाति को इन्होंने कभी छिपाया नहीं, वरन् खुलकर कहते थे—'तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा, सच कहु ठौर ठिकाना' या 'कह रैदास खलास चमारा'। ऊँची जातियों के कवियों में नानक और सुंदरदास के नाम प्रमुख हैं। परंतु उन्होंने भी जाति की महत्ता को स्वीकार नहीं किया।

(4) **पाखंड विरोध**— इन कवियों ने मिथ्या आडंबरों का विरोध करके पाखंडियों की निंदा की है। उस समय के समाज में हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मावलंबियों में व्रत, पूजा, तीर्थ अथवा रोजा, नमाज, हज आदि की प्रवृत्ति थी। इस प्रकार के आडंबरों में इन कवियों की आस्था नहीं थी, अतः इन्होंने मुल्लाओं और पंडितों की खूब खिल्ली उड़ाने की चेष्टा की है—

काँकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँ दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।

तथा

पाथर पूजे हरि मिलै तो मैं पूजू पहार। (कबीर)

(5) **हिंदू-मुस्लिम एकता**— हिंदू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने बहुत प्रयत्न किया। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों को समान दृष्टि से देखकर उन्हें संमार्ग पर चलने का उपदेश दिया। कबीर की एक बड़ी प्रसिद्ध पंक्ति इस संबंध में उल्लेखनीय है— 'अरे इन दोऊन राह न पाई।' कभी-कभी उन्होंने अपने को हिंदू-मुस्लिम कुछ भी न मानकर पाँच तत्त्व का पुतला कहा है—

'हिंदू कहो तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।

दोनों धर्मों की अच्छी बातों पर बल देकर और दुर्बलताओं पर प्रहार करके उन्होंने हिंदू और मुसलमानों को समीप लाने का प्रयत्न किया।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(6) **माया से बचने का उपदेश**– संत कवियों ने माया से सावधान रहने का बराबर उपदेश दिया है। माया के प्रभाव से बचना बड़ा कठिन है। मेरे-तेरे का विचार रखना, कंचन और कामिनी में आसक्त रहना और संसार के विभिन्न आकर्षणों से युक्त रहकर इंद्रिय-सुख की कामना करना आदि सब माया है। इस सबकी निंदा की गई है। नारी के प्रति संत कवियों की दृष्टि बड़ी आलोचनापूर्ण रही है– 'नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग' जैसी उक्तियों द्वारा नारी से दूर रहने का उपदेश दिया गया है। यह तत्कालीन समाज की नारी विषयकर सामान्य धारणा का परिणाम है।

(7) **गुरु की महत्ता**– गुरु को सभी संतों ने बहुत ऊँचा माना है। पढ़े-लिखे न होने से गुरु के उपदेश का इनके यहाँ बहुत महत्त्व था। गुरु की कृपा बड़ी आवश्यक थी। कहीं-कहीं तो गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा मान लिया गया–

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताय।। –कबीर

(8) **रहस्यात्मकता**– ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों की एक प्रमुख विशेषता उनकी ईश्वर से संबंधित रहस्यात्मक उक्तियाँ हैं। आत्मा-परमात्मा के संबंध का कथन करके जब आत्मा का परमात्मा के प्रति काव्य में अनुराग व्यक्त किया जाता है तो उसे रहस्यवाद कहा जाता है। कबीर ने आत्मा को स्त्री और परमात्मा को पुरुष मानकर विरह की मार्मिक व्यंजना की है। उनके ऐसे कथन रहस्यवाद की कोटि में आते हैं। कबीर का रहस्यवाद कहीं तो नाथपंथियों के हठयोग से प्रभावित है, कहीं सूफियों के प्रेम से और कहीं उपनिषदों के अद्वैत सिद्धांत से। कबीर की तरह धर्मदास, सुंदरदास और मलूकदास आदि कवियों ने भी रहस्यात्मक भाव व्यक्त किये हैं। ईश्वर की सर्वव्यापकता बोधक इन पंक्तियों में आत्मा-परमात्मा के विरह और मिलन दशा का वर्णन हुआ है–

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल। –कबीर

(9) **काव्य-रचना तथा भाषा**– इन कवियों की रचनाएँ मुक्तक रूप में मिलती हैं। गीति काव्य की दृष्टि से इनका अपना महत्त्व है। इसमें संगीतात्मकता और आत्मभिव्यक्ति की प्रधानता है। दोहा अथवा पदों में ही अधिकतर रचनाएँ मिलती हैं। कहीं-कहीं कवित्त, सवैया, रमैनी (चौपाई तथा सार आदि छंद भी मिलते हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी कहलाती है। उसमें ब्रज, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओं का मिश्रण है। ये रमते राम थे। इसलिए क्षेत्रीय शब्दावली का प्रभाव ग्रहण करते रहे और जनभाषा में कविता करते रहे।

(10) **रस और अलंकार**– रस और अलंकार की दृष्टि से संत-काव्य पर विचार करना समीचीन नहीं है। इन्होंने काव्य-रचना के उद्देश्य से अपनी अभिव्यक्ति नहीं की। सामान्यतः इनकी रचनाओं में शांत रस की प्रधानता है। कहीं-कहीं अद्भुत रस भी मिल जाता है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। कहीं-कहीं रूपक और विरोधाभास का अच्छा प्रयोग मिल जाता है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.3.3 बोध प्रश्न

1. ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवियों के नाम बताइए।
2. ज्ञानमार्गी शाखा की कोई एक मुख्य विशेषता बताइए।

2.4 प्रेमाश्रयी शाखा : सूफी काव्य

'सूफी शब्द की व्युत्पत्ति

'सूफी' शब्द कैसे चल पड़ा? कुछ लोगों की धारणा है कि सऊदी अरब के एक पवित्र नगर मदीना में मस्जिद के सामने एक सुफ्फा (चबूतरा) था, उस पर जो फकीर बैठते थे, वे सूफी कहलाये। प्रसिद्ध इतिहासकार अलबरूनी (जन्मकाल 1971 ई.) ने 'साफी' (पवित्र) शब्द से 'सूफ' शब्द की व्युत्पत्ति बताई है। परंतु आधुनिक काल के विद्वानों ने, जिनमें ब्राउन आरबेरी तथा मीर वलीउद्दीन प्रमुख हैं, 'सूफी' की व्युत्पत्ति 'सूफ' से मानी है। फारसी में 'सूफ' का अर्थ 'ऊन' है। प्रारंभिक काल के सूफी साधक ऊनी कपड़े पहनते थे, इसीलिए उनको सूफी कहा जाने लगा।

सूफी मत का इतिहास

'सूफी' मत का इतिहास तब से आरंभ होता है जब मुहम्मद साहब मक्का से मदीना गये थे। यह घटना 633 ई. की है। इस्लाम में भक्ति का समावेश सूफियों ने ही किया। प्रारंभिक सूफी साधकों में अल हसन, इब्राहिम बिन अदम, अयाज, राबिया और मंसूर आदि का नाम उल्लेखनीय है। वे साधक 643 से 922 ई. के बीच हुए।

सूफी मत पर ईसाइयत, नव-प्लेटोवाद, भारतीय वेदांत और बौद्ध दर्शन का भी प्रभाव पड़ा। मंसूर के विषय में तो यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने भारत में आकर वेदांत का अध्ययन किया था। उनका 'अनलहक' (मैं ही सत्य हूँ) का संदेश वेदांत का 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) ही है। यह विचार स्पष्टतः इस्लाम के एकेश्वरवाद से भिन्न था। मुस्लिमों में कट्टरपंथियों को यह सहन न हुआ और मंसूर को प्राणदंड दे दिया गया। बाद में इस्लाम और सूफी मत में समन्वय हो गया और सूफी मत को इस्लाम में मान्यता मिल गयी।

सूफी मत– सूफी मत की संपूर्ण साधना प्रेम पर आधारित है। सूफी वह है जो अपने प्रिय के प्रेम में सदैव मस्त रहता है। प्रेम ज्ञान की भाँति ईश्वरीय देन है। ईश्वर का प्रेमी वही हो सकता है, जिसे खुद ईश्वर प्रेम करता है। ईश्वर ने प्रेम के कारण ही सृष्टि की। ईश्वर स्वयं प्रेमस्वरूप है। प्रेम के सहारे हर चीज अपनी पूर्णता पर पहुँच जाती है। सूफी मत में प्रेम के साथ-साथ सौंदर्य को भी महत्ता प्रदान की गयी है। ईश्वर को ही प्रेम और सौंदर्य का स्रोत माना गया है– उससे बढ़कर सुंदर और कोई नहीं। संसार के समस्त सौंदर्य उसी की प्रतिरूप प्रतिच्छवि हैं। लौकिक सौंदर्य आकर्षक है अवश्य, पर साधक की दृष्टि केवल उसी पर टिकी नहीं रहती। बल्कि इस सौंदर्य से गुजरते हुए अलौकिक सौंदर्य अर्थात्

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

ईश्वरी सौंदर्य तक पहुँचती है। यही बात प्रेम के लिए भी है। सांसारिक प्रेम (इश्क मजाजी) ईश्वरीय प्रेम (इश्क हकीकी) तक पहुँचने का साधन है। सांसारिक प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम में बदल जाता है। इसलिए संपूर्ण सूफी साहित्य में सांसारिक प्रेम के आलंबन, अनुभव, विभाग तथा संचारियों का चित्रण किया गया है। सूफी साहित्य में नारी-प्रेम और नारी-सौंदर्य ईश्वरीय प्रेम और सौंदर्य का पर्याय बन गये। ईश्वर से वियुक्त होकर आत्मा विकल है, वह उसे पुनः प्राप्त करना चाहती है, पर ईश्वर मिलन के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं, जिन्हें साधक को पार करना पड़ता है। सांसारिक प्रपंच एवं अहंकार ही बाधक तत्त्व हैं, यही शैतान है। आध्यात्मिक गुरु शिष्य को सहायता देकर इन कठिनाइयों से उबारता है। अतः संत कवियों की तरह सूफी साधना में भी गुरु का महत्त्व है।

सूफी मत का भारत में प्रवेश

सूफी मत का भारत में कब और कैसे प्रवेश हुआ, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। 711 ई. में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया था। उसके साथ ही इस्लाम धर्म का भारत में आगमन हुआ। परंतु सूफी मत का यहाँ पहुँचना 1000 ई. के बाद ही हुआ। सूफी मत-प्रचारकों में पहला नाम शेख इस्लाम का लिया जाता है, जो 1005 ई. में लाहौर में आये थे। लेकिन सूफी मत का प्रचार 1036 ई. के बाद ही जोर पकड़ सका, गजनी निवासी अल् हुज्विरी नामक एक विद्वान तथा धर्माचार्य भारत पहुँचे। इन्होंने 1050 ई. में फारसी भाषा में 'कश्फुल महबूब' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा, जिनमें सूफी मत की रूपरेखा स्पष्ट की गई है। अल् हुज्विरी के बाद भारत में सूफी मत की लोकप्रियता बढ़ी और उसके कई संप्रदाय–चिश्तिया, सुहरवर्दिया, कादरिया तथा नक्शबंदिया यहाँ बन गये। उनके द्वारा सूफी मत के प्रचार को विशेष बल मिला। इस्लामी शासकों का समर्थन भी सूफियों को प्राप्त हुआ, क्योंकि इनका मत उनको इस्लाम के प्रचार-प्रसार में सहायक प्रतीत हुआ और इनके माध्यम से भारतीय जनता के साथ उनका संपर्क बढ़ा।

2.4.1 सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना : फारस और भारत में

हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों पर एक ओर जहाँ फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों का प्रभाव है, वहाँ दूसरी ओर उनमें भारतीय प्रेमाख्यानों की प्रवृत्तियों का भी समावेश है। अतः हिंदी प्रेमाख्यानों का अध्ययन फारसी के सूफी प्रेमाख्यानों के अध्ययन के बिना अपूर्ण ही माना जायेगा।

फारसी में 'लैला-मजनूं', 'शीरी-खुसरो', 'यूसुफ-जुलेखा' तथा 'वामिक-आजरा' की प्रेम कथाओं को लेकर अनेक मसनवियाँ लिखी गयी हैं। अल् हुज्विरी ने जब सूफी मत का शास्त्र 'कश्फुल महबूब' लिखा, उसके सौ से भी अधिक वर्षों बाद फारस के निजामी ने खुसरो-शीरीं और लैला-मजनूं की प्रेम कथाओं पर आधारित, इन्हीं शीर्षकों से मसनवियाँ (प्रेमाख्यान) लिखीं। फारसी के दूसरे कवि जामी ने भी पाँच मसनवियां लिखीं जिसमें 'यूसुफ जुलेखा' मसनवी प्रसिद्ध हैं। निजामी से प्रभावित होकर भारतीय कवि अमीर खुसरो ने फारसी में 'शीरी-खुसरो' मसनवी लिखी, जो भारतीय वातावरण एवं काव्य रूढ़ियों से प्रभावित है। बाद में बादशाह अकबर के दरबारी कवि फैजी ने फारसी में ही महाभारत की नल-दयमंती कथा पर आधारित अपना 'नल-दमन' काव्य लिखा। ईरान तथा भारत में लिखित फारसी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मसनवियों में कई प्रकार की असमानताएँ थीं। अमीर खुसरों की मृत्यु के लगभग 50 वर्ष बाद हिंदी में सूफी प्रेमाख्यान लिखे जाने लगे।

भारत के सूफी प्रेमाख्यानों में एक नवीन परंपरा तब पड़ी, जब सूफी मत-निरूपण के लिए सूफी कवियों ने भारत में लोक-प्रचलित प्रेमकथाओं को ग्रहण किया और सूफी सिद्धांत को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए लोकभाषाओं अर्थात् अवधी, ब्रज, पंजाबी, बंगला आदि को अपनी काव्य भाषा बनाया। उत्तरी भारत के साथ-साथ दक्षिणी भारत में भी सूफी प्रेमाख्यान लिखे गए। दक्खिनी हिंदी (हिंदवी) में, जिसका केंद्र हैदराबाद के आस-पास था, 'कुतुबमुश्तरी', 'चंदर बदन व महियार' आदि अनेक प्रेमाख्यान लिखे गये।

इस संबंध में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि उत्तर भारत की भाषाओं में लिखित सूफी प्रेमाख्यानों में भारतीय परंपरा को अधिक प्रश्रय मिला है और दक्खिनी हिंदी (हिंदवी) में लिखित सूफी प्रेमाख्यानों में फारसी परंपरा को।

परंतु जहाँ तक काव्य-रूप का संबंध है, उत्तरी और दक्खिनी भारत के सभी सूफी प्रेमाख्यान काव्य मसनवी पद्धति के अनुकरण पर लिखे गए हैं।

मसनवी पद्धति– आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि मसनवी पद्धति क्या है, जिसका सूफी काव्यों के प्रसंग में बार-बार उल्लेख मिलता है।

असल में 'मसनवी' फारसी का एक छंद है, जिसमें फारस के कवियों ने प्रेमाख्यान लिखे। यों उस छंद में अन्य प्रकार के काव्य भी लिखे गये। मसनवी की दो अर्द्धलियाँ परस्पर तुकांत होती हैं, लंबाई की कोई सीमा निर्धारित नहीं होती। बाद में यह छंद प्रेमाख्यानों के लिए रूढ़ हो गया और प्रेमाख्यानक काव्य को मसनवी कहा जाने लगा। अमीर खुसरो तथा फैजी ने भी इस छंद को अपनाया, लेकिन अवधी में लिखित सूफी प्रेमाख्यानों में दोहा-चौपाई छंदों को अपनाया गया। फारसी मसनवियों में कुछ अन्य बातें भी रूढ़ हो गयीं। जैसे कि मसनवी (प्रेमाख्यानक काव्य) के आरंभ में क्रमशः ईश्वर-वंदना, पैगंबर मुहम्मद साहब की स्तुति, मुहम्मद साहब के चार मित्रों या प्रारंभिक खलीफाओं (अबूबकर, आदिल उमर, उसमान और अली) की प्रशंसा, तत्कालीन शासक (शाहेवक्त) की तारीफ, कवि द्वारा अपने गुरु या पीर का और स्वयं अपना परिचय देना। हिंदी सूफी कवियों ने भी इस क्रम को अंगीकार कर लिया। मसनवी काव्यों में अलग-अलग सर्ग या अध्याय नहीं होते, बल्कि घटनाएँ ही कथा-साहित्य का काम देती हैं और उन्हीं को उपशीर्षक के रूप में दे दिया जाता है।

हिंदी सूफी कवियों ने अपने काव्य में बारहमासा, षड्ऋतु का वर्णन भी किया है और उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है। अधिकतर कथानक और सौंदर्य के उपमान भारतीय परंपरा से ग्रहण किये हैं।

सूफी काव्यों का कथा-रूप– हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों का कथा-रूप भी प्रायः रूढ़ हो गया है। अधिकांश प्रेमाख्यानों में कथा का ढाँचा मिलता है : नायक अपने माता-पिता की इकलौती संतान– माता-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

पिता के दानपुण्य, तपस्या या सिद्ध पीर के आशीर्वाद के फलस्वरूप उसका जन्म-नायक प्रायः विवाहित-नायिका के सौंदर्य की चर्चा सुनकर (चित्र, स्वप्न, प्रत्यक्ष दर्शन से भी) उसका विरहाकुल हो जाना– माता-पिता और पत्नी को त्यागकर, कुछ साथियों को लेकर, योगी के वेश में, नायिका की खोज में निकल जाना– मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएँ आना– गुरु के द्वारा मार्ग दर्शन-नायिका की प्राप्ति– कुछ काल नायिका के देश में रहने के बाद अपने देश को वापसी। अधिकांश प्रेमाख्यान सुखांत हैं पर कुछ दुखांत भी हैं।

सूफी प्रेमाख्यानों में प्रतीकात्मकता होती है। उनमें लौकिक कथानक के माध्यम से अलौकिक बात कही जाती है। उनमें वर्णित नायक आत्मा का और नायिका ईश्वर का तथा मार्ग की रुकावटें साधना मार्ग की बाधाओं (शैतान) का प्रतीक होती हैं। नायिका के अंग-प्रत्यंग, काम-क्रीड़ा तथा सप्तखंडी धौराहर भी सूफी-साधना के प्रतीक माने जाते हैं।

हिंदी के सूफी प्रेमाख्यान– सूफी मत के इतिहास, सिद्धांत तथा काव्य एवं कथा-रूपों की इस सामान्य चर्चा के बाद आइए, अब हम हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों से परिचय प्राप्त करें। हिंदी में सूफी काव्य-रचना का इतिहास चौदहवीं से उन्नीसवीं सदी ईसवी तक– लगभग छः सौ वर्षों में फैला। मुल्ला दाउद के 'चंदायन' काव्य से इस काव्य परंपरा का प्रारंभ होता है। और शेख नसीर के 'प्रेम-दर्पण' पर इसकी समाप्ति होती है। इनमें से अधिकांश प्रेमाख्यान मध्य और पूर्वी उत्तर प्रदेश के कवियों द्वारा लिखित हैं। अतः उस क्षेत्र के लोक-जीवन का चित्र इन काव्यों में उभरा है। यद्यपि इन काव्यों का उद्देश्य सूफी मत का प्रचार करना था और इसके अधिकांश कवि मुसलमान थे, तो भी इनमें हिंदू-संस्कारों, रीति-रिवाजों तथा भावनाओं के प्रति समादर मिलता है। यही कारण है कि सूफी कवियों के काव्य हिंदुओं के बीच भी लोकप्रिय बन पाये और जो काम कबीर की झाड़-फटकार ने नहीं किया था, वह काम सूफियों की प्रेमगाथाओं ने कर दिया। हिंदुओं और मुसलमानों के हृदयों पर इन काव्यों ने प्रेम का मरहम लगाया तथा दोनों धर्मावलंबियों को निकट लाने में काफी हद तक सफलता पायी।

सूफी कवि और काव्य-परंपरा में मलिक मुहम्मद जायसी तथा उनका महाकाव्य 'पद्मावत' सिरमौर है। अतः यहाँ उसकी चर्चा कुछ विस्तार से की जाएगी। पर, साथ ही उनके पूर्ववर्ती सूफी कवियों एवं काव्यों का सामान्य परिचय भी दिया जाएगा।

2.4.2 जायसी के पूर्ववर्ती सूफी कवि और प्रेमाख्यानक काव्य

चंदायन– हिंदी में सूफी-परंपरा का आरंभ इसी ग्रंथ से होता है। मुल्ला दाऊद ने इसकी रचना सन् 1380 में की। काल-क्रम की दृष्टि से इसका समावेश हिंदी के आदिकाल की रचनाओं में होना चाहिए। इसमें अहीर युवक लोरिक और अहीरिन चंदा की प्रेम कथा वर्णित है। लोरिक विवाहित है और चंदा को लेकर भाग जाता है। रास्ते में चंदा को सांप डस लेता है। लोरिक विलाप करता है, पर एक गारुड़ी की सहायता से उसे पुनः जीवित करता है। मार्ग में उनका एक राजा से युद्ध भी होता है। अपनी पत्नी मैना का विरह-संदेश पाकर वह अपने नगर गौबर लौट आता है। लोरिक से मैना का मिलन होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

चंदा और लोरिक का विवाह हो जाता है। इस काव्य की भाषा अवधी है और दोहा, चौपाई, छंदों का प्रयोग हुआ है।

मृगावती– यह काव्य शेख बुरहान के शिष्य कुतुबन की रचना है। इसका निर्माण-काल 1504 ई. में है। इसमें चंद्रगिरी के राजकुमार और कंचनपुर की राजकुमारी मृगावती के प्रेम का वर्णन है। राजकुमार राजकुमारी के रूप-सौंदर्य पर मुग्ध हो जाता है और उसकी प्राप्ति के लिए योगी होकर निकल जाता है। मार्ग में अनेक कष्ट झेलता है। अंत में वह उसे प्राप्त कर लेता है। इस लौकिक कहानी से अलौकिक प्रेम की ओर संकेत किया गया है। इस काव्य की भाषा भी अवधी है तथा यह भी दोहा, चौपाई छंदों में लिखा हुआ है।

2.4.3 जायसी और उनकी कृतियाँ

मलिक मुहम्मद जायसी हिंदी में सूफी कवियों में प्रतिनिधि कवि हैं। ये अवध में जायस नामक स्थान के निवासी थे, अतः जायसी कहलाये। ये सूफी संत थे। पहले ये शेरशाह के आश्रय में रहे। फिर गाजीपुर और भोजपुर के महाराज जगतदेव के यहाँ रहे। अंत में अमेठी के महाराज रामसिंह के आश्रय में चले गये। अमेठी नरेश इन्हें बड़ा सम्मान देते थे, और इन्हें गुरु मानते थे। कहते हैं, जायसी शरीर से कुरूप थे। इनके शरीर और मुख पर चेचक के दाग थे तथा बीमारी में एक आँख भी मारी गई थी। रंग भी आकर्षक नहीं था। इनकी मृत्यु 1542 ई. के लगभग हुई। अमेठी में आज भी इनकी कब्र मौजूद है।

ये सूफी-सिद्धांतों के अतिरिक्त अद्वैतवाद, नाथ पंथ और योग-साधना आदि से परिचित थे, साथ ही हिंदू कथाओं, देवताओं तथा रीति-रिवाजों की भी इन्हें अच्छी जानकारी थी। ये भारतीय इतिहास और भूगोल से भी परिचित थे, परंतु इनके ग्रंथों से प्रतीत होता है कि इन्हें इन विषयों का अधूरा ज्ञान था। इन विषयों को या तो उन्होंने किसी से जाना था या कहीं गलत पढ़ा था। परंतु ये सूफी मत के मर्मज्ञ और अच्छे प्रचारक थे।

जायसी के ग्रंथ– इतिहास, लेख और किवदंतियों के अनुसार जायसी के लगभग बीस ग्रंथ कहे जाते हैं, परंतु इनमें से केवल तीन ही प्रामाणिक माने जाते हैं– आखिरी कलाम, अखरावट और पद्मावत। कुछ वर्ष पहले उनके द्वारा रचित 'चित्ररेखा' लघु काव्य भी प्रकाश में आया है।

आखिरी कलाम– यह एक छोटा-सा ग्रंथ है। इसमें पहले प्रलय का वर्णन है फिर सभी प्राणियों की मृत्यु दिखलायी गयी है। तदंतर निर्णय के दिन का वर्णन है। मृत व्यक्तियों को पैगंबर साहब अल्लाह के समक्ष ले जाते हैं और उनके भले-बुरे कर्मों के अनुसार दंड व्यवस्था कराते हैं।

अखरावट– यह ग्रंथ सूफी सिद्धांतों की दृष्टि से अमूल्य है। इसमें अकारादि वर्णों को लेकर दोहा-चौपाइयों में सूफी सिद्धान्तों का निदर्शन है। इसमें ईश्वर, जीव, जगत्-प्रपंच तथा ईश्वर-प्राप्ति आदि विषयों का तात्त्विक विवेचन है।

अनेक स्थलों पर अद्वैत, जीव-ब्रह्म-संबंध तथा प्रेम विवाह आदि विषयों पर इतनी गंभीरता से प्रकाश डाला गया है कि उससे जायसी के गंभीर ज्ञान का पूर्ण रूप से परिचय मिल जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इसकी शैली भी अनूठी है। जायसी देवनागरी (हिंदी) के एक अक्षर के नाम के किसी तत्त्व का वर्णन प्रारंभ करते हैं और पुनः दूसरे अक्षर से उसी विषय या अन्य तत्त्व के निरूपण पर पहुँच जाते हैं। यह ग्रंथ सिद्धांत की दृष्टि से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, परंतु जायसी को अमर बना देने वाला ग्रंथ 'पद्मावत' है।

पद्मावत– यह जायसी की अमर कृति है। इसकी रचना का आरंभ 1520 ई. के आस-पास हुआ तथा समाप्ति 16-20 वर्ष पश्चात् 1540 ई. में शेरशाह के शासन-काल में हुई थी। यह अवधी भाषा में दोहा-चौपाई के क्रम से लिखा हुआ एक महाकाव्य है। इसमें लौकिक कथा के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना की गयी है।

'पद्मावत' की कथा– चित्तौड़ में राजा रतनसेन राज्य करता था। उसकी रानी का नाम नागमती था। चित्तौड़ का एक ब्राह्मण एक बार कुछ व्यापारियों के साथ सिंहल गया। वहाँ से एक तोता खरीदकर ले आया। तोते का नाम हीरामन था। वह बड़ा ही विद्वान और बोलने में चतुर था। ब्राह्मण ने उसे चित्तौड़ के राजा को बेच दिया। राजा तोते की विद्वता देखकर बड़ा चकित हुआ और उसे बड़े प्रेम से रखने लगा।

एक दिन नागमती ने तोते से पूछा कि क्या उसने कहीं उस जैसी सुंदर स्त्री देखी हैं? तोते ने कहा कि सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावती के सामने वह कुछ भी नहीं। नागमती ने सोचा कि यह तोता यदि इस बात को राजा से कह देगा तो वह अवश्य ही उसे छोड़कर पद्मावती से मिलने के लिए चल पड़ेगा। इसलिए उसने एक दासी को आज्ञा दे दी कि तोते को मार डाले। परंतु दासी ने, यह सोचकर कि भेद खुल गया तो वह मारी जायेगी, उसने तोते को मारा नहीं, बल्कि छिपा दिया। राजा के पूछने पर उसे तोता दे दिया गया। तोते ने सारी घटना कह सुनाई, जिसे सुनकर राजा को क्षोभ हुआ, परंतु पद्मवती के सौंदर्य पर मुग्ध होकर वह सब भूल गया और उसकी प्राप्ति के लिए योगी कर सोलह हजार राजकुमारों के साथ सिंहल द्वीप की ओर चल पड़ा।

मार्ग में अनेक कष्टों को झेलता हुआ वह सिंहल द्वीप पहुँचा। वहाँ उसने हीरामन तोते और महादेव जी की सहायता से पद्मावती से भेंट की। राजा ने पद्मावती का विवाह रतनसेन के साथ कर दिया। वहाँ वह कई दिनों तक रहा परंतु इधर नागमती का विरह इतना बढ़ गया कि जंगल तक जलने लगे। उसके दुःख से द्रवित होकर एक पक्षी सिंहलद्वीप गया और उसने रतनसेन से सारा वृत्तांत कह सुनाया। राजा को नागमती का स्मरण हो आया। वह पद्मावती को लेकर मार्ग में अनेक कष्टों को झेलता हुआ चित्तौड़ आ गया और सुख से रहने लगा।

एक दिन राजा ने दरबारी पंडितों से तिथि पूछी, तो और पंडितों ने प्रतिपदा कही, परंतु राघव चेतन नामक पंडित ने भूल से द्वितीया बतायी और सिद्ध यक्षिणी की सहायता से उस दिन संध्या समय दूज का चंद्रमा दिखला भी दिया। परंतु दूसरे दिन जब दूज का चंद्रमा निकला तो अन्य पंडितों ने राजा से राघव चेतन की शिकायत की। राजा ने रुष्ट होकर उसे दरबार से निकाल दिया। रानी ने उसे दानादि

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© *Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*

से प्रसन्न करने का प्रयत्न भी किया परंतु वह बदले की भावना से दिल्ली पहुँचा और बादशाह अलाउद्दीन से पद्मावती के सौंदर्य वर्णन कर उसे चित्तौड़ पर चढ़ाई करने के लिए प्रेरित किया।

अलाउद्दीन कामुक था। उसने पद्मावती के रूप सौंदर्य की बात सुनकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया, परंतु जब वह किले को न तोड़ सका, तब राजा को छल से पकड़कर दिल्ली ले गया। गोरा-बादल आदि राजपूत वीर दिल्ली जाकर राजा को छुड़ा लाये। इधर राजा को बंदी बनाकर दिल्ली ले जाने पर कुम्भलनेर के राजा देवपाल ने पद्मावती के पास एक दूती भेजी जिसने उसे चित्तौड़ छोड़कर देवपाल के रनिवास में जाने को कहा। जब राजा रतनसेन दिल्ली से लौट आया तब पद्मावती ने सारी घटना कह सुनाई। राजा शीघ्र ही एक सेना लेकर कुम्भलनेर पहुँचा, परंतु वहाँ युद्ध में रतनसेन और देवपाल दोनों मारे गए। इसके बाद पद्मावती और नागमती दोनों ही रानियाँ राजा के शव के साथ सती हो गयीं।

अब अलाउद्दीन पुनः चित्तौड़ पर चढ़ आया, पर पद्मावती की चिता की राख के अलावा उसके हाथ कुछ न लगा।

कथानक की ऐतिहासिकता– यह कथानक जायसी ने इतिहास और लौकिक कथा के आधार पर गठित किया है। इतिहास में राजा का नाम भीमसिंह है और रानी का नाम पद्मिनी है जबकि 'पद्मावत' में रतनसेन और पद्मावती। इतिहास के अनुसार पद्मिनी सिंहल के राजा गंधर्वसेन की पुत्री नहीं, बल्कि हम्मीर शंक की पुत्री है। इतिहास में नागमती चरित्र भी नहीं है। इसके अतिरिक्त राजा का योगी होकर सोलह हजार राजकुमारों के साथ जाना, दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में गुजरते हुए समुद्र के मार्ग से सिंहलद्वीप पहुँचना तथा पद्मावती से विवाह करना– ये सब घटनाएँ भी इतिहास में नहीं हैं, राघव चेतन का प्रसंग भी इतिहास से प्रमाणित नहीं होता।

अलाउद्दीन के आक्रमण की घटना इतिहास के आधार पर है, परंतु कुम्भलनेर के राजा देवपाल द्वारा दूती भेजना, राजा के लौटने पर दोनों का युद्ध होना तथा मारा जाना काल्पनिक घटनाएँ हैं।

इससे ज्ञात होता है कि इस कथा में जायसी ने इतिहास के साथ काल्पनिक बातों का मिश्रण कर पर्याप्त स्वतंत्रता से काम लिया है। इसका कारण यह है जायसी कोई ऐतिहासिक काव्य नहीं लिख रहे थे वरन् वे इस कथा के माध्यम से प्रेम की अलौकिक व्यंजना चाहते थे और इसमें वे पर्याप्त सफल भी हुए।

कथा में आध्यात्मिकता– पद्मावत की कथा में अध्यात्म-तत्त्व व्याप्त है। फारसी और अरबी मसनवियों में कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना होने से कथा के बीच-बीच में नायिका के प्रति बातें कही जाती थीं जिससे उनका ईश्वरीय स्वरूप झलकता था। यही बात हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों में भी दिखाई देती है। पद्मावत भी हिंदी का प्रमुख प्रेमाख्यान काव्य होने के कारण इस नियम का अपवाद नहीं है। जायसी ने स्वयं ग्रंथ के अंत में लिखा है–

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम किछु और न सूझा।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

चौदह भुवन जो तर उपराही। ते सब मानुष के घट माही।।
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पद्मनि चीन्हा।
गुरु सुआ जुहि पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया–धन्धा। बांचा कोई न एहि चित बन्धा।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलादीन सुलतानू।।
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जु तो बूझे पराहु।

अर्थात् पृथ्वी के नीचे ऊपर चौदह भुवन माने गये हैं, वे सब मनुष्य के शरीर में ही विद्यमान हैं, क्योंकि पिंड (शरीर) में ही ब्रह्मांड है। पद्मावत के कथा के प्रतीकों को समझाते हुए वे कहते हैं कि चित्तौड़ को शरीर समझो और राजा रतनसेन को मन। सिंहलद्वीप हृदय का प्रतीक है और पद्मावती बुद्धि अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान की। हीरामन तोता गुरु है जिसने मार्ग-प्रदर्शक का काम किया है तथा नागमती इस दुनिया का प्रपंच है। राघव चेतन शैतान का और सुल्तान अलाउद्दीन माया का प्रतीक है।

इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि चित्तौड़ रूपी शरीर में रहने-वाला रतनसेन-रूपी साधक मन हीरामन तोता रूपी गुरु के मार्ग दिखाये जाने पर पद्मावती-रूपी ईश्वरीय शक्ति की ओर आकृष्ट हुआ। वह उसकी प्राप्ति के लिए बैरागी हो जाता है और साधना करता है। उसे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कभी नागमती रूप दुनिया का प्रपंच उसे लुभाता है और कभी राघव रूपी शैतान तथा अलाउद्दीन रूपी माया बाधा डालते हैं। रतनसेन को यात्रा में मार्ग की जो बाधाएँ आयी हैं, वे सब साधना के समय काम-क्रोधादि मानसिक विकारों की प्रतीक हैं, परंतु साधक इन सब बाधाओं पर विजय प्राप्त करता है और अंत में पद्मावती रूपी ईश्वरीय शक्ति को प्राप्त कर लेता है।

मन की इस यात्रा को हम इस प्रकार भी रख सकते हैं कि हठयोग के अनुसार हम पिंड (शरीर) में ही ब्रह्मांड है। ध्यान के समय मन की समस्त शक्तियों को केंद्रित कर ब्रह्मरंध्र में ले जाया जाता है। योगी लोग इस प्राणवायु को प्राणायाम द्वारा ब्रह्मरंध्र में ले जाया करते हैं। उस समय साधक को वहाँ एक अलौकिक प्रकाश दिखलाई देता है। सूफियों के अनुसार वह उनकी प्रियतमा, ईश्वरीय शक्ति की ही सौंदर्य झलक है। सूफी साधना में ईश्वर को प्रियतमा और साधक को प्रियतमा मानते हैं। इसके विपरीत कबीर आदि संत साधक को प्रियतमा और ईश्वर को प्रियतम मानते हैं।

जायसी अन्य सूफियों की भाँति इस रहस्यात्मक भाव को बनाये रखने के लिए कथा में प्रारंभ से अंत तक सावधान रहे हैं। इसलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर संकेत भी किये हैं। पद्मावती ईश्वरीय शक्ति है, इसे वे प्रायः प्रत्येक सर्ग में पाठकों को किसी न किसी प्रकार याद दिलाते रहते हैं। रतनसेन में प्रिय से मिलने की व्याकुलता भी सूफियों जैसी ही है। सूफी मानते हैं कि साधक की तड़प से प्रियतमारूपी ईश्वर भी उससे मिलने को तड़पता है। पद्मावती भी हमें रतनसेन से मिलने के लिए अत्यंत इच्छुक दृष्टिगोचर होती है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

'पद्मावत' की काव्य-कला

पद्मावत एक महाकाव्य है, परंतु इसकी रचना मनसवी शैली पर हुई है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, मसनवियों के आरंभ में क्रमशः अल्लाह, पैगंबर, खलीफाओं, गुरु और तत्कालीन बादशाह की स्तुति तथा कवि-परिचय होते हैं। सर्गों के नाम उसमें वर्णित विषय के आधार पर होते हैं तथा स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक संकेत दिये होते हैं और संपूर्ण काव्य में अलौकिक प्रेम की व्यंजना होती है, पद्मावत में भी ये सभी लक्षण हैं। परंतु साथ ही यह काव्य भारतीय महाकाव्य के लक्षणों पर भी ठीक उतरता है।

पद्मावत में काव्य-कला का सुंदर रूप दिखाई देता है। इसकी कथा का आधार रतनसेन का पद्मावती के प्रति प्रेम है। प्रेम-काव्य होने के कारण इसमें प्रधान रस श्रृंगार के दोनों ही पक्षों-संयोग और वियोग का बड़ा ही सुंदर चित्रण हुआ है। मसनवियों में प्रायः नायक ही तड़पता है, परंतु इस काव्य में नायक और नायिका दोनों व्याकुल हैं। नागमती का वियोग-वर्णन तो हिंदी साहित्य में अद्वितीय है ही, इस काव्य में लौकिक प्रेम के माध्यम से, अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गयी है। यह काव्य न तो पूर्णतः अन्योक्ति है, न पूर्णतः समासोक्ति। इसमें आध्यात्मिक रूपक का आद्यंत निर्वाह नहीं हुआ है। कहीं-कहीं तो अलौकिक अर्थ और अध्यात्मिक अर्थ साथ-साथ चलते हैं, पर कहीं-कहीं तो अलौकिक अर्थ पाया जाता है। प्रकृति-वर्णन भी अनेक स्थलों पर हुआ है, परंतु प्रायः उद्दीपन के लिए।

प्रबंध की दृष्टि से भी यह काव्य अच्छा बन पड़ा है। यद्यपि इसमें मुख्य कथा राजा रतनसेन और पद्मावती की है, परंतु उसे पुष्ट करने के लिए इसमें अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी आती हैं, जिन्होंने मुख्य कथा को लक्ष्य तक पहुँचाने में बड़ा योग दिया है। इसमें यात्रा वर्णन तथा युद्ध-वर्णन को इस प्रकार संबद्ध किया गया है कि वे वर्णन कथा में घुलमिल गए हैं। साथ ही, यद्यपि कथानक में एक रूपक है, तो भी उससे उसकी प्रबंधात्मकता में कोई बाधा नहीं पड़ी है। पद्मावती को ईश्वरीय रूप मानकर कथा चलती है और अनेक स्थलों पर इस ओर संकेत भी है। उदाहरण के लिए, जब पद्मावती मानसरोवर में स्थान के लिए गयी, तब मानसरोवर में कमल उसके मुखचंद्र को देखकर खिल गए तथा जिसने जो रूप चाहा, वही प्राप्त किया। कवि लिखता है–

विगसा कुमुद देखि ससि-रेखा। भई तहं ओप जहाँ जोई देखा।।
पावा रूप, रूप जस चहा। ससि मुख जनु दरपन होई रहा।।
नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर शरीर।
हंसन जो देख हंस भा, दसन-ज्योति जग हीर।।

भाषा की दृष्टि से भी यह काव्य उच्च कोटि का है। यह अवधी में लिखा गया है, किंतु इसमें साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। 'रामचरित मानस' की तुलना में इसकी भाषा को कुछ विद्वान शिथिल कहते हैं, परंतु यह समझना आवश्यक है कि 'मानस' की भाषा अवधी होते हुए भी उसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता है, जबकि 'पद्मावत' की भाषा लोक-भाषा है, बल्कि यह कहना चाहिए कि 'मानस' की भाषा पांडित्यपूर्ण है, जबकि इसमें कोई भी स्थल ऐसा नहीं, जहाँ इसकी भाषा भावों को व्यक्त करने

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

में असमर्थ हो। कवि का अवधी पर पूर्ण अधिकार है और उसमें आदि से अंत तक जनता के बीच बोली जाने वाली अवधी है। वास्तव में यह काव्य हिंदी सूफी-काव्यों में सर्वश्रेष्ठ तो है ही, हिंदी साहित्य का भी एक अमूल्य रत्न है।

निष्कर्ष यह है कि 'पद्मावत' जैसे काव्य की रचना भारतीय लोकभाषा में, भारतीय लौकिक कथा के आधार पर और भारतीय छंद में हुई। इसमें भारतीय कथानक-रूढ़ियों का भी प्रयोग किया गया है।

2.4.4 जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य

जायसी और मंझन एक प्रकार से समकालीन थे परंतु चूंकि मंझन की कृति 'मधुमालती' की रचना 'पद्मावत' के चार-पाँच वर्ष बाद हुई, इसलिए उसका उल्लेख भी उसी क्रम से किया जा रहा है।

मधुमालती– इस काव्य के रचयिता कवि मंझन चुनार (उत्तर प्रदेश) के रहने वाले थे। उन्होंने 'मधुमालती' की रचना 1545 ई. में की। मंझन सत्तारी संप्रदाय के शेख मुहम्मद गोस के शिष्य थे।

इस काव्य में कनेसर के राजकुमार मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती का प्रेम वर्णित है। अप्सराएँ राजकुमार को सुप्तावस्था में उठा ले जाती हैं। मधुमालती के सौंदर्य पर मनोहर मुग्ध हो गया, पर उसके सो जाने पर अप्सराएँ उसे फिर उसके नगर में छोड़ आयी। कुंवर मनोहर को विरह व्यापा। वह योगी बनकर निकल पड़ा। रास्ते में एक भयंकर वन पड़ा। उसमें प्रेमा नामक एक सुंदरी कन्या को उसने एक राक्षस के चंगुल से छुड़ाया। प्रेमा मधुमालती की सखी निकली। प्रेमा के प्रयत्न से ही मनोहर और मधुमालती पुनः मिल पाये।

सूफी प्रेमाख्यानों में महत्त्व की दृष्टि से 'पद्मावत' के बाद 'मधुमालती' का ही स्थान है। इसकी भाषा भी अवधी है और यह काव्य दोहा-चौपाई छंद में लिखा गया है।

चित्रावली– 'चित्रावली' के रचयिता उसमान गाजीपुर के रहने वाले थे तथा बादशाह जहांगीर के समय में वर्तमान थे। ये शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य-परंपरा में हाजी बाबा के शिष्य थे। इन्होंने सन् 1613 में इस प्रेमाख्यान की दोहा-चौपाई छंद और अवधी भाषा में रचना की है।

इस काव्य में नेपाल के राज धरनीधर पंवार के पुत्र सुजान और कंवलावती तथा चित्रावली के प्रेम और विरह का वर्णन है। उसमान ने इसकी रचना में जायसी का अनुकरण किया, अतः पद्मावत की भाँति इसमें भी सात-सात अर्द्धालियों के पश्चात् एक दोहा रखा गया है। इसकी रचना भी आध्यात्मिक दृष्टि से ही हुई है। इसमें भी सुजान एक साधक के रूप में चित्रित हुआ है और चित्रावली विद्या या ईश्वरीय शक्ति के रूप में। कंवलावती नागमती की भाँति अविद्या के रूप से चित्रित हुई है। अविद्या के रहते विद्या की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए सुजान चित्रावली की प्राप्ति तक कंवलावती को साथ नहीं रखता।

यह एक मनोहर काव्य है तथा इसमें नगर, सरोवर, यात्रा, ऋतु आदि के वर्णन सुंदर बन पड़े हैं।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

ज्ञानदीप– इसके रचयिता शेख नबी जौनपुर जिले में अलदेमऊ नामक स्थान के रहने वाले थे। ये जहाँगीर के समय में विद्यमान थे। इन्होंने 'ज्ञानदीप' की रचना सन् 1619 ई. में की। सूफी काव्य-परंपरा का यह एक उत्कृष्ट काव्य है।

इसमें राजा ज्ञानदीप और रानी देवजानी और उसकी सखी सुरज्ञानी की प्रेमकथा वर्णित है। इसमें भी आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना है।

भक्तिकाल के बाद भी इस धारा की रचनाएँ प्राप्त होती हैं, परंतु प्रसंगतः उनका उल्लेख यही कर देना उचित जान पड़ता है। निम्नलिखित रचनाएँ उल्लेखनीय हैं

हंस-जवाहिर– कासिमशाह दरियाबाद (बाराबंकी) के रहने वाले थे। इन्होंने 'हंस-जवाहिर नामक एक कथा लिखी, जिसमें राजा हंस और रानी जवाहिर का प्रेम वर्णित हुआ है। इसकी रचना 1736 में हुई। इस प्रेमाख्यान की एक विशेषता, जिसके कारण इसका स्थान सूफी प्रेमाख्यानों में अन्यतम है, यह है कि बल्ख-बुखारा, रूमदेश तथा चीन को घटनाक्षेत्र के रूप में चुनकर भी कवि ने इस काव्य में भारतीय वातावरण ही रखा है। व्यक्ति और स्थान ही अभारतीय हैं।

इंद्रावती और अनुराग बाँसुरी– नूर मुहम्मद दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय में विद्यमान थे तथा जौनपुर के निवासी थे। ये बड़े विद्वान् तथा शास्त्रज्ञ थे। इन्होंने सन् 1744 में 'इंद्रावती' और 1764 में 'अनुराग बाँसुरी' नामक दो काव्य लिखे। 'इंद्रावती' का पूर्वार्द्ध ही प्रकाशित है, उत्तरार्द्ध हस्तलिखित रूप में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है।

ये दोनों ग्रंथ अवधी भाषा में दोहा-चौपाई में लिखे गये हैं। 'इंद्रावती' में कालिजर के राजकुमार, राजकुंवर और आगमपुर की राजकुमारी इंद्रावती की प्रेम-कथा है। 'अनुराग-बाँसुरी' में शरीर, जीवात्मा तथा मनोवृत्तियों को लेकर प्रेम-कथा लिखी हुई है। इसकी कथा में अध्यात्म तो है ही, रूपक का निर्वाह भी बड़े कौशल से किया गया है। इससे कवि के गंभीर दार्शनिक विचारों का भी परिचय मिलता है। इस काव्य की एक विशेषता यह है कि इसके पात्र नर-नारी नहीं, वरन् मनोभाव हैं। इसमें छंद और भाषा संबंधी भी कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे– चौपाइयों के पश्चात् दोहा न होकर बरवै है तथा अवधी के मध्य कहीं-कहीं ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग है।

यूसुफजुलेखा– इस प्रेमाख्यान के रचयिता शेख निसार थे। इसका रचनाकाल 1790 ई. है। यह काव्य भक्ति काल की निर्धारित सीमा के बाद का लिखा है। कुरान में वर्णित यूसुफ-जुलेखा प्रेमाख्यान कुछ परिवर्तित रूप में इसमें ग्रहण किया गया है। कथा का मुख्य आधार जामी की प्रसिद्ध फारसी मसनवी 'यूसुफ-जुलेखा' है।

इस काव्य-परंपरा का अंतिम उल्लेखनीय काव्य 'प्रेम-दर्पण' है जो शेख नजीर द्वारा रचित है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

©DDCE, COL, SOL, University of Delhi

2.4.5 सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ

(1) निर्गुण ईश्वर में विश्वास

सूफी कवि मुसलमान थे। वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। सूफी काव्यों में ईश्वर के एक होने निर्माण और निराकार होने के उल्लेख बार-बार मिलते हैं।

जायसी के 'सुमिरों आदि एक करतारू' इस कथन से एक ईश्वर की भावना व्यक्त होती है। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानक काव्यों में ईश्वर को स्त्री के रूप में मानकर आत्मा का पुरुष के रूप में वर्णन किया है। 'दसरे शब्दों में, आत्मा परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उसी तरह प्रयत्न करती है जिस तरह प्रिया को प्राप्त करने के लिए प्रेमी प्रयत्न करता है। ईश्वर को इस प्रकार का आलंबन बनाने की यह पद्धति भारतीय पद्धति से भिन्न है। भारतीय पद्धति में परमात्मा को पुरुष रूप में माना जाता है। आत्मा स्त्री के रूप में उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

(2) गुरु की महिमा

संत कवियों की तरह सूफी कवियों ने भी अपने गुरु का अपने काव्य में स्मरण किया है, जहाँ इन कवियों ने वर और खलीफा की वंदना की है, वहाँ गुरु के प्रति अपना आभार प्रदर्शन करना भी नहीं भूले हैं। यह दूसरी बात है कि इनकी गुरु-भक्ति उतनी उत्कृष्ट नहीं है, जितनी कि ज्ञानमार्गी संतों का। न ही इन्होंने गुरु को परमेश्वर से ऊपर माना है, जैसा कि कबीर ने। सफी कवियों ने गरु को पीर कहा है। यह पीर उनका मार्गदर्शन करता है और उनकी साधना के मार्ग में शैतान जो बाधाएँ उपस्थित करता है, उन्हें वह दूर कर देता है।

(3) शैतान को बाधक मानना

सूफी कवियों ने प्रिय-प्राप्ति के मार्ग में बाधक तत्त्व के रूप में शैतान की कल्पना की है। उनका विश्वास है कि खुदा ने शैतान को साधक की परीक्षा लेने के लिए बनाया है। जो साधक उस परीक्षा मे खरा उतरता है, वही परमात्मा से मिल सकता है। यह शैतान आत्मा और परमात्मा के मिलन में बाधा डालता है। इस तरह शंकराचार्य ने माया की जो कल्पना की है तथा संत कवियों ने जिस माया का विरोध किया है, वही माया सूफियों के मत में शैतान है। प्रसिद्ध सूफी कवि जायसी ने अपने 'पद्मावत' में राघव चेतन का वर्णन शैतान के रूप में किया है।–'राघव दूत सोई सैतानू'

सूफियों का विश्वास है कि पीर (गुरु) की कृपा से शैतान की बाधाओं को दूर किया जा सकता है। शैतान से रक्षा करने के कारण गुरु को इन्होंने बहुत ऊँचा माना है।

(4) साधना की चार अवस्थाएँ

सूफी मत में साधना की चार अवस्थाओं का उल्लेख है– (1) नासूत, (2) मलकूत, (3) मारिफत, (4) हकीकत। जब साधक एक-एक करके इन अवस्थाओं को पार करता है तो वह सत्य को प्राप्त कर लेता है। हकीकत सत्य को ही कहते हैं। जब उसे परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति होती है, तब वह अपने को 'अनलहक' अथवा 'मैं ही ब्रह्म हूं' कहने लगता है। इस तरह की अवस्थाओं की कल्पना सूफी काव्य की

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अपनी विशेषता है। यद्यपि सिद्ध और नाथों के 'सोऽहं' और वैदिक वाङ्मय के 'अहं ब्रह्मास्मि' में साधना की अवस्था उसी प्रकार की है, पर सूफियों का सिद्धांत इनसे भिन्न है। सभी सूफी काव्यों के नायक प्रिय-प्राप्ति के मार्ग में जितने कष्ट उठाते हैं, जितनी बाधाएँ पार करते हैं, वे सब इसी सूफी-साधना के विभिन्न चरणों को स्पष्ट करते हैं तथा प्रिय-संगम में 'अनलहक' की छाप देखी जा सकती है।

(5) लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति

सूफी मत की एक विशेषता है– 'प्रेम की उत्कटता।' प्रेमगाथाओं के माध्यम से सूफियों ने प्रेम की पीड़ा का सुंदर चित्रण किया है। सूफी लोग मानते हैं कि लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) के द्वारा ही अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) को प्राप्त किया जा सकता है। जायसी के 'पद्मावत' में रतनसेन का पद्मिनी के लिए जो प्रेम है वह लौकिक प्रेम है। उसके वर्णन द्वारा जायसी अलौकिक प्रेम का निदर्शन करना चाहते हैं।

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य में प्रेम के साथ सौंदर्य का अन्योन्याश्रय संबंध बताया गया है। जहाँ रूप है, वहाँ प्रेम के लिए आकर्षण है। सुंदर वस्तुएँ परमात्मा के सौंदर्य का प्रतिबिंब है। रूप में परमात्मा की ज्योति प्रकट होती है। सूफी काव्यों में प्रेम के साथ विरह का भी अनिवार्य सम्बन्ध माना गया है। साधक (प्रेमी) जब तक विरह की आँच में तपकर कुंदन नहीं बन जाता, तब तक उसका संयोग अपने प्रिय से नहीं हो सकता।

(6) हिंदू-मुस्लिम एकता

सफी कवियों ने मुसलमान होकर हिंदू घरों में प्रचलित कहानियों को चुना और इस तरह हिंदू लोकमानस के समीप आने का प्रयास किया। उन्होंने मुसलमान और हिंदुओं को समीप ला दिया तथा उनके भेद-भाव को दूर कर दिया। हिंदुओं ने सूफियों के सिद्धांतों का आदर किया। भारतीय लोक-साहित्य और परंपरा के निकट आने के प्रयास में सूफी कवियों ने भारतीय साहित्य की पद्धति पर षड्ऋतु, बारहमासा, ज्योतिष, कामशास्त्र, आयुर्वेद शकुन-विचार, लोक-विश्वास, जादू-टोना, तीर्थ, व्रत, लोक व्यवहार आदि का अपने काव्यों में समावेश किया। हिंदू और इस्लामी–दो संस्कृतियों को मिलाने का इन काव्यों में अद्भुत प्रयास है।

(7) रहस्यवाद

सूफी काव्यों की एक बहुत बड़ी विशेषता उनकी रहस्यात्मक उक्तियाँ हैं। उनकी रहस्यात्मक उक्तियों में कहीं-कहीं साधनात्मक रहस्यवाद यानी हठयोग के संकेत मिलते हैं, जैसे 'पद्मावत' में शिवजी द्वारा रतनसेन से सिंहगढ़ का वर्णन 'गढ़ तस बांक जैस तोरि काया' आदि। इस वर्णन में पिंड में ही ब्रह्मांड की कल्पना का संकेत किया गया है। यह रहस्यवाद हठयोगियों या नाथपंथियों से प्रभावित है।

सूफियों के रहस्यवाद को संत कवियों के साधनात्मक रहस्यवाद से भिन्न भवात्मक रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है। पद्मावत रतनसेन और पद्मावती के प्रेम के द्वारा परमात्मा के प्रति आत्मा की

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

जिज्ञासा, प्रिय और प्रेमी के मिलन और विरह की अत्यंत मार्मिक कल्पना की गयी है। सूफियों का रहस्यवाद संयोग के अत्यन्त श्रृंगारिक वर्णनों से युक्त है श्रृंगार का यहाँ खुलकर वर्णन किया गया है। विरह-वर्णन में मार्मिकता है और उस पर मसनवी प्रभाव है। सूफी कवियों के विरह-वर्णन में फारसी-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है। उसमें ऊहात्मकता और वीभत्सता तक आ गयी है। विरह में रक्त के आँसू बहाना फारसी का प्रभाव है, जिसमें हमें वीभत्सता लगती है। लेकिन कहीं-कहीं विरह-वर्णन की मार्मिकता हृदय को छू लेती है। पद्मावत का नागमती-विरह-वर्णन प्रसंग एक ऐसा ही उत्कृष्ट उदाहरण है—

'प्रिय सों कहेऊ संदेसड़ा हे भौरा है काग,
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुआं हम लाग।'

(8) प्रबंधात्मकता

सूफी रचनाएँ प्रेमाख्यानक प्रबंध काव्य हैं। उनमें प्रेम-कथाओं के वर्णन हैं। इनमें एक मुख्य कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ भी जुड़ी रहती हैं। मुख्य और प्रासंगिक कथानकों के कारण सभी सूफी काव्य महाकाव्य की कोटि में आते हैं। प्रबंधकाव्य के लिए आवश्यक सर्गबद्धता, निश्चित छंद, प्रकृति-वर्णन आदि सभी शर्तों की पूर्ति ये काव्य करते हैं।

(9) रस

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों का वर्णन रसमयी भाषा में हुआ है। श्रृंगार की दोनों दशाओं—संयोग और वियोग का इनमें चित्रण है। कहीं-कहीं दूसरे रस भी मिलते हैं, जैसे—गोरा-बादल युद्ध में वीररस और गोरा की माँ की अपने पुत्र के प्रति भावाभिव्यक्ति में वात्सल्य रस मिलता है। शांतरस भी अनेक स्थलों पर आया है। इसी तरह करुण और वीभत्स रस भी इनके काव्य में मिल जाते हैं। ये सभी रस आध्यात्मिक रंगत पाकर शांत रस के अंग बन जाते हैं।

(10) भाषा, छंद, अलंकार

सूफी काव्यों की भाषा ठेठ अवधी है। जनता के बीच प्रचलित कथाओं को जनता की भाषा में कहने के लिए कवियों ने ग्रामीण अवधी का प्रयोग किया है। जिसमें जहाँ-तहाँ अपभ्रंश के कई शब्द आ गये हैं। छंदों की दृष्टि से इन्होंने चौपाई और दोहा छंदों का प्रयोग किया है।

अलंकारों में सभी प्रचलित अलंकार-अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि तो हैं ही, पर समासोक्ति सूफी कवियों का सबसे प्रिय अलंकार है। जो वर्णन कवि कर रहा होता है, उसके द्वारा अलौकिक सत्ता की ओर भी संकेत होता चलता है। ऐसे प्रसंग समासोक्ति अलंकार के अंतर्गत आते हैं। जायसी समासोक्ति के प्रयोग में सबसे कुशल हैं।

(11) प्रतीक-विधान

प्रतीक-विधान भी सूफी कवियों की अपनी विशेषता है। विभिन्न प्रतीकों द्वारा अपने भावों को व्यक्त करने में सूफी कवि बहुत पटु हैं। सभी काव्यों में लौकिक प्रतीकों के द्वारा आध्यात्मिक भाव प्रकट किये गये हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

(12) मसनवी शैली

सभी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य मसनवी शैली में लिखे गये हैं। मसनवी फारसी का एक छंद है जिसमें जामी, निजामी आदि कवियों ने अपने प्रबंध काव्यों की रचना की। हिंदी के सूफी कवियों ने इस छंद को नहीं अपनाया, परंतु फारसी के मसनवी छंद में लिखे प्रबंध काव्यों (मनसवियों) में रूढ़ वर्णन-शैली को अवश्य अपनाया। मसनवी शैली की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं– काव्य के आरंभ में अल्लाह की वंदना, फिर क्रमशः रसूल की वंदना, गुरु की महिमा, समसामयिक बादशाह या किसी महान् व्यक्ति की स्तुति, तत्पश्चात् पुस्तक लिखने के कारणों पर प्रकाश। हिंदी के सभी सूफी प्रेमाख्यानों के प्रारंभ में कवियों ने इस परंपरा का निर्वाह किया है। मसनवी शैली के काव्यों में एक अन्य शैलीगत विशेषता है–काव्य के अध्यायों का घटना-प्रसंग के अनुसार नामकरण।

2.4.6 बोध प्रश्न

1. 'मधुमालती' किसकी रचना है?
2. 'जायसी' का पूरा नाम क्या था?
3. जायसी की कुछ प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

2.5 रामभक्ति-शाखा (राम काव्य)

आप निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा के विषय में पढ़ चुके हैं कि उस समय एक ओर संत-मत हिंदू-मुस्लिम ऐक्य का प्रयास कर रहा था तो दूसरी ओर सूफी संत भी इस ओर प्रवृत्त थे। परंतु उपर्युक्त शाखाएँ सवर्ण हिंदुओं का अवलंबन न बन सकीं। परिणामस्वरूप हिंदू जनता राम-कृष्ण की ओर आकृष्ट हुई। इस वैष्णव भक्ति का प्रादुर्भाव दक्षिण में हुआ, किंतु यह शीघ्र ही समस्त उत्तर भारत में फैल गयी। इसका एक प्रधान कारण यह भी था कि अवध और ब्रज प्रदेश राम और कृष्ण के जन्म-स्थान थे। इस कारण उस काल में ब्रज भाषा और अवधी भाषा को भी यथेष्ट सम्मान मिला। यह काल साहित्य-क्षेत्र में स्वर्ण युग कहलाता है। कृष्णभक्त कवियों में महात्मा सूरदास और रामभक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास अग्रगण्य हैं।

हिंदी काव्य का विकास

हिंदी के महाकाव्यों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं–तुलसी-पूर्व, तुलसी-कालीन और तुलसी-परवर्ती। तुसली-पूर्व रामकाव्यों में 'पृथ्वीराज रासो' का द्वितीय 'समय' है। इसमें दशावतार के अंतर्गत रामावतार का भी वर्णन है। रामानंद के कुछ भक्ति-विषयक पद राम के संबंध में मिलते हैं। सूरदास ने भी 'रामचरती' की रचना की है। ईश्वरदास ने 'रामजन्म', 'अंगद-पैज' और 'भरत-मिलाप', दोहा-चौपाई में लिखे, जिनकी भाषा अवधी है। इसमें तुलसीकृत रामचरितमानस' का पूर्वाभास मिलता है। तुलसी के समकालीनों में अग्रदास ने भक्ति-पूर्ण पदों की रचना की है जो 'पदावली', 'ध्यानमंजरी' और 'अष्टयाम' में संकलित हैं। नाभादास ने भी 'अष्टयान' और 'रामचरित' के पदों की रचना की।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

तुलसी के समकालीन कवियों में आचार्य केशवदास प्रमुख हैं। इनके द्वारा रचित प्रबंधकाव्य 'रामचंद्रिका' के संवाद उत्कृष्ट कोटि के हैं। सोढ़ी मेहरबान ने हिंदी-पंजाबी मिश्रित-गद्यात्मक भाषा में 'आदि रामायण' लिखी। प्राणचंद चौहान ने 'रामायण महानाटक', हृदयराम ने 'हनुमन्नाटक', रामनंद ने 'लक्ष्मणायन' और माधोदास ने 'रामरासो' की रचना की।

2.5.1 भक्तिकालीन रामकाव्य के प्रमुख कवि

भक्तिकाल में रामकाव्य के रचयिता अनेक सुकवि हुए हैं, जिनमें से प्रमुख ये हैं–सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, गोविंदसिंह, विश्वनाथसिंह। इन कवियों का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(1) सूरदास

महाकवि सूरदास के बारे में आपको कृष्ण भक्ति शाखा वाले अध्याय में विस्तार से बताया जायेगा। वे मुख्य रूप से कृष्णभक्त कवि थे, लेकिन राम के बारे में उन्होंने कुछ पदों की रचना की है। इसी प्रकार रामभक्त कवि होते हुए भी तुलसी ने कृष्ण के बारे में 'कृष्णगीतावली' की रचना की। इसका कारण शायद यह रहा हो कि राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के अवतार हैं। सूर ने राम के बारे में जो पद लिखे हैं वे 'सूर रामचरित' और 'सूर सारावली' में संग्रहीत हैं, लेकिन इन दोनों ही ग्रंथों की प्रामाणिकता के बारे में मतभेद है।

(2) तुलसीदास

हिंदी में राम काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास माने जाते हैं। इनका जन्म शूरक क्षेत्र (सोरों) के अन्तर्गत राजापुर नामक ग्राम में हुआ था। इनका बचपन बहुत कष्ट में बीता। माता-पिता इन्हें बाल्यावस्था में ही छोड़कर स्वर्ग सिधार गये थे। अतः इनके पालन-पोषण का भार बूढ़ी दादी के कंधों पर आ गया। बचपन में ये राम नाम का बहुत उच्चारण करते थे। इस कारण इनका मुँह बोला नाम 'रामबोला' भी था। गुरु नरहरिदास की कृपा से इन्हें शिक्षा प्राप्त हुई। वयस्क होने पर गंगापार बदरी नामक ग्राम के दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से इनका विवाह हुआ। ये अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे। कुछ समय पश्चात् इनका दांपत्य प्रेम अचानक भगवत् प्रेम में परिणत हो गया। ये घर छोड़कर चले गये। संवत् 1680 या 1623 ई. में काशी के अस्सी घाट पर इन्होंने शरीर त्याग दिया। उनकी मृत्यु के संबंध में यह दोहा प्रसिद्ध है–

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावन शुक्ल सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।।

कुछ लोग श्रावण शुक्ल 3, शनिवार, संवत् 1680 को उनकी मृत्यु-तिथि मानते हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट के अनुसार गोस्वामी जी के नाम से 37 ग्रंथ पाये गये हैं, किंतु इनमें सभी प्रामाणिक नहीं हैं। नागरी प्राचारिणी सभा ने इनके निम्नलिखित 12 ग्रंथों को प्रमाणित माना है–**रामचरितमानस, रामललानहछू, वैराग्य-संदीपनी, बरवे रामायण, पार्वतीमंगल,**

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

जानकीमंगल, रामाज्ञाप्रश्न, दोहावली, कवितावली, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली और विनयपत्रिका।

गोस्वामी जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने काव्य की प्रायः सभी शैलियों को अपनाया है। 'रामचरित मानस' हिंदी जगत् का अद्‌वितीय प्रबंधकाव्य है। 'जानकीमंगल' और 'पार्वतीमंगल' खंड काव्य के सुंदर उदाहरण हैं। गीतिकाव्य में 'गीतावली' अपना विशिष्ट स्थान रखती है। स्तुतिपरक मुक्तकों में 'विनयपत्रिका' अनुपम है।

गोस्वामी जी ने अधिकतर मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है, किंतु स्तुति, संस्कृत-श्लोक आदि में वर्णिक वृत्त भी समुचित मात्रा में उपलब्ध होते हैं। गोस्वामी जी ने गेय पदों में रागों का भी ध्यान रखा है। गोस्वामी के काव्यों में अलंकार स्वतः चले आये हैं जो काव्य-सौंदर्य में चार चाँद लगा देते हैं। राम का जीवन बड़ा व्यापक है। उसमें रसों का समावेश बड़ी सरलता से हो जाता है। गोस्वामी जी ने रसों का प्रयोग बड़ी सफलता से किया भी है। श्रृंगार और हास्य के वर्णन में विशेष रूप से सावधान रहे हैं। उनका श्रृंगार और हास्य बहुत मर्यादित और शिष्ट है। उनके मधुर हास्य का एक उदाहरण देखिए–

विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महाबिनु नारि दुखारे।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुन भे मुनिबंद सुखारे।।
ह्‌वे हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पग मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे।।

तुलसी की भाषा प्रवाहपूर्ण है। उसमें यथावसर ओज, माधुर्य और प्रसाद इन तीनों गुणों का समावेश हुआ है। गोस्वामी जी ने अवध और ब्रजभाषा का प्रयोग समान कौशल से किया है।

गोस्वामी जी का वर्ण्य–विषय यद्‌यपि रामकथा और रामभक्ति है तथापि विभिन्न स्थलों पर उनके अन्य विषयों के ज्ञान का परिचय भी मिलता है, जैसे–ज्योतिष, राजनीति, आचार-शास्त्र, दर्शन, काव्यशास्त्र, संगीत, मनोविज्ञान।

(3) केशवदास

हिंदी साहित्य में महाकवि केशव का एक विशेष स्थान है। इन्होंने अपना परिचय 'रामचंद्रिका' में स्वयं दिया है। ये जाति के सनाढ्‌य ब्राह्मण थे। इनके पितामह का नाम कृष्णदत्त और पिता का नाम काशीनाथ था। इनका जन्म टेहरी में संवत् 1612 (1555 ई.) के आस-पास हुआ था। इन्हें ओरछा नरेश इंद्रजीत सिंह के दरबार में बहुत सम्मान प्राप्त था और वे ही इनके आश्रयदाता थे।

केशवदास संस्कृत के विद्‌वान् थे, इनकी रचनाओं में इनके ज्ञान का परिचय भली-भाँति मिल जाता है। ये अलंकारवादी थे और रस की अपेक्षा अलंकारों को अधिक महत्त्व देते थे। इनके लिखे सात ग्रंथ हैं–'विज्ञान-गीता', 'रतन बावनी', 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका', 'वीरसिंह देव-चरित्र', 'रसिकप्रिया', 'रामचंद्रिका'। हिंदी कवियों में केवल केशवदास ऐसे बहुप्रतिभा संपन्न कवि हैं, जिनमें जहाँगीर और वीरसिंह की स्तुति के कारण आदिकालीन, 'रामचंद्रिका' से भक्तिकालीन और 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' से रीतिकालीन

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

प्रवृत्तियों का एकत्र समावेश दिखाई पड़ता है। इस प्रकार से वह एक ऐसी सीमा-रेखा पर खड़े हुए कवि हैं, जिनके एक ओर भक्तिकाल है, तो दूसरी ओर रीतिकाल। ये रीतिकाल के जन्मदाता आचार्य कवि हैं। इनके आचार्यत्व की प्रशंसा रीतिकाल के अनेक आचार्यों ने की है।

'रामचंद्रिका' के कथानक का मुख्य आधार 'वाल्मीकि रामायण' है, किंतु इस पर संस्कृत के 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' का प्रभाव भी यत्र-तत्र दिखाई दे जाता है। 'रामचंद्रिका' में अनेक प्रकार के वर्णिक एवं मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है। किंतु पद-पद पर छंद-परिवर्तन कथा के प्रवाह में व्याघात डालता है। इस कृति में धनुष यज्ञ का वर्णन, प्रकृति-वर्णन और नखशिख-वर्णन भी सुंदर है। 'रामचंद्रिका' में किसी भी दार्शनिक सिद्धांत या लोक-शिक्षा का प्रतिपादन नहीं हुआ है। केशव स्वयं राजदरबार से संबंध रखते थे, इसलिए दरबारी वातावरण, आचार-व्यवहार तथा संवादों से सपरिचित थे। नाटकीय संवादों की दृष्टि से 'रामचंद्रिका' महत्त्वपूर्ण है। वे संवाद सजीवता और वाक्चातुर्य से परिपूर्ण हैं। 'रामचंद्रिका' की भाषा बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा है। केशव की सरस भाषा का एक उदाहरण देखिए–

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाऊं कुठाउँ बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूं संग रैहैं।
केशव काम के राम विसारत और निकाम रे काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित अन्दर, अंतक लोक अकेलोई जैहैं।

(4) स्वामी अग्रदास

स्वामी अग्रदास का जन्म संवत् 1662 (1605 ई.) में हुआ था। ये गलता (जयपुर) के निवासी थे। 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास इनके शिष्य थे। स्वामी अग्रदास ने पाँच ग्रंथों की रचना की। एक छोटी रचना 'हितोपदेश उपाख्यान बावनी' इनके नाम से हाल ही में प्रकाश में आयी है। अग्रदास यद्यपि अष्टछाप के कृष्ण-भक्त कवि कृष्णदास जी के शिष्य थे, तथापि ये राम के उपासक थे। इन्होंने अपनी 'ध्यानमंजरी' में राम और राम के भाइयों के सौंदर्य एवं अयोध्या और सरयू की शोभा का विशेष वर्णन किया है। 'ध्यानमंजरी' 69 पदों की एक छोटी-सी रचना है। 'अष्टयान' में राम के आठों पहर के कार्यों का वर्णन है। इसमें सीता-राम के दांपत्य-प्रेम का श्रृंगार-पूर्ण चित्रण है।

(5) नाभादास

नाभादास का असली नाम नारायणदास था। इनकी जाति डोम अथवा मेदारा थी। इनका जन्म सन् 1600 (संवत् 1657) है। इनके गुरु स्वामी अग्रदास थे। ये राम के उपासक थे और इन्होंने रामसम्बन्धी पदों की रचना भी की, किंतु इनकी ख्याति 'भक्तिमाल' के कारण अधिक हुई। 316 छप्पयों में इन्होंने 200 भक्त कवियों का परिचय दिया है। परिचय में भक्तों के जीवन की विशेष घटनाओं का वर्णन है, तिथि-संवत् का कोई उल्लेख नहीं। संवत् 1769 (1712 ई.) में प्रियादास ने 'भक्तमाल' पर टीका लिखी।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(6) हृदयराम

हृदयराम ने संस्कृत के 'हनुमान्नाटक' के आधार पर कवित्त-सवैया छंदों में 'हनुमान्नाटक' नामक पद्यात्मक हिंदी नाटक की रचना की है। इसका रचनाकाल संवत् 1662 (1575 ई.) है। रामकाव्य में 'हनुमान्नाटक' का विशेष स्थान है। इसमें रामभक्ति की चर्चा सुचारु रूप से हुई है।

(7) प्राणचंद चौहान

प्राणचंद चौहान जहाँगीर के समकालीन थे। इनका जन्म संवत् 1667 (1610 ई.) में माना गया है। इनकी एक ही रचना प्राप्त है, जो 'रामायण महानाटक' के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें रामकथा संवाद के रूप में वर्णित की गयी है। काव्यकला की दृष्टि से यह रचना महत्त्व नहीं रखती।

(8) सेनापति

सेनापति का जन्म संवत् 145 (1586 ई.) में हुआ था। इनका निवास स्थान गंगा के पास स्थित अनूपशहर था। 'कवित्त-रत्नाकर' में इन्होंने अपना परिचय स्वयं दिया है। इनके पितामह का नाम परशुराम और पिता का नाम गंगाधर था। इनके गुरु हीरामणि दीक्षित थे। 'सेनापति' इनका उपनाम प्रतीत होता है। इनका वास्तविक नाम अज्ञात है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी कविता सरस और प्रवाहमयी है। 'कवित्त-रत्नाकर' का रचनाकाल सं. 1706 (1649 ई.) है। इनके अतिरिक्त 'काव्यकल्पद्रुम' नामक एक और ग्रंथ इनका बताया जाता है। सेनापति प्रकृति-वर्णन में बड़े सिद्धहस्त हैं। 'कवित्त-रत्नाकर' में पाँच तरंगे हैं जिनमें, क्रमशः श्लेश, श्रृंगार, ऋतु रामायण और राम-रसायन का वर्णन है। रामकथा का वर्णन भक्ति-भाव से परिपूर्ण है। इनकी सरस रचना का एक उदाहरण देखिए–

कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति,
सेनापति को सुहाति सुखी जीवन के गन है।
फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन,
फैलि रहे तारे मानो मोती अनगन है।
उदित विमल चंद चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसो जस अध ऊरध गगन है।
तिमिर हरन भवो, सेत है बरन सब,
मानहु जगत जोर सागर मगन है।

(9) गुरु गोविंद सिंह

गुरु गोविंद सिंह का जन्म संवत् 1723 वि. (1666 ई.) में और देहांत संवत् 1765 (1708 ई.) में हुआ था। इनकी माता का नाम गूजरी था और पिता का गुरु तेगबहादुर। इनके दरबार में बावन कवियों को आश्रय प्राप्त था। गुरु गोविंद सिंह केवल संस्कृत के ही विद्वान न थे, अपितु इन्हें अरबी, फारसी और ब्रजभाषा आदि का भी अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाओं का संग्रह 'दशमग्रंथ' के नाम से विख्यात हैं, जिसमें विचित्र नाटक, जफरनामा, रामावतार, गोविंद रामायण, सौ साखी, जाप, चंडी चरित्र आदि रचनाएँ

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

संग्रहीत हैं। इनमें अनेक प्रकार के छदों का प्रयोग है। कुछ छंद ऐसे भी हैं जो हिंदी में प्रचलित नहीं है। शृंगार और वीर रस की इसमें प्रधानता है। युद्ध का वर्णन बड़ा सजीव है।

इनकी सरस एवं प्रवाहमयी भाषा का एक उदाहरण देखिए–

नागरा के नैन हैं कि चातुरा के बैन हैं,
बगूला मानो गैन कैसे-तैसे घहरत हैं।
नर्तकी के पांव हैं कि जूप कैसे दाव हैं,
कि छल को दिखाव कोऊ तैसे विहरत हैं।
हांकि बाजि वीर हैं तुफंग कैसे तीर हैं,
कि अंजनी को धीर है कि धुजा से थहरत हैं।
लहरें अनंग की तरंग जैसे अंग की,
अनंग कैसे अंग ज्यों न कहूं ठहरत हैं।

(10) महाराज विश्वनाथ सिंह

महाराज विश्वनाथ सिंह रीवां के नरेश थे। इनका जन्म-संवत् 1790 में हुआ। यह स्वयं भक्त कवि थे कवियों को आश्रय भी प्रदान करते थे। इनके पुत्र महाराज रघुनाथसिंह भी प्रसिद्ध कवि थे। महाराज विश्वनाथ सिंह पर कबीर पंथ का भी कुछ प्रभाव था अतः इनकी रचनाएँ कबीर पंथ और रामकाव्य दोनों से संबंध रखती है। इनकी 32 रचनाएँ बतायी जाती हैं। जिसमें राम काव्य संबंधी कृतियों में 'आनंद रघुनंदन' प्रमुख है–रघुनंदन नाटक में गद्य और पद्य दोनों का ही प्रयोग है। गद्य की भाषा भी ब्रजभाषा है। इसमें सात अंकों में राम जन्म से लेकर रामराज्य तक की कथा है। महाराज विश्वनाथ सिंह ने असली नामों के स्थान पर दूसरे नाम रख दिये है, यथाः–राम के लिए हितकारी, लक्ष्मण के लिए डोल धराधर, रावण के लिए दिकुशिरा। इनकी भाषा सरस है। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिए–

लियो सो बान बिज्जु चाप चार देब बज सो।
लसे सुभट्ट सज्जि गर्जिज्जत-गर्जिज्जत मज सो।।
मिले संग्राम के उछाह पौन सो उमंडि के।
आनंद के अनंत मेह ज्यों चले धुमण्डि कै।।

2.5.2 राम काव्य की विशेषताएँ

राम काव्य ने भारतीय जनता को बहुत प्रभावित किया है। इसने भक्ति के उदात रूप को जनता के सन्मुख उपस्थित किया है। रामकाव्य जनता का मनोरंजन करता है। आधुनिक काल में जो रामलीलाएँ होती है, उनसे आबाल वृद्ध, ग्रामीण एवं नागरिक सभी का मनोरंजन होता है और इस मनोरंजन के द्वारा मानसिक उन्नयन भी। राम मर्यादा-पुरुषोत्तम है, उनका चरित्र मानव-जाति के लिए आदर्श है। रामकाव्य की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(1) दास्य-भाव की भक्ति– कृष्णकाव्य में सख्य-भक्ति की प्रधानता है, किंतु राम काव्य में दास्य-भक्ति प्रधान है। वैसे उसमें नवधा भक्ति के सभी प्रकार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन मिल जाते हैं। इसमें राम की उपासना सेव्य-सेवक भाव से की गयी है। इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं, क्योंकि आज तक हिंदी के राम साहित्य में 'रामचरितमानस' जैसा ग्रंथ और नहीं लिखा गया। यह कृषि चार सौ वर्षों से हिंदी भाषी जनसमूह का दिशा निर्देश कर रही है।

(2) मर्यादा की प्रतिष्ठा– राम काव्य में मर्यादा का प्रमुख स्थान है। राम का चरित्र ही मर्यादा पुरुषोत्तम का चरित्र है। चरित्र में पूर्णतः मर्यादित किये बिना कोई भी व्यक्ति पुरुषोत्तम नहीं बन सकता है। राम काव्य में मर्यादा कई रूपों में दिखलाई पड़ती है। जीवन के विभिन्न कार्य-व्यापारों में मर्यादा को मूल्य के रूप में स्थापित किया गया है। धर्मनीति व्यक्ति के चरित्र को मर्यादित करती है, राम का चरित्र आद्यंत धर्ममय है, इसलिए मर्यादा उसके चरित्र में सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। मितभाषी होना, सत्य पर दृढ़ रहना, पिता की आज्ञा का पालन करना, प्रतिज्ञापूरी करना आदि गुण मर्यादा के ही अंग हैं। इसी तरह राम काव्य के अनेक चरित्र मर्यादा से मुक्त है। तुलसीदास जी ने शृंगार को भी मर्यादित कर दिया है। उनसे पूर्व कृष्ण काव्य की रचना हो चुकी थी, उसका प्रभाव रामकाव्य पर अवश्य पड़ा। तुलसीदास जी की 'गीतावली' में राम के हिंडोला-विहार और फाग-क्रीड़ा का उल्लेख है। अग्रदास और नाभादास जी के अष्टयानों में शृंगार की मात्रा अधिक है। मुनिलाल के 'रामप्रकाश' में राम-कथा का वर्णन रीति-पद्धति के अनुसार है। रीतिकाल में जो रामकाव्य रचा गया उसकी शृंगारिता अश्लीलता की सीमा तक जा पहुँची। परंतु तुलसी ने कहीं भी शृंगार को मर्यादा की सीमा से नीचे नहीं गिरने दिया।

(3) आदर्श की स्थापना– राम काव्य में विभिन्न आदर्शों की कल्पना की गई है और उनकी स्थापना पर बल दिया गया है। आदर्श चरित्र की कल्पना से आदर्श समाज की कल्पना का स्वरूप राम काव्य में साकार सामने आता है। आदर्श भाई, पुत्र, मित्र, राजा आदि तो यहाँ हैं ही, आदर्श परिवार और आदर्श समाज चित्र भी विद्यमान है। राम का राज्य आदर्श राज्य है। वही आदर्श राज्य रामराज्य कहलाता है। राम काव्य में चित्रित विभिन लोकादर्श हमेशा प्रेरणादायक रहे हैं। इन आदर्शों के कारण ही राम-काव्य की ऊँचाई को दूसरे काव्य प्राप्त न कर सकें।

(4) लोकमंगल की भावना– प्रभाव की दृष्टि से राम काव्य की गणना उच्चकोटि के उन काव्यों में होगी जिनका उद्देश्य जन-कल्याण या लोकमंगल होता है। ये काव्य सिर्फ मनोरंजन के लिए न लिखे जाकर गंभीर कल्याणकारी उद्देश्य को लेकर रचे गये हैं। हिंदी साहित्य में राम-काव्य के प्रवर्तक तुलसी यद्यपि यह कहते हैं कि उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना स्वांतःसुखाय के लिए की, किंतु वस्तुस्थिति यह है कि उतनी ही लोकहिताय भी हो गई। अर्थात् उसका उद्देश्य जन–कल्याण या लोक-मंगल को उबुद्ध करना हो गया। राम काव्य के नायक का उद्देश्य भी लोकमंगल ही है। उसका उद्देश्य इन काव्यों का उद्देश्य भी बन गया।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(5) काव्यरूपों की विविधता– राम-साहित्य का काव्य-क्षेत्र अधिक विस्तृत है क्योंकि इसमें काव्य की सभी शैलियों और विधियों को अपनाया गया है। तुलसीदास जी का 'रामचरितमानस' महाकाव्य है। इसकी गणना संसार में श्रेष्ठ महाकाव्यों में की गई है। 'जानकीमगल' अत्यंत सुंदर और मनोरम खण्डकाव्य है। 'गीतावली' गीतिकाव्य है जिसमें सरसता और संगीत का अपना स्थान है। 'विनयपत्रिका' स्तुतिपरक काव्यों में गणमान्य है। विद्वानों की दृष्टि में यह रचना तुलसी के सभी काव्यों में उत्कृष्ट है। कवितावली' में वीरगाथाकालीन चारण-पद्धति का अनुसरण हुआ है, जिसमें कवित्त, चप्पय, सवैये आदि के माध्यम से रामकाव्य की सरसता को उपस्थित किया गया है। 'रामललानहछू' लोकगीत का अनुपम साहित्यिक उदाहरण है। संवाद की दृष्टि से केशव की 'रामचंद्रिका' अनुपम है। इन श्रव्यकाव्यों के अतिरिक्त रामकाव्य में दृष्यकाव्य भी उपलब्ध है, जिनमें हृदयराम का 'हनुमान्नाटक', प्राणचंद्र चौहान का 'रामायण महानाटक' और विश्वनाथसिंह का 'आनन्द रघुनंदन नाटक' उल्लेखनीय है। रामकाव्य में पद्य के साथ-साथ गद्य का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। रामप्रसाद निरंजनी का भाषा 'योगवासिष्ठ' खड़ी बोली गद्य में है। विश्वनाथ सिंह के 'आनंद रघुनंदन नाटक' में पद्य के साथ ब्रजभाषा का भी प्रयोग उपलब्ध होता है।

(6) भाषा-प्रयोग की विविधता– भाषा के क्षेत्र में भी रामकाव्य अपना महत्त्व रखता है। कृष्ण-भक्त कवियों ने केवल ब्रजभाषा को अपनाया। अवधी में कृष्ण पर कोई महत्त्वपूर्ण प्राचीन रचना उपलब्ध नहीं होती, किंतु रामकाव्य की रचना प्रायः सभी भाषाओं में हुई है। 'रामचरितमानस' अवधी में रचा गया। 'कवितावली', 'विनयपत्रिका' आदि की रचना ब्रजभाषा में हुई। 'रामललानहछू' में अवधी का प्रयोग हआ है और रामप्रसाद निरंजनी की 'भाषा योगवासिष्ठ' खड़ी बोली के गद्य में लिखा गया। इसके अतिरिक्त केशव की 'रामचंद्रिका' में ब्रजभाषा के अतिरिक्त बुंदेलखंडी शब्दों का प्रयोग हुआ है। तुलसी की रचनाओं में भोजपुरी के अतिरिक्त अरबी और फारसी के शब्द भी पाये जाते हैं।

(7) सभी रसों का समावेश– राम का चरित्र बड़ा व्यापक है। उसमें सभी रसों का समावेश बड़ी सरसता से हो जाता है। 'रामचरितमानस' में सभी रस उपलब्ध होते हैं। केशव की 'रामचंद्रिका' में भी सभी रसों की व्यंजना हुई है। राम के विवाह में सौंदर्य और माधुर्य की भावना निहित है। राम वनवास के समय करुण रस के चित्रण का यथेष्ट अवसर प्राप्त हुआ है। राम-रावण के युद्ध-वर्णन में वीर, भयानक, रौद्र और वीभत्स की सुंदर व्यंजना है। लक्ष्मण-परशुराम संवाद में मधुर हास्य के दर्शन होते हैं। रामकाव्य में सेवक-सेव्य भाव की प्रधानता के कारण शांत रस प्रधान है। अधिकतर रामकाव्यों में श्रृंगार अथवा शांत ही प्रधान रस के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

(8) विविध छंदों का प्रयोग– रामकाव्य में विविध छंद उपलब्ध है। प्रबंध काव्य में प्रायः दोहे-चौपाइयों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त बीच-बीच में अन्य छंद भी काव्य-सौंदर्य को बढ़ाने में सफल सिद्ध हुए हैं। संस्कृत श्लोक और स्तुतियों में गोस्वामी जी ने वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है। केशव ने तो 'रामचंद्रिका' को छंदों का भंडार बना दिया है। पद-पद पर नवीन छंदों के दर्शन होते हैं। गुरु गोविंद सिंह ने भी बहुत से छंदों का प्रयोग किया है, जो हिंदी में अधिक प्रचलित नहीं हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(9) प्रकृति-चित्रण– रामकाव्यों में प्रकृति-चित्रण का अभाव नहीं है। इनमें वन, पर्वत, सूर्योदय, चंद्रोदय, वर्षा ऋतु के चित्रण के साथ-साथ मानव-प्रवृत्तियों का भी चित्रण किया गया है। 'रामचंद्रिका' का भी प्रकृति-चित्रण सुंदर है।

(10) जन-श्रद्धा का आधार– रामकाव्य की विशेषता यह है कि यह कृष्णकाव्य की भाँति आगे चलकर कलुषता को प्राप्त न हुआ। कृष्ण-भक्ति में माधुर्य-भावना का प्राधान्य था, जो रसिक समाज को अपनी ओर आकर्षित करती थी। यही कारण था कि राम-भक्ति की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति का प्रचार अधिक हुआ, किंतु रामचरित्र के आदर्श और मर्यादा भाव शिष्टता और धर्म की पवित्रता के प्रहरी रहे। कृष्ण-भक्ति की अपेक्षा भले ही अधिक रहा हो किंतु जनसामान्य में रामकाव्य अधिक लोकप्रिय रहा। तुलसीकृत 'रामचरित मानस' का सम्मान उत्तरी भारत में आज भी अक्षुण्ण है। बड़े श्रद्धा भाव से आज भी उसका पाठ होता है।

(11) समन्वय-भावना– रामकाव्य में समन्वय-भावना भी परिलक्षित है। यद्यपि गोस्वामी जी रामभक्त थे, किंतु उन्होंने शिव, पार्वती गणेश आदि अन्य देवताओं की भी स्तुतियाँ की हैं। उन्होंने शिव-पूजन को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया। उनके राम ने रामेश्वरम् में शिवलिंग की स्थापना की, सीता ने भी गौरी-पूजन किया है। तुलसी ने राम के मुख से कहलाया है–

शिवद्रोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहुं नहि भावा।

धार्मिक समन्वय के अतिरिक्त ज्ञान और भक्ति का दार्शनिक समन्वय भी तुलसी के रामकाव्य में उपलब्ध हैं। इस तरह शैव और वैष्णव भक्तियों तथा ज्ञान और भक्ति के बीच समन्वय का बड़ा दायित्व राम काव्य में बखूबी निभाया गया है।

(12) विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के साथ भक्ति पर बल– रामकाव्य का दार्शनिक सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद है। शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धांत बड़ा प्रसिद्ध सिद्धान्त रहा है। उसमें ज्ञान पर बल दिया गया है और ईश्वर तथा जीव को एक माना गया है। विशिष्टाद्वैत में भक्ति को उच्च स्थान प्राप्त हआ है। तुलसीदास ने यद्यपि शंकराचार्य की भाँति ब्रह्म की अद्वैतता का भी आख्यान किया है, पर उनका अधिक बल भक्ति पर ही रहा। भगवत्-कृपा को वे सर्वोपरि मानते रहे हैं–

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंत तुलसीदास हूँ।।
पायो परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

2.5.3 बोध प्रश्न

1. 'रामचरितमानस' किसकी रचना है?
2. तुलसीदास की प्रमुख कुछ रचनाओं के नाम बताइए।
3. रामभक्ति - शाखा के कुछ प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

2.6 कृष्ण–भक्ति शाखा (कृष्ण–काव्य)

हिंदी का कृष्ण-भक्ति-साहित्य शुद्ध धार्मिक वातावरण में रचा गया। उस पर भक्ति-दर्शन के संप्रदायों का भी पूरा-पूरा नियंत्रण रहा। यही कारण है कि कृष्ण-भक्ति के सभी संप्रदायों के अनुरूप रचे जाने वाले साहित्य को हम दो प्रमुख भागों में बांट सकते हैं। एक वह जिसका प्रधान लक्ष्य भक्ति-सिद्धांत और भक्ति–दर्शन का निरूपण था तथा दूसरा वह जिसका लक्ष्य था कृष्ण की लीलाओं तथा भक्ति-रस के अवगाहन के द्वारा साहित्यिक आनंद प्रदान करना। 'सूरसागर' दूसरे प्रकार की रचना है। शुद्धाद्वैतवाद अथवा पुष्टि मार्ग के सैद्धांतिक विश्लेषण की सजग चेतना उसके कवि सूर में नहीं है। पर 'साहित्य लहरी' अगर सूर की ही रचना है तो उसमें सैद्धांतिक निरूपण की दृष्टि का प्राधान्य है। नंददास के 'भंवरगीत' में भी ज्ञान–योग आदि के खंडन तथा भक्ति के मंडन में कवि का ध्यान सिद्धांतों और तर्कों पर अधिक गया है। मध्यकाल में कृष्ण-भक्ति साहित्य के दो प्रधान आधारभूत ग्रंथ श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण रहे। कृष्ण-भक्त कवियों ने उन ग्रंथों से पर्याप्त सामग्री ली। पर मध्य-काल के कृष्ण-भक्ति साहित्य का प्रधान प्रेरणा-स्रोत लोक-साहित्य में प्रचलित पद शैली रही, जो सूर आदि कवियों में विकसित तथा पुष्ट हुई थी। दूसरे, इन कृष्ण-भक्त कवियों की कल्पना भी उर्वर थी इन्होंने कृष्ण-लीला के विभिन्न प्रसंगों की मौलिक उद्भावना भी की है। इस प्रकार हिंदी का कृष्ण-भक्ति साहित्य पुराणों का पिष्टपेषण मात्र नहीं है। उसका अपना स्वतंत्र साहित्य सौंदर्य एवं महत्त्व है। यह लोक-साहित्य शताब्दियों से चली आ रही परंपरा का प्रौढ़ एवं विकसित रूप है। हिंदी-कृष्ण-भक्ति काव्य में लोक-जीवन के विभिन्न पक्षों को ही भक्ति के प्रसंग में महत्त्व मिला है।

कृष्ण-भक्त कवियों का मन मुख्यतः कृष्ण की मधुर लीलाओं में ही रमा है। रामकाव्य की तरह जीवन की संपूर्ण दशाओं के विस्तार एवं उनके क्रमिक वर्णन में इन कृष्ण-भक्त कवियों का मन उतना नहीं रम पाया। कृष्ण-चरित्र की समग्रता या विविधता का चित्रण इन भक्तों का उद्देश्य नहीं था, वे कृष्ण की कुछ लीलाओं में आनंदमग्न होना चाहते थे। यही कारण है कि कृष्ण-भक्ति साहित्य प्रधानतः मुक्तक और गेय पदों की शैली में रचा गया। लीला के आनंद में रमने के लिए गेय पदों में भक्त कवि की पूर्ण तन्मयता के भी दर्शन होते हैं। इसी से ये पद सहृदय पाठक को भाव विभोर किये रहते हैं। इनमें गीति-काव्य का सौंदर्य अपनी पराकाष्टा पर पहुँचा हुआ है। भक्त के लिए भगवान का संपूर्ण जीवन ही लीला है। प्रायः सभी कृष्ण भक्त कवि भागवत अथवा अन्य किसी पुराण में वर्णित कृष्ण-संबंधी प्रसंगों का अवलंबन करके ही चले हैं। घटनाओं के क्रम पर भी इन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया है। इन कृष्ण-भक्त कवियों ने साधारणतः बालकृष्ण से लेकर किशोर या यौवन में प्रवेश करने वाले कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। यही कारण है कि पदों के अंतस्तल में प्रबंध की धारा का सूत्र भी व्यंजित होता चलता है। इसी से अधिकांश कृष्ण-भक्त कवियों के गेय पदों में गीति, मुक्तक और प्रबंध– तीनों प्रकार के काव्यों के सौंदर्य का सहज मिश्रण हो गया है। फिर भी उनके काव्य में प्रधान सौंदर्य गीति का ही है। कवि कृष्ण-राधा अथवा युगलछवि की किसी एक लीला के भाव को अन्य सहायक भावों से चरम अवस्था तक पहुँचा देता है। कृष्ण-भक्ति के इन पदों में गीतिकाव्य की सहज स्फूर्ति, आडंबरहीनता तथा

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

निश्छलता के दर्शन होते हैं। जीव मात्र अथवा कम से कम भक्त मात्र की भावनाओं की अभिव्यक्ति इन पदों में हुई है। अतः इनमें भक्त के साधारणीकृत व्यक्तित्व का आत्माभिव्यंजन है।

कृष्ण-काव्य की एक दीर्ध परंपरा है। महाभारत, हरिवंश पुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्ण के जीवन की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है। इनमें से भागवत में कृष्ण-भक्ति का पूर्ण विकास देखने को मिलता है। बाद के सभी काव्यों पर भागवत का प्रभाव देखा जा सकता है। प्राकृत काव्य-ग्रंथों में हाल की गाथा सतसई (गाथा सप्तशती, ई.पू. प्रथम शताब्दी) में श्री कृष्ण का उल्लेख है। दक्षिण के आलवार संतों का कृष्ण-भक्ति-परंपरा में महत्त्वपूर्ण योग है। संस्कृत के अश्वघोष, महानारायण, आनंदवर्धन आदि के ग्रंथों में कृष्ण की लीलाओं के उदाहरण मिलते हैं। जयदेव का 'गीतगोविंद' संस्कृत काव्य ग्रंथों में इस दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। उसमें कृष्ण और राधा का श्रृंगार-लीलाओं का विशद वर्णन है। हिंदी में यह परंपरा विद्यापति से प्रारंभ होती है। गीतगोविंद की श्रृंगारिकता की तरह उन्होंने भी कृष्ण-काव्य में मादक श्रृंगार की अभिव्यक्ति की है। विद्यापति के पश्चात् सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति के गौरवशाली साहित्य की सर्जना की है। इन कवियों की रचनाओं में भारतीय दर्शन के विभिन्न मतों का आधार लिया गया था। ऐसे चार मतवाद विशेष प्रसिद्ध हैं–

(1) बल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग, (2) चैतन्यमहाप्रभु का गौड़ीय संप्रदाय, (3) गोस्वामी हितहरिवंश का राघबल्लभी संप्रदाय और (4) स्वामी हरिदास का सखी संप्रदाय।

2.6.1 प्रमुख कृष्णभक्त कवि

हिंदी के कृष्णभक्त कवि बल्लभाचार्य से सबसे अधिक प्रभावित थे। अतः उन कवियों के साथ उनका भी संक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक है।

बल्लभाचार्य का जन्म सं. 1535 (सन् 1478 ई.) में मध्य प्रदेश के चंपारण्य में हुआ था। उनके पिता का देहांत उनकी वाल्यावस्था में ही हो गया। उनकी माता बड़ी बुद्धिमती थीं। माता की देख-रेख में उन्होंने असाधारण प्रगति की। 13 वर्ष की अवस्था तक उन्होंने काशी में रहकर शास्त्र, पुराण और साधना-पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद वे यात्रा पर निकल पड़े। शंकराचार्य की तरह उनके मन में भी दिग्विजय की आकांक्षा थी। इस यात्रा के क्रम में बल्लभाचार्य ने अपने मत शुद्धाद्वैतवाद का प्रचार किया। इसी बीच वे ब्रजप्रदेश गये और वहाँ श्री नाथ की जी मूर्ति की स्थापना की। सं. 1587 (सन् 1539 ई.) में काशी में उनका देहांत हो गया।

बल्लभाचार्य द्वारा लिखित ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है–ब्रह्मसूत्रों का 'अणुभाष्य' तथा श्रीमद्भगवद्गीता की टीका 'श्री सबोधिनी'।

बल्लभाचार्य के छोटे पुत्र विट्ठलनाथ का पुष्टिमार्ग के प्रचार-प्रसार में बड़ा योगदान है। उनका जन्म सं. 1572 (सन् 1515 ई.) में हुआ था। 41 वर्ष की अवस्था में वे ब्रज जाकर स्थायी रूप में रहने लगे। फिर 56 वर्ष की अवस्था में वे गोकुल आकर रहने लगे। 70 वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान हो गया।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अपने पिता के ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखीं। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'विद्वन्मंडल', 'भक्तिनिर्णय' तथा 'शृंगाररसमंडन' आदि कई ग्रंथ लिखे।

ग्रंथ-रचना की अपेक्षा विट्ठलनाथ द्वारा किये गये संप्रदाय-संगठन संबंधी कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पिता के और अपने चार-चार शिष्यों को मिलाकर विट्ठलनाथ जी ने 'अष्टछाप' नाम से गायक कवियों का एक दल बनाया। हिंदी साहित्य में अष्टछाप के इन कवियों का विशेष महत्त्व है। अष्टछाप के इन कवियों का परिचय आगे प्रस्तुत है।

(1) सूरदास

सूर का जन्म संवत् 1535 (1478 ई.) वैशाख शुक्ल 5 को हुआ। उनका जन्म दिल्ली-मथुरा रोड पर सीही नाम के ग्राम के एक ब्राह्मण कुल में हुआ था।

नेत्रविहीन होते हुए भी उन्होंने दृश्य-जगत का ऐसा यथार्थ वर्णन किया है कि उनकी जन्मान्धता पर संदेह होता है। उन्होंने यमुना के कछारों, कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं एवं ब्रज के सामान्य जीवन का जितना सजीव चित्रण किया है, उतना कोई नेत्रयुक्त कवि भी आज तक नहीं कर सका है। प्रारंभ में उनकी विशेष रुचि गायन-वादन में थी। प्रभावोत्पादन मधुर कंठ के गाये गये उनके विनय और दीनता के पदों को सुनकर लोग मंत्रमुग्ध से हो जाते थे। सं. 1553 (1496 ई.) तक वे सीही तथा उसके निकटवर्ती ग्राम में रहे और इसके बाद मथुरा-आगरा मार्ग पर स्थित गऊघाट नामक स्थान पर आ बसे। वहाँ वे प्रायः 12 वर्ष तक रहे। इस बीच उनकी काफी ख्याति हो गयी तथा अनेक व्यक्ति उनके शिष्य-सेवक बन गये। सं. 1567 (1510 ई.) के लगभग पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक बल्लभाचार्य जी अपने नवनिर्मित श्रीनाथ जी के मंदिर की देखभाल करने गोवर्धन जाते हुए गऊघाट पधारे और वहाँ सूर से उनकी भेंट हुई। सूर ने महाप्रभु के समक्ष अनेक विनय और दीनता के पद गाये जिन्हें सुनकर महाप्रभु इस अंधकवि के हाथों बिक से गये और प्यार भरे शब्दों में इनसे कहने लगे– 'सूर ह्वैके ऐसे काहे घिघियात हौ। कछु भगवत् लीला बरनन करौ।' कहते हैं कि तभी से कृष्ण की विविध लीलाओं का गान करना सूर का मुख्य लक्ष्य बन गया।

सूरदास की प्रारंभिक रचनाओं में एक विचित्र प्रकार की दीनता का भाव है। वह बार-बार अपने को पतित, पापी एवं अधम कहते हैं तथा कृष्ण से यह प्रार्थना करते हैं कि वह अपने सेवक का उद्धार करें। दासता के भावों से भरे हुए उनके ये पद 'विनय' के पद कहे जाते हैं। विनय के पदों में आत्म-हीनता, सांसारिक भोग-विलास में लिप्त जीवन की तुच्छता, इस संसार की नश्वरता, हरि-भजन का आग्रह और निर्गुण ईश्वर की अनुकम्पा आदि का वर्णन है। महाप्रभु बल्लभाचार्य के दर्शन के बाद सूर की यह दीनता समाप्त हो गयी और वह श्रीकृष्ण को साकार रूप से भजने लगे। फिर तो उनकी भक्ति सख्य-भाव की हो गयी और अपने कृष्ण से वह हठ, जिद और आग्रह करने लगे। उनके ऐसे पदों में बड़ा खुलापन है–

'सूर' कबहूं न द्वार छांड़े डारिहौं कढ़राई।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अगर कृष्ण उन्हें दरवाजे से निकाल दें तो भी वह वहीं रहेंगे और भगवत्कृपा प्राप्त किये बिना नहीं मानेंगे।

सूर की रचनाएँ– नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में सूर के सोलह ग्रंथों का उल्लेख किया गया है। परंतु शैली और विषय की भिन्नता के कारण ये सब ग्रंथ सूरदास के नहीं हो सकते। अधिकांश साहित्य इतिहासकारों ने 'सूरसारावली', 'साहित्यलहरी' और 'सूरसागर' को ही सूरदास की रचनाएँ माना है। 'सूरसारावली' 'सूरसागर' की विषय-सूची सी है और 'साहित्यलहरी', 'सूरसागर' से लिए गए रस-रीति के दृष्ट-कूट पदों का संग्रह मात्र है। 'सूरसागर' श्रीनाथ जी के मंदिर में अनवरत रूप से गाये गये कीर्तन के पदों का संग्रह काव्य है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा मुद्रित 'सूरसागर' में बारह स्कंध में कवि ने कृष्ण के जन्म से लेकर नामकरण, कर्णवेध, अन्नप्राशन आदि संस्कारों, बाल-क्रीड़ाओं-कालियदमन, दावानल पान, चीर-रहण, रास, पनघट, दान, मान आदि विविध लीलाओं, कंस द्वारा भेजे गये राक्षसों का विनाश, गोचारण, गोवर्धन-पूजा, वनविहार, कृष्ण का मथुरा एवं द्वारिका गमन, कंस-विनाश, श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र-आगमन आदि का सविस्तार उल्लेख किया है। सूर की कीर्ति का स्थायी स्तम्भ 'सूरसागर' ही है।

कृष्ण-लीला संबंधी पद– ऐसे पदों में स्थिति-विशेष का पूर्ण दिग्दर्शन, घटना-क्रम का आभास तथा उच्च कोटि के रूप-सौंदर्य एवं भाव–सौंदर्य की परिपूर्ण झलक देखने को मिलती है। सूरसागर की अत्यंत महत्त्वपूर्ण विशेषता उसके पदों का गीति-माधुर्य है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरसागर को किसी प्राचीन समय से चली आती लोकगीत-पद्धति का विकसित रूप माना है। भाव, भाषा, लय एवं तान की दृष्टि से सूरसागर के समस्त गीत, शास्त्रीय रागों में आबद्ध होते हुए भी लोकगीतों का परिमार्जित रूप कहला सकते हैं। झूलन, होली, बसंत आदि पर रचे गये उनके पदों में लोकगीतों की सहज सुकुमारता एवं स्वाभाविकता दर्शनीय है।

बाल-लीला संबंधी पद– सूर-काव्य का वास्तविक रूप वात्सल्य और विरह के वर्णन में देखने को मिलता है। वात्सल्य का तो सूर कोना-कोना झाँक आये हैं। बालक की कोई भी मनोदशा एवं भावना शेष नहीं रही, जिसका अध्ययन इस नेत्रविहीन कवि ने न किया हो। यशोदा को पुत्र की प्राप्ति युवावस्था के ढलने पर हुई है। तभी तो वह सदैव पुत्र की चिंता करती रहती है और उसे खेलने बाहर नहीं जाने देती। उसे यही चिंता है कि कब उसका लाल चलना सीखेगा, कब तक उसे माता और पिता नंद को बाबा कहेगा और कब वह बहुरिया लायेगा। माता की इन विविध अभिलाषाओं के साथ कृष्ण की शैशवोचित क्रीड़ाओं का जाल-सा फैलता चला जाता है। घुटने के बल चलते हुए बालक का मणि-खचित प्रांगण में अपना प्रतिबिंब देख– बार-बार हंसना, सुवर्ण खंभ में अपने प्रतिबिंब को दूसरा शिशु विचार कर उसे लवनी खिलाना, खेलने के लिए माँ से चंद्रमा मांगना, चोटी बढ़ाने का आश्वासन देकर माँ का दूध पिलाना और बालक का मचल जाना, दूसरे बालकों के साथ मिलकर माँ के सहयोग से आँख-मिचौली का खेल खेलना, खेल ही खेल में साथियों से झगड़ पड़ना और सारा दोष बलराम के माथे मढ़ देना, गोचारण-प्रसंग में साथियों से छाछ एवं रोटी की छीना-झपटी करना, घर-घर में दही-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मक्खन की चोरी करते फिरना और अभियोग मुक्त होने के लिए तरह-तरह की बातें एवं युक्तियाँ सोचना, प्रेयसी राधा के साथ खिलौनों की दुनिया बसाना एवं गलबांही डालकर यमुना के कुँजों में खेलने जाना आदि बातें ऐसी हैं, जिन्होंने कृष्ण को संपूर्ण ब्रज का जीवनाधार बना दिया। सूर ने कृष्ण के इसी मधुर रूप का अंकन बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंग से किया है।

सूर रूप अर्थात् सौंदर्य के कवि हैं। उनके कृष्ण की बाँकी छवि माता-पिता को ही विमोहित नहीं करती प्रत्युत् राघा एवं गोपियों पर तो उसने ठगौरी-सी लगा दी है। कृष्ण के मोर-मुकुट, पीत-पट एवं हरे बाँस की बाँसुरी ने गोपियों को मंत्र-मुग्ध सा कर लिया है। उधर राधा को श्री-शोभा पर कृष्ण तन-मन न्यौछावर किये हुए हैं। राधा के सौंदर्य पर उन्मत्त बने कृष्ण कभी तो उसके साथ खेलने की बात करते हैं, कभी उसे वन-विहार के लिए उकसाते हैं और कभी उसे यमुना पुलिन–पर रास के लिए आमंत्रित करते हैं। सूर ने रास की पृष्ठ-भूमि में चाँदनी रात, मृग वृक्षों, गोपियों की सज्जा, संगीत की मधुर स्वर-लहरी एवं नृत्य की बंधी गति का जिस तल्लीनता से वर्णन किया है, वह कोई सौंदर्य-प्रेमी कवि ही कर सकता था।

वियोग–शृंगार– यों तो सूरदास के संयोग के चित्र अत्यंत पूर्ण हैं, परंतु विरह की जो तीव्र अभिव्यंजना उनके द्वारा हुई है, उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता है। गोपियों के पास जीवित रहने के लिए विरह के अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन नहीं है। तभी तो विरह के दिनों में भी वे कृष्ण से प्रेम करती हैं। कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय राधा विरह की तीव्रतर घड़ियों में कभी कृष्ण बन जाती है और कभी राधा। विरहाग्नि में जलते हुए उसकी अवस्था ठीक उसी कीट-सी है जो लकड़ी के दोनों छोरों पर आग लगने से बीच में ही बिलबिलाता रह जाता है। संयोग के दिनों में जो वस्तुएँ सुख पहुँचाती हैं, वियोग के दिनों में वे ही काटने को दौड़ती हैं, तभी तो हरी-हरी कुँजें आग की लपटें बन जाती हैं, काली रात का चाँदनी से भर जाना उन्हें सर्पिणी के डँसकर उलट जाने के समान लगता है। गायें भी उन्हीं की तरह व्यग्र हैं और कृष्ण का नाम लेने पर रंभाने लगती हैं। 'भ्रमगीत' प्रसंग में सूर ने गोपियों के मुख से सगुण का मंडन और उद्‌भव के द्वारा निर्गुण का खंडन कराया है। भक्ति के समक्ष उन्हें योग अटपटा-सा लगता है। उनकी यही अभिलाषा है कि उन्हें योग न सिखाकर केवल प्रिय-मिलन की रीति बतलायी जाए।

सूर की भाषा बिल्कुल बोलचाल की ब्रजभाषा नहीं है। सूर ने उसे साहित्यिक रूप देने की चेष्टा की है। ब्रजभाषा की साहित्यिक परंपरा को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वालों में अष्टछाप के कवि सूर का स्थान सर्वोपरि है।

(2) कुंभनदास

महाप्रभु बल्लभाचार्य ने सबसे पहले कुंभनदास को दीक्षित किया था। कुंभनदास गोवर्धन पर्वत के पास ठेठ किसान परिवार में सन् 1468 ई. में जन्मे थे। वह स्वाभिमान की जीवंत मूर्ति थे। 'संतन कहा सीकरी सों काम' जैसे प्रसिद्‌ध पद के रचयिता कुंभनदास को श्रीकृष्ण की लीला का रूप अत्यंत प्रिय था। उनके पदों में श्री कृष्ण की चित्तचोर चितवन का बार-बार उल्लेख हुआ है। अनुमान है कि उनका

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

परलोकवास 1582 ई. में हुआ था। उनके द्वारा रचित किसी स्वतंत्र ग्रंथ का उल्लेख नहीं मिलता। विभिन्न संग्रहों में उनके पद संकलित हैं।

(3) परमानंददास

अष्टछाप के प्रसिद्ध संगीतज्ञ और कवि परमानंददास का जन्म 1493 ई. में हुआ था और उनका परलोकवास 1583 ई. में माना जाता है।

महाप्रभु बल्लभाचार्य से दीक्षा प्राप्त करने के पहले ही वह संगीत, कीर्तन और काव्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो चुके थे। स्वामी परमानंददास पहले विरह और वैराग्य के पद गाया करते थे। महाप्रभु बल्लभाचार्य की दीक्षा प्राप्त करने के बाद कृष्ण के बाल-रूप से उन्होंने आत्मीयता स्थापित की और फिर बालकृष्ण की सम्मोहक लीलाओं का ऐसा अनुप वर्णन किया है कि सूरदास के बाद वात्सल्य की दृष्टि से दूसरा स्थान उन्हीं का माना जाता है। 'परमानंदसागर' में इनके पद संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कई रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है।

(4) कृष्णदास

इनका जन्म सन् 1495 ई. में और देहावसान सन् 1575 ई. माना जाता है। ये शूद्र थे, पर इनकी कार्यकुशलता से प्रभावित होकर बल्लभाचार्य ने इन्हें श्रीनाथ जी के मन्दिर का भेटिया बनाया। इनके त्याग और कर्त्तव्य की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कविता में ये सूरदास से प्रतियोगिता करते थे। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। शताधिक फुटकर पद ही इनके नाम से मिलते हैं।

(5) गोविंदस्वामी

गोविंदस्वामी का जन्म सन् 1504 ई. में हुआ था। ये गोस्वामी विट्ठलनथ के शिष्य थे। कहा जाता है कि गोस्वामी जी के देहान्त का समाचार सनुकर ये गोवर्धन की कंदरा में गये थे और उसी कंदरा में इन्होंने जीवनलीला समाप्त कर दी। गोस्वामी विट्ठलनाथ के संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही ये संगीत, कीर्तन और काव्य के अधिकारी बन गये थे। स्वयं पदों की रचना करते थे और गाया करते थे। किंवदंती है कि इतिहास-प्रसिद्ध गायक तानसेन इनसे संगीत की शिक्षा लेने आया करता था। गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा प्रापत करने के बाद श्री कृष्ण की भक्ति इन्होंने सख्य भाव से की। भजन-कीर्तन के लिए जो पद समय-समय पर इन्होंने रचे, वे 'गोविंदस्वामी के पद' नाम से संकलित हैं। इनके पदों में साहित्यिक सौंदर्य की अपेक्षा संगीत-माधुर्य की प्रधानता है।

(6) छीतस्वामी

इनका जन्म सन् 1510 ई. में हुआ था। कहते हैं इन्होंने भी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के मृत्यु का समाचार सुनकर प्राण-विसर्जन कर दिया।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अपनी युवावस्था में ये कपटी और लंपट स्वभाव के थे, पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के संपर्क में आने के बाद इनका जीवन ही बदल गया। ये भी संगीत के मर्मज्ञ और प्रसिद्ध गायक थे। इनके लगभग 200 पद 'पदावती' नाम से मिलते हैं।

(7) चतुर्भुजदास

इनका जन्म 1527 ई. में और देहावसान 1585 ई. में हुआ था। गृहस्थ-जीवन बिताते हुए भी ये श्रीनाथ जी के सेवा में लगे रहते थे। भक्ति और कविता इन्हें उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। इनके स्फुट पदों को 'चतुर्भुज-कीर्तन-संग्रह', 'कीर्त्तनावली', 'दानलीला' आदि शीर्षकों से प्रकाशित किया गया है।

(8) नंददास

इनका जन्म सन् 1533 ई. में माना जाता है। कहते हैं 53 वर्ष की अवस्था में इनका देहांत हो गया था। ये ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। एक किंवदंती के अनुसार नंददास अकबर की बांदी रूपमंजरी पर रीझ गये थे।

अष्टछाप के कवियों में प्रखरता, रसिकता और कवित्व की दृष्टि से सूरदास के बाद इन्हीं का स्थान माना जाता है। इनके विषय में प्रसिद्ध है– "और कवि गढ़िया नंददास जड़ियाँ।" कहते हैं कि नंददास महाकवि तुलसीदास के भाई थे। तुलसीदास ने इन्हें राम-भक्त बनाने का प्रयास किया था, "पर विफल रहे। नंददास-कृत 'रासपंचाध्यायी' और 'भंवरगीत' सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं। 'रासपंचाध्यायी' में कृष्ण की रास-लीला का वर्णन मनोहर छंदों और ललित भाषा में किया गया है। भाषा के लालित्य और वर्णन-कौशल के कारण कुछ आलोचक इस कृति को जयदेव-कृत 'गीतगोविंद' के समकक्ष मानते हैं। 'भंवरगीत' को उद्धव-गोपिका-संवाद के कारण स्वतंत्र खंडकाव्य के रूप में माना गया है। सूरदास के भ्रमर गीत की तुलना में इस कृति का महत्त्व कम है। आलोचकों के अनुसार नंददास के भंवरगीत में बुद्धिगमय वार्तालाप और तर्कपद्धति अवश्य है, पर भाव की तत्लीनता नहीं मिलती है। नंददास की गोपियाँ उद्भव को न्यायदर्शन के तर्कों से परास्त करना चाहती हैं।

नंददास की अन्य कृतियों में 'सिद्धांतपंचाध्यायी', 'स्यामसगाई' और 'रसमंजरी' प्रमुख हैं।

अष्टछाप के अतिरिक्त कृष्ण-भक्त कवि

अष्टछाप के अतिरिक्त काव्य के दो संप्रदायों के कवि उल्लेखनीय हैं। एक– राधावल्लभी संप्रदाय, दूसरा– सखी सम्प्रदाय। राधावल्लभी संप्रदाय की स्थापना का श्रेय गुसांई हितहरिवंश जी को दिया जाता है। इसे हरिवंशी संप्रदाय भी कहते हैं। इस संप्रदाय के अनुयायियों में हरिराम व्यास और ध्रुवदास प्रमुख माने जाते हैं।

इस संप्रदाय में राधा को सर्वोपरि माना गया है, कृष्ण उसके बाद आते हैं। इस संप्रदाय के रचनाकारों के वर्ण्यविनय कुंजलीला और सुखद विलास हैं। हितहरिवंश जी की दृष्टि में वियोग अमान्य

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

है। उन्होंने सदैव संयोग और माधुरी के ध्यान तथा गायन पर बल दिया गया है। हितहरिवंश का जन्म 1502 ई. में और निधन 1555 ई. में हुआ।

सखी-संप्रदाय की स्थापना स्वामी हरिदास ने की थी। साकार कृष्ण की सखी-भाव से उपासना करना ही इस संप्रदाय की साधना का लक्ष्य था। स्वामी हरिदास के प्रमुख शिष्य ये थे– विट्ठल विपुल, विहारिनदेव, सरसदेव, नरहरिदेव, रसिकदेव, ललितकिशोरी, ललितमोहनी, चतुरदास, ठाकुरदास, राधिकादास, सखीशरण राधाप्रसाद और भगवान दास।

स्वामी हरिदास की वाणी से प्रेम के उदात्त रूप की झाँकी मिलती है। उनकी पदावली 'केलिमा' के नाम से प्रसिद्ध है।

मुस्लिम कृष्णभक्त कवि रसखान को कौन नहीं जानता? रसखान का जनम 1548 ई. और देहांत 1628 ई. में माना जाता है। कहा जाता है कि इन्होंने भी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली थी और इन्हें उनके 252 मुख्य शिष्यों में स्थान प्राप्त हुआ था। उनकी दो रचनाएँ आज भी उपलब्ध हैं– 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान'। मुसलमान होते हुए भी कृष्ण-भक्ति में इनकी तल्लीनता और भावविभोरता विशेष द्रष्टव्य हैं। ऐसे ही विजातीय भक्तों को लक्ष्य कर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा था–

'इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिंदू न वारिये।'

कृष्ण-भक्ति शाखा का विकास

संप्रदायों में दीक्षित कवियों के अतिरिक्त कृष्ण-भक्ति शाखा में उपर्युक्त प्रेमभाव के भी बहुत से उत्कृष्ट कवि हुए हैं। मीरा, अब्दुल रहीम खानखाना, नरोत्तमदास आदि ऐसे ही कवि हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'कृष्णगीतावली' के द्वारा कृष्ण-भक्ति के विकास में योग दिया है। रीतिकाल में भी भारतेंदु, रत्नाकर, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त तथा दिनकर आदि के नाम कृष्ण-कथाओं के लेखकों में उल्लेखनीय हैं। श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' प्रबंधकाव्यों की परंपरा का उल्लेखनीय ग्रंथ है।

2.6.2 कृष्ण-भक्ति की शाखा की प्रमुख विशेषताएँ

(1) कृष्ण-लीला का वर्णन– कृष्ण-भक्ति शाखा के सभी कवियों के आराध्य श्री कृष्ण की कथा महाभारत में आई है, पर वहाँ उनके देवत्व की इतनी प्रतिष्ठा नहीं हो पाई, जितनी भागवत पुराण में मिलती है। भागवत पुराण कृष्ण-भक्ति का आकर ग्रंथ हैं। हिंदी के कवियों ने भागवत पुराण के आधार पर ही श्री कृष्ण की लीलाओं का गान किया है। इस संबंध में सूरदास ने स्वयं भी कहा है–

श्रीमुख चाहि स्लोक दये ब्रह्मा कौं, समुझाइ।
ब्रह्मा नारद सौं कहे, नारद व्यास सुनई।।
व्यास कहे सुखदेव सौं, द्वादस स्कंध वनाइ।
सूरदास सोई कहे, पद भाषा कहि गाइ।।

© DDCE COL SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

भागवत के दशम् स्कंध में श्री कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं का वर्णन है। सूरदास ने भी सूरसागर के दशम् स्कंध में श्री कृष्ण की लालाओं का वर्णन किया है। अन्य कृष्ण-भक्त कवियों ने भागवत के साथ-साथ प्रायः सूरदास से प्रभावित होकर कृष्ण-लीलाओं को गाया है।

(2) कृष्ण-काव्य में मौलिकता– भागवत का आधार लेकर वर्णित लीलाओं में कृष्ण-भक्त कवियों की मौलिकता सर्वत्र देखने को मिलती है। भागवत के छोटे-छोटे प्रसंगों को सूरदास ने विस्तार के साथ काव्यमयी भाषा में व्यक्त किया है। राधा की कल्पना तो एकदम नवीन है। राधा और कृष्ण के प्रेम में अनेक प्रसंगों की अवतारणा और कहने की प्रणाली सर्वथा नूतन है। उसके लिए भागवत के भ्रमर गीत प्रसंग और सूरसागर तथा नंददास के भ्रमरगीत व भंवरगीत को भली प्रकार प्रमाण के रूप में रख सकते हैं। (राधा को स्वकीया के रूप में आगे चलकर चाचा हित वृंदावनदास ने अपने 'लाड़सागर' ग्रंथ में जैसे चित्रित किया है, वैसा अंयत्र दुर्लभ है।)

(3) पुष्टिमार्ग का अनुसरण– कृष्ण-भक्त कवियों की भक्ति का दार्शनिक सिद्धांत शुद्धाद्वैतवाद है और उनका व्यवहार पक्ष पुष्टिमार्ग है। शुद्धाद्वैतवाद के अंतर्गत जीवन और ब्रह्म मूलतः एक होते हुए भी माया-भेद से अलग-अलग है। जीव को भक्ति द्वारा आनंद तभी मिल सकता है जबकि वह ब्रह्मा से अलग हो। उसके लिए पुष्टिमार्ग में आठों याम की सेवा का विधान किया गया है। उसमें कृष्ण को जगाने के पद हैं तो खिलाने के और सुलाने के भी।

(4) कांत, वात्सल्य और सख्य भाव की प्रधानता– कांत, वात्सल्य, दास्य, सख्य और शांत– ये भक्ति के पाँच विशिष्ट भाव माने जाते हैं, इनमें से कांत, वात्सल्य और सख्य की भक्ति की प्रधानता आलोच्य परंपरा के कवियों की रचनाओं में मिलती है। कहीं तो श्री कृष्ण और गोपियों की श्रृंगार-चेष्टाओं का वर्णन है तो कहीं कृष्ण के वात्सल्य का और कहीं उनकी श्रीदामा आदि सखाओं के साथ बाल-क्रीड़ाओं का।

(5) बाल-लीला-वर्णन की प्रधानता– इस शाखा के कवियों ने बाल-कृष्ण के जीवन को अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया है। वात्सल्य में श्री कृष्ण गोकुल और वृंदावन आदि स्थलों पर रहे, जहाँ प्रकृति की छटा बिखरी हुई थी। अतः कृष्ण-काव्य में स्वाभाविक रूप से प्रकृति-वर्णन आ गया है। वह कहीं उद्यीपन रूप में है, कहीं अलंकार के रूप में और कहीं उपमान के रूप में–

> 'देखि री हरि के चंचल नैन।
> खंजन मीन मृगज चपलाई नहि पटतर इक सैन।।'

आदि पद में प्रकृति का उपमान के रूप में सुंदर प्रयोग है।

(6) वात्सल्य और श्रृंगार रसों की प्रधानता– रस की दृष्टि से यहाँ श्रृंगार और वात्सल्य प्रधान रस है। सूरदास ने तो दोनों रसों की सांगोपांग अभिव्यंजना की है। इसी से उन्हें वात्सल्य और श्रृंगार रस का सम्राट कहा जाता है। इसके अतिरिक्त वीर, भयानक, अद्भुत और हास्य रस भी यत्र-तत्र मिल जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(7) मुक्तक काव्य– कृष्ण-भक्ति साहित्य मुख्य रूप से मुक्तक गेय पदों में लिखा गया है। यद्यपि कतिपय प्रबंध काव्य भी लिखे गये हैं। जैसे सबलसिंह चौहान कृत 'महाभारत भाषा' (1661-1724) और छत्रसिंह कायस्थ कृत 'विजय मुक्तावली' (1799 ई.), परन्तु कृष्ण-भक्ति की दृष्टि से इनका हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग कहीं-कहीं हुआ है।

(8) सीमित छंदों का प्रयोग– छंद की दृष्टि से अधिकतर पदों का ही प्रयोग हुआ है, पर अनेक स्थलों पर चौपाई, सार, सरस आदि छन्द भी मिल जाते हैं, इसी प्रकार दोहा, सवैया, छप्पय और हरिगीतिका आदि छन्दों का प्रयोग कहीं-कहीं हुआ है।

(9) ब्रजभाषा काव्य-भाषा– इस शाखा के कवियों के प्रमुख रूप से ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। कृष्ण-जन्मभूमि की भाषा में कृष्ण लीला-वर्णन स्वाभाविक ही है। इन कवियों ने ललित और साहित्यिक ब्रजभाषा में जो काव्य रचा है, वह आज भी भाव और भाषा साहित्य के कारण लोकप्रिय है।

(10) अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग– इसमें अनुप्रास, यमक और श्लेष आदि 'शब्दालंकारों' तथा उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, विभावना, अतिशयोक्ति आदि अनेक अर्थालंकारों को देखा जा सकता है। 'साहित्य लहरी' में सूरदास ने नायिका भेद और शब्दों के चमत्कृत कर देने वाला प्रयोग भी किया है।

2.6.3 बोध प्रश्न

1. अष्टछाप के कवियों के प्रमुख नाम बताइए।
2. सूरदास की प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

2.7 सारांश

भक्ति का उद्‌भव दक्षिण भारत में हुआ किंतु उसका पूर्ण विकास उत्तर भारत में हुआ। भक्ति आंदोलन द्वारा समाज में चेतना फैलाने का सफल प्रयोग हुआ। ईश्वर के निराकार और साकार रूप की पूजा का प्रचलन बहुत पहले से था। भक्त कवियों में भी किसी ने निर्गुण ईश्वर की आराधना की तो किसी ने सगुण रूप की। कोई राम का भक्त था तो कोई कृष्ण का और कोई सूफी संप्रदाय से जुड़ा था। इस प्रकार ईश्वर की कई रूपों में अराधना हुई। कबीर, नानक आदि संत कवियों ने ईश्वर के निराकार रूप की उपासना की। सूफियों ने ईश्वर को प्रेम के रूप में देखा। सगुणोपासक भक्त कवियों ने विष्णु के अवतारी रूपों राम और कृष्ण की उपासना की। कृष्ण उपासक कवियों ने कृष्ण का लीला गायन किया तो राम उपासक कवियों ने राम के लोकमंगलकारी रूप का वर्णन किया।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. भक्ति काल का उदय किन परिस्थितियों का प्रतिफलन है?
2. रामकाव्य की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. कृष्ण काव्य-धारा की प्रवृत्तियों को बताइए।
4. राम एवं कृष्ण भक्ति काव्य में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. प्रेममार्गी शाखा की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
6. ज्ञानमार्गी शाखा के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।

2.9 संदर्भ-ग्रंथ

1. '*हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*' - विश्वनाथ त्रिपाठी
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - सं.-डॉ. नगेंद्र
4. '*हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*' - बच्चन सिंह
5. '*हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*' - रामस्वरूप चतुर्वेदी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3. रीतिकाल : सामान्य परिचय

लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

3.0 अधिगम का उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 रीतिकाल की परिस्थितियाँ
    3.2.1 ऐतिहासिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ
    3.2.2 सामाजिक परिस्थितियाँ
    3.2.3 धार्मिक परिस्थितियाँ
    3.2.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ
3.3 रीतिकाल : काल निर्धारण
3.4 रीतिकाल : नामकरण
3.5 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख धाराएँ एवं प्रवृत्तियाँ
3.6 रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
3.7 रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
3.8 रीतिकाल के प्रमुख कवि और उनके काव्य
3.9 सारांश
3.10 अभ्यास प्रश्न
3.11 संदर्भ-ग्रंथ

3.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ के माध्यम से आप निम्नलिखित बिंदुओं को जान सकेंगे–

- रीतिकाल की परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल के कवियों के आश्रयदाताओं को जान सकेंगे।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- रीतिकाल के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्य की विशेषताओं को जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1700 वि. से 1900 वि. तक के कालखंड को रीतिकाल की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार इस काल में 'रीति तत्व' की प्रधानता को ध्यान में रखते हुए इसका नामकरण रीतिकाल किया गया है। इस काल के अधिकांश कवियों ने आचार्यत्व का निर्वाह करते हुए लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रीति ग्रंथों की रचना की जिनमें अलंकार, रस, नायिका भेद आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। अपनी काव्य प्रतिभा दिखाने के लिए इन कवियों के लिए लक्षण ग्रंथ लिखना अनिवार्य था। काव्यांग चर्चा में ये गौरव का अनुभव करते थे तथा इस युग में इस बात पर विवाद होते थे कि इस पंक्ति में कौन-सा अलंकार, शब्द-शक्ति, रस या ध्वनि है। काव्यांगों के लक्षण एवं स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत करने वाले रीति ग्रंथों की प्रचुरता के कारण ही इस काल में रीति तत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है और इसी कारण इस काल का नाम रीतिकाल रखा गया है।

3.2 रीतिकाल की परिस्थितियाँ

प्रत्येक युग के साहित्य पर पूर्ववर्ती तथा समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। रीतिकालीन साहित्य भी अनेक ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों की देन है। अब हम उन परिस्थितियों की चर्चा करेंगे, जिन्होंने रीतिकालीन कवियों को प्रेरित-प्रभावित किया।

3.2.1 ऐतिहासिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ

रीतिकाल का प्रारंभिक छोर जहाँगीर के शासन काल (सन् 1605-27) को मानना चाहिए और अन्तिम छोर बहादुर शाह द्वितीय (जफ़र) के शासन काल (सन् 1837-58) को। उत्तर भारत के इतिहास की इन ढाई शताब्दियों में मुगल साम्राज्य की अवनति प्रारंभ हुई। धीरे-धीरे इतना बड़ा साम्राज्य मिटता चला गया और अंत में सन् 1857 के विद्रोह के साथ उनका अंत हो गया। इन ढाई शताब्दियों में एक ओर उत्तरी भारत जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब और उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों ने राज्य किया और दूसरी ओर रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में पूर्वी भारत पर एक के बाद एक सत्रह अंग्रेज शासकों ने।

अकबर के देहावसान के बाद सन् 1605 में जब जहाँगीर के हाथों में शासन-सत्ता आयी, तब वह शासन के बजाय अपनी सुंदरी पत्नी नूरजहाँ और शराब में अधिक रुचि लेने लगा। धीरे-धीरे शासन के वास्तविक अधिकार जहाँगीर के हाथों से निकलकर नूरजहाँ के पास पहुँच गये। नूरजहाँ ने उसे विलासित में डुबाये रखा और अपने परिवार-जनों की सहायता से राज्य चलाया। जहाँगीर के बाद शाहजहाँ और अधिक विलासी शासक के रूप में सामने आया। युद्धों से मुक्ति मिल जाने और साम्राज्य

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

में शांति होने के कारण शाहजहाँ ने वैभवपूर्ण जीवन बिताया। भवन, नहर और बाग बनवाने में उनकी कलाप्रियता प्रकट हुई। औरंगजेब को छोड़कर अन्य सभी मुगलवंशी सम्राट निश्चिंत होकर विलासिता में डूबे रहे।

आपसी ईर्ष्या-द्वेष, विलासिता और लापरवाही से भरे ऐसे वातावरण में देशी राजा और सामन्त केन्द्रीय शासन की छत्रछाया से चैन की सांस ले रहे थे। युद्ध-विग्रह आदि केंद्रीय शासन के सिर दर्द थे, अधीनस्थ राजाओं, सामंतों और शासनाधिकारियों का सुख-सामग्री जुटाने तथा 'काव्य-शास्त्र विनोद' के बहाने मनोरंजन करने के अतिरिक्त कोई काम शेष नहीं रह गया था। फल यह हुआ कि अपने दरबारों में भी इन लोगों ने उन्हीं कलावंतों को आश्रय दिया, जो इनका मनोरंजन कर सकें। यही कारण था कि उक्त भीषण घटनाओं के घटित होते हुए भी हिंदी के अधिकार प्रतिनिधि कवि-चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति, श्रीपति, भिखारीदास, पदमाकर, प्रतापसिंह आदि रीति-संबंधी श्रृंगारपरक उदाहरणों का ही निर्माण करते रहे। उक्त घटनाओं से नितांत अप्रभावित रहकर वे अपने आश्रयदाताओं की विलासिता की वृद्धि में ही सहायक सिद्ध हुए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीतिक उथल-पुथल के युग में श्रृंगार की रचनाओं के लिए अवकाश बहुत कम था, किंतु फिर भी इसी युग में ऐसी काव्य-रचना के पुष्ट कारण भी विद्यमान हैं। रीतिकालीन साहित्य के अधिकतर भाग का निर्माण भारतीय रियासतों—भरतपुर, जयपुर, मेवाड़, गढ़वाल, लखनऊ, प्रतापगढ़, चरखारी, पन्ना, पूंदी, नागपुर— आदि के शासकों के प्रासादों की चारदीवारी में हुआ है। ये शासक उपयुक्त भयावह राजनीतिक वातावरणों में इसी आशंका के कारण जान-बूझकर नितांत उदासीन तथा निरपेक्ष बने रहते थे कि कहीं उनकी तथा कथित 'शांति' में बाधा न पड़े। यह शांति वास्तविक शांति न थी—संघर्ष और कर्म से पलायन के फलस्वरूप एक ओर दुबककर बैठ जाने की हताश भावना थी। महलों में बंद इन शासकों के समय-यापन के लिए मनोरंजन की सामग्री जुटाना परम आवश्यक था। गवैयों, भांडों, चित्रकारों आदि के साथ—इन सामंतों के दरबारों में कवियों को भी प्रश्रय मिला। इन शासकों के लिए अन्य मनोरंजनों के साथ-साथ कविता भी मनोरंजन का साधन थी।

यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि दरबारों में आश्रय पाने वाले कलावंत आपस में एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते थे। चित्रकार चित्र के द्वारा जितनी बड़ी बात कहता था, कवि छोटे से छोटे पद्य के द्वारा उससे भी ऊँची बात कहना चाहता था और कहता था। कम शब्दों में अधिक गूढ़ और चमत्कारपूर्ण कथन की इस स्पद्र्धा के कारण कविता रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और नायक-नायिका भेद के परिभाषित शब्दों में सिमटती चली गयी। चमत्कारप्रियता के इस वातावरण में कविता श्रृंगार और काव्यशास्त्र तक ही सीमित रही और दरबारों ने इस काम में भरपूर योग दिया।

निस्संदेह इस युग में भी महाराज राजसिंह, शिवाजी, छत्रसाल, गुरुतेग बहादुर और गोविंदसिंह आदि राजपूतों, मराठों, बुंदेलों और गुरुओं ने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध किया, पर ऐसे आत्माभिमानी वीरों की संख्या बहुत कम थी। वस्तुतः रियासतों के सभी राजा राजपूत युग से ही विलासी बन गए थे। इधर अकबर की नीति ने इस रंग को और अधिक गहरा बना दिया था। आगे चलकर मुगल सम्राटों की

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

विलासिता का भी इन पर और अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उनकी विलासिता से ये इतने प्रभावित थे कि उनके गुणों की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। इसके समक्ष शाहजहाँ की कलाप्रियता, औरंगजेब के अमीरों की विलासिता और उनके उत्तरवर्ती मुहम्मदशाह रंगीले जैसे शासकों की अकर्मण्यता का ही आदर्श था। उन्हीं के उदाहरण पर शेरो-शायरी की महफिलें गरम रखने के उद्देश्य से इनके लिए भी यह आवश्यक हो गया कि शृंगार रस के मुक्तक सुनाने वालों की कविता-धारा में निमज्जित हो रहे थे। आगे चलकर लार्ड वेलेजली की सहायता रीति (सब्सिडियरी सिस्टम) के दाव ने इन्हें और भी अकर्मण्य बना दिया। इस 'रीति' द्वारा भीतरी विद्रोहों और बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा मिल जाने के कारण उनकी विलासिता और भी बढ़ गई।

अपने आश्रयदाताओं की विलासिता को पुष्ट करने वाले रीतिकवियों तथा अतिरिक्त कवियों का एक दूसरा वर्ग था जो रीति की छाप लेकर रीति मुक्त रहा। उनके काव्य में एक ओर आत्मानुभूत प्रणय का मनोहारी राग मिलता है तो दूसरी ओर भक्ति की पुण्यसलिता भागीरथी भी पाठक के लिए अमर सन्देश लिए हुए हैं। इन कवियों में घनानंद प्रमुख हैं। इस वर्ग के कवियों में आश्रयदाताओं से धन-दौलत पाने की ललक नहीं रही। वे धीरे-धीरे शृंगार से भक्ति की ओर मुड़ गए। उनका काव्य किसी भी भक्त कवि के भावोद्गार से टक्कर ले सकता है।

निस्संदेह उस युग में भूषण जैसा भी कवि हुआ, जिसने अपने आश्रयदाता शिवजी को अपने वीर–काव्य द्वारा प्रोत्साहित किया, पर उनका कार्यक्षेत्र तत्कालीन हिंदी क्षेत्र से दूर दक्षिण में था। अतः उसकी वीर कविता उत्तरी भारत के कवियों को प्रभावित न कर सकी। केवल लाल, जोधराज, सूगन, चंद्रशेखर, जैसे इने-गिने कवियों ने ही उस युग में वीर रस की कविता की है। उस युग का अधिकांश वीरकाव्य आदिकालीन काव्य की तरह प्रशस्ति काव्य है। उनके काव्याधार राष्ट्रीय गौरव नहीं, स्वार्थी सामंत हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि–रीतिकाल में अधिकांशतः शृंगार रस-संबंधी रचनाओं का प्रमुख कारण उत्तर भारत के प्रायः सभी रियासती राजाओं की विलासप्रियता है। ये लोग भारत की वास्तविकता तथा राजनीतिक उथल-पुथल से जान-बूझकर नितांत अलग-थलग रहते हुए विनोद, परिहास और विलास का जीवन व्यतीत कर रहे थे।

3.2.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

रीतिकाल समाज दो वर्गों में बंटा हुआ था– (1) शासक और (2) शासित। बादशाह से लेकर उनके आश्रित कर्मचारियों तक का एक वर्ग समाज का विशेष अधिकार-प्राप्त वर्ग था। इसके पास सुख-सुविधा का प्रत्येक सामान मौजूद था। कविगण इन्हीं की कृपा पर जीवित थे। शासित अर्थात् जनता के सुख-दुःख को समझने और उसके कष्ट दूर करने से तो जैसे समाज के इन उच्चवर्गीय लोगों को कोई प्रयोजन ही न था और न इनके आश्रय में पलने वाले कवियों को। जनता शासनतंत्र के तले कुचली जा रही थी। भूख और बीमारी से तड़प-तड़प कर मर रही थी, शासकों की परस्पर स्वार्थ-लिप्सा के बीच पिस रही थी– इस ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा था। न तो शासकों का और न उनके दरबार से

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

वृत्ति पाने वालों का। कवि राजदरबारों से पुरस्कार और दान के लोभ में वही लिखते-कहते थे, जो उनके आश्रयदाता चाहते थे और आश्रयदाताओं की चाह 'राधा कन्हाई के सुमिरन के बहाने' से उनकी श्रृंगारपरक मुद्राओं, अवस्थाओं और क्रियाओं का सरस वर्णन करवाने की थी।

जनता केंद्र और रियासतों के दुहरे जन-विरोधी शासन-तंत्र के नीचे पिस रही थी। राज्य की नीतियों में भाग लेने का उसे अवसर न था, गरीब जनता पर नये-नये कर लगाए जा रहे थे और न्याय के लिए कोई दरवाजा खुला न था, किंतु रीतिकाल के ये खरीदे हुए रीतिबद्ध कवि जनता के कष्टों की उपेक्षा करते हुए अपने-अपने अन्नदाताओं का मनोरंजन करने में जुटे रहे। विश्व-साहित्य में कवियों की उत्तरदायित्वहीनता का ऐसा उदाहरण ढूंढ़ निकालना कठिन होगा।

3.2.3 धार्मिक परिस्थितियाँ

भक्तिकाल में सगुण भक्ति का विशेष प्रचार हुआ। राम लोक रक्षक के रूप में पूजे गए और कृष्ण का लोकरंजक रूप सर्वाधिक प्रिय रहा। लोकरंजकता के कारण कृष्ण-लीला भक्तों का आकर्षण-केंद्र बनी। राधा-कृष्ण तथ गोपियों के राग, विहार, क्रीड़ाएँ आदि कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य में आध्यात्मिक धरातल पर प्रकट हुए, लेकिन रीतिकाल तक पहुँचते-पहुँचते राधा-कृष्ण और गोपियों ने अपना आध्यात्मिक अर्थ खो दिया और वे लौकिक अर्थों में नायक-नायिका, सखी, दूती आदि बन गए। ऐसा क्यों हुआ? इसका एक कारण है कृष्ण-भक्ति के प्रचारक महाप्रभु बल्लभाचार्य द्वारा कृष्ण-भक्ति के लिए पुष्टिमार्ग का प्रवर्त्तन। पुष्टमार्ग प्रेममार्ग ही है दाम्पत्यभाव का प्रवेश हो जाने के कारण कृष्ण-भक्ति सरस हो गयी थी। अष्टछाप के कवियों ने राधा और कृष्ण के प्रेम को कांत-रीति के रूप में प्रस्तुत किया। रीतिकालीन विलासितापूर्ण वातावरण ने ऐसे सरस प्रसंगों को अपनाने में कोई हिचक नहीं दिखलाई। रीतिकाव्य के 'कृष्ण' विभिन्न रियासतों के स्वामी खुद ही हैं और कृष्ण-राधा के प्रेम में नारी के प्रति इन सामन्तों की रुग्ण लालसा ही प्रकट हुई है।

3.2.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ

रीतिकाल के काव्यशास्त्र तथा श्रृंगारपूर्ण काव्य का विपुल सर्जन आकस्मिक रूप से नहीं हुआ। उपर्युक्त परिस्थितियाँ रीतिकालीन काव्य को जन्म देने का कारण रहीं, लेकिन जिन तत्त्वों से यह काव्य निर्मित हुआ, उनकी परम्परा बहुत पुरानी है। संस्कृत में लिखित भरत का 'नाट्यशास्त्र' सर्वप्रथम उपलब्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ हैं। इसके बाद उनके मतवादों के आधार पर प्रचुर मात्रा में काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे गये। लेकिन रीतिकाल में सबसे अधिक अनुकरण भानुदत्त द्वारा संस्कृत में रचित काव्यशास्त्रीय ग्रंथों– 'रस-मंजरी' और 'रसतरंगिणी'– का किया गया। कहीं-कहीं 'साहित्यदर्पण', 'ध्वन्यालोक' और 'काव्यादर्श' आदि का प्रभाव भी देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त कामशास्त्रीय ग्रंथों का प्रभाव भी भरपूर मिलता है।

काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के अतिरिक्त संस्कृत और प्राकृत में श्रृंगाररस-पूर्ण मुक्तक काव्य लिखने की परंपरा भी चल रही थी। प्राकृत में 'गाहा सत्तसई' (गाथा सप्तशती) की रचना ने संस्कृत कवियों को

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

बड़ा प्रभावित किया। संस्कृत के 'अमरुकशतक' आदि इसी प्रभाव की देन है। इन मुक्तकाव्यों में प्रमुख रूप से श्रृंगार को आधार बनाया गया है और गौणरूप से भक्ति और नीति पर भी लिखा गया है। यही परम्परा हमें रीतिकाल में दिखाई पड़ती है।

रीतिकाल से पूर्व हिंदी में भी कुछ कृतियाँ मिलती हैं, जो रीतिकाल की शैली में रची गयी हैं। भक्तिकाल में उनकी रचना हुई थी। कृपाराम, ब्रह्म (बीरबल), गंग, बलभद्र, केशवदास, रहीम तथा मुबारक कालक्रम की दृष्टि से यद्यपि भक्तिकाल के अंतर्गत आते हैं। परंतु उनकी काव्य-पद्धति प्रायः रीति-प्रधान ही थी। सूर की 'साहित्य लहरी' और नंददासकृत 'रसमंजरी' रीति-परंपरा में ही लिखे गए काव्य हैं। रीतिकाल आचार्यों तथा कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभाव लेने में संकोच नहीं किया।

3.3 रीतिकाल : कालनिर्धारण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल की समय सीमा विक्रमी संवत् 1700 से 1900 (सन् 1643 से 1843 ई.) तक मानी है। बाद में प्रायः सभी विद्वानों ने यही अवधि स्वीकार की है। लेकिन कुछ विद्वान रीतिकाल का प्रारम्भ संवत् 1700 से भी पहले मानते हैं। 1598 वि. में रचित 'हिततरंगिणी' काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ है। सूरदास की 'साहित्य लहरी' में रीतितत्त्व हैं। किन्तु कुछ विद्वान रीतिकाल का यह पहला प्रौढ़ आचार्य और कवि केशवदास को मानते हैं और कुछ चिन्तामणि को। इन दोनों आचार्यों के रचनाकाल में लगभग 50 वर्षों का अन्तर है। चिन्तामणि का रचनाकाल संवत् 1700 (सन् 1643 ई.) के आस-पास था, जिसमें उन्होंने रस और रीतिविषयक लक्षण ग्रन्थों की रचना और अनुवाद किये, जबकि केशवदास उनके पहले ही 'रसिकप्रिया' (सन् 1591 ई.), 'कविप्रिया' (सन् 1691 ई.) और 'छन्दमाला' नामक काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना कर चुके थे। उनके बाद रीतिकाल की प्रवृत्ति के अनुकूल अनेक श्रृंगारिक रचनाएँ छिटपुट रूप में लिखी जाती रहीं और चिन्तामणि के बाद रीतिग्रन्थों का रचनाप्रवाह तेज हो गया। इस दृष्टि से रीतिकाल का प्रारम्भ केशवदास के रचना काल सं. 1646 (सन् 1591 ई.) से माना जाना चाहिए। प्रतापसिंह को रीतिकाल का अंतिम प्रौढ़ आचार्य और कवि माना जाता है, उनका रचनाकाल संवत् 1881 से 1900 (सन् 1824 से 1863 ई.) तक निश्चित किया गया है। इस प्रकार आधुनिकतम खोजों से रीतिकाल की तर्कसम्मत अवधि संवत् 1646 से 1900 (सन् 1589 से 1843 ई.) तक प्रमाणित होती है।

3.4 रीतिकाल : नामकरण

हिंदी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल का दूसरा चरण रीतिकाल के नाम से अभिहित किया गया है। 'रीति' कहते हैं प्रणाली को, परिपाटी को, ढंग को। इस समय के कवियों की काव्य-रचना करने की विशेष प्रणाली थी और वह यह थी कि पहले वे काव्य-रचना की रीति यानी लक्षण समझाते थे और उसके बाद उन लक्षणों का उदाहरण रचते थे। रीतिकाल के नामकरण को लेकर हिंदी साहित्य के इतिहासकारों में काफी मतभेद रहा है। इस कालखंड का नामकरण उस युग की केंद्रीय प्रवृत्ति के

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

आधार पर करने का प्रयास किया जाता है। रीतिकाल के नामकरण के संबंध में सबसे प्राचीन अभिमत डॉ. ग्रियर्सन का मिलता है। डॉ. ग्रियर्सन को हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों में अधिकारी विद्वान माना जाता है। उन्होंने सन् 1889 में 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' के नाम से हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा। यह एक बृहदाकार ग्रंथ है। इसके सातवें अध्याय में रीतिकाल को 'काव्य-कला' के नाम से अभिहित किया है। उन्होंने माना है कि सोलहवीं शताब्दी के अंत से लेकर पूरी सत्रहवीं शताब्दी तक का समय जो कि इतिहास में मुगल साम्राज्य के उत्थान का समय था, उसमें उल्लेखनीय काव्य-कला प्रस्तुत हुई है। इस संबंध में उनके यह शब्द हैं - "The end of sixteenth century and the whole of the seventeeth century, a period corresponding closely with the supremacy of Mogal empire, presents a remarkable array of poetic talent."

डॉ. ग्रियर्सन ने सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी की हिंदी रचनाओं की तुलना अंग्रेजी इतिहास के प्रसिद्ध 'आगस्टन-युग' से करके उसे गौरान्वित कर दिया है। हिंदी साहित्य के परवर्ती इतिहासकारों ने बहुत कुछ डॉ. ग्रियर्सन के मत से प्रभाव ग्रहण किया है।

रीतिकाल के नामकरण के संबंध में और भी विचार सामने आते हैं। मिश्रबंधुओं ने अपने 'मिश्रबंधु विनोद' नामक हिंदी साहित्य के इतिहास में इस काल को 'अलंकृत काल' नाम दिया है। उनका कहने का आशय यह था कि इस युग में कविता को अलंकृत करने की प्रवृत्ति थी, अतः इस काल को 'अलंकृत काल' नाम दिया जाना चाहिए। मिश्रबंधुओं का तर्क बहुत सशक्त नहीं माना गया। उन्होंने इस युग की कविताओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला की यह कविता अलंकृत है यानी अलंकारों के आग्रह से युक्त है। पर क्या केवल अलंकारों की ही अभिव्यक्ति इस काल की कविता में है। रसानुभूति की दृष्टि से इस काल की कविता का मूल्य किसी से कम नहीं है। ध्वनि और वक्रता भी उसमें पर्याप्त मात्रा में मिलती है। इसलिए केवल अलंकारों का आग्रह इंगित करना, इतना अधिक समीचीन नहीं है जिसके कारण कि इस युग का नामकरण उस आधार पर कर दिया जाए। दूसरी बात यह है कि इस काल से पहले या बाद में भी जहाँ अधिक अलंकृत कविताएँ सामने आती हैं तो उनका नामकरण भी क्या अलंकारों के आधार पर करने की सोच सकते हैं। इसलिए मिश्रबंधुओं ने जिस प्रवृत्ति का संकेत करके इस काल को 'अलंकृत काल' कहा है वह एकांगी और अपूर्ण लगती है।

डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने रीतिकाल का नाम 'कला-काल' माना है। वे कहते हैं- "'कला-काल' से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें हिंदी क्षेत्र में काव्य को कलापूर्ण किया जाए, अर्थात् उसमें काव्य के चमत्कृत एवं चातुर्यपूर्ण गुणों को ध्यान में रखकर रचनाएँ की गईं और साथ ही कला के नियमोपनियमों से संबंध रखने वाले रीति या लक्षण ग्रंथों की रचना हुई।" इस नाम के देने में रीतिकालीन काव्य के बाह्य पक्ष पर तो प्रकाश पड़ता है पर उसकी एक बड़ी विशेषता शृंगारिकता की उपेक्षा हो जाती है। रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' द्वारा दिया यह नाम प्रायः उसी तरह का है जैसे मिश्रबंधुओं ने दिया है। हिंदी में इसे भी स्वीकार नहीं किया गया।

डॉ. भागीरथ मिश्र ने हिंदी साहित्य के इस युग का नाम 'रीति-शृंगार' काल रखा है। वे मानते हैं कि शृंगार की प्रवृत्ति रीतिकाल की एक विशेषता है जिसे सभी स्वीकार करते हैं पर उसके साथ ही उस युग के साहित्य की चेतना है - 'पद्धति परकता' एक पैटर्न के काव्य की रचना करने की पद्धति इस काल में

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अधिक दिखलाई देती है। डॉ. भागीरथ मिश्र के इस नाम में यह आपत्ति है कि पद्धति परकता से अलग भी कुछ कवि रीतिकाल में थे। घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर की कविता को उस रीतिकालीन पद्धति से अलग का पाते हैं। अतः रीति-शृंगार नामकरण की बात भी विद्वानों को उसी प्रकार स्वीकार्य नहीं है जैसे 'कला-काल' की।

इस काल को पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'शृंगारकाल' के नाम से अभिहित किया है। उनकी मान्यता यह है कि इस युग की एक बड़ी प्रवृत्ति शृंगार की थी। इसलिए इस युग को 'शृंगार काल' के नाम से पुकारा जाना चाहिए। 'शृंगार काल' की मीमांसा करने पर भी यही सिद्ध होता है कि यह नाम भी उपयुक्त नहीं है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने यह देखकर इस काल का नाम 'शृंगार काल' दिया है क्योंकि इस काल की कविता में शृंगार की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। पर प्रश्न यह है कि शृंगार वर्णन की प्रवृत्ति इस कविता में धन की प्राप्ति के लिए आई। राजाओं को खुश करने के लिए शृंगार वर्णन हुआ। इस काल में कुछ ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने शृंगार को प्रमुखता नहीं दी। कुछ कवि तो ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने लक्षण-ग्रंथों की रचना करके भी शृंगार को कोई स्थान नहीं दिया है। इसलिए इस काल की शृंगारिकता के मूल में कवि की अपनी रुचि न होकर आश्रयदाता की रुचि थी। एक बात और है। इस काल में शृंगार के अतिरिक्त नीति, प्रकृति, वीर रस आदि की कविताओं की भी कमी नहीं है। सभी प्रकार की कविताओं की प्रवृत्ति को शृंगार की कैसे मानी जा सकती है। इसलिए इस काल का 'शृंगार काल' नाम इतना उपयुक्त नहीं है।

इस काल को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'उत्तर मध्यकाल' अथवा 'रीतिकाल' नाम दिया है, किन्तु 'रीतिकाल' नाम अधिक प्रचलित हो गया है। इस प्रसंग में 'रीति' शब्द का अर्थ है– विशेष प्रकार की पद रचना या परिपाटी। इस काल के अधिकतर कवियों ने जितनी रचनाएँ की हैं, उनमें से अधिकांश अलंकार, रस, नायक-नायिका-भेद, ध्वनि, गुण, दोष आदि के लक्षण और उदाहरण-स्वरूप ही प्रस्तुत हुई हैं अथवा काव्य शास्त्र की मर्यादा में बंधी हुई हैं। इन विविध विषयों पर लिखने वाले कवियों को 'कवि' न कहकर आचार्य कवि भी कह दिया जाता है। अलंकार, रस आदि काव्य-शास्त्र अथवा रीति-शास्त्र के ही अंग हैं। इस प्रकार 'रीति-काव्य' की प्रमुखता एवं विशिष्ट 'काव्य-रीति' का पालने करने के कारण शुक्ल जी ने इस काल को 'रीति काल' नाम दिया। इनके पूर्व मिश्रबन्धुओं ने इसे 'अलंकृत काल' का नाम दिया। पर इस नाम से यह प्रतीत होता है कि रीतिकाल में केवल उपमा आदि अलंकारों को ही दृष्टि में रखकर काव्य-रचना की गयी। उधर शुक्ल जी के बाद पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसका नाम 'शृंगार काल' रखा, किन्तु इससे यह अभिप्राय निकल सकता है कि इस काल में केवल शृंगार रस को ही लक्ष्य बनाकर काव्य-रचना की गयी किन्तु जैसा कि आप अभी ऊपर पढ़ आये हैं, इस काल में अलंकार और शृंगार के अतिरिक्त अन्य काव्यांगों को भी आधार बनाकर रचनाएँ हुई हैं, अतः शुक्ल जी द्वारा इस काल को दिया गया नाम 'रीतिकाल' ही अधिक समीचीन लगता है, क्योंकि उससे काव्यशास्त्रीय नियमों पर चलकर लिखने की विशेष प्रवृत्ति का बोध होता है। रीतिमुक्त कहे जाने वाले कवियों पर 'रीति' का प्रभाव कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप में बोध होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3.4.1 बोध प्रश्न

1. मिश्रबंधुओं ने रीतिकाल को किस नाम से अभिहित किया है?
2. डॉ. भागीरथ मिश्र ने रीतिकाल को किस नाम से बुलाया है?
3. डॉ. जार्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित हिंदी साहित्य के इतिहास का क्या नाम है?

3.5 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख धाराएँ एवं प्रवृत्तियाँ

संपूर्ण रीति साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। (1) रीतिशास्त्रीय काव्य, (2) रीतिबद्ध काव्य, (3) रीतिमुक्त काव्य। किंतु इस संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य' के इतिहास में लिखा गया है। "रीतिकालीन कविता के प्रसंग में विद्वानों ने तीन प्रकार के काव्य का विवरण दिया गया है– एक रीतिबद्ध, दूसरा रीतिसिद्ध और तीसरा रीतिमुक्त। रीतिमुक्त के संबंध में कोई मतभेद नहीं है। परंतु 'रीतिबद्ध' शब्द के विषय में मतभेद प्राप्त होता है।" (पृ. 36) आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने यह वर्ग विभाजन इस प्रकार किया है– (1) रीतिबद्ध, (2) रीतिसिद्ध, (3) रीतिमुक्त। इनके अनुसार रीतिबद्ध रचना लक्षणों और उदाहरणों से युक्त होती है परंतु डॉ. नगेंद्र ऐसा नहीं मानते। ऐसे कवियों को वे रीतिकार या आचार्य कवि मानते हैं जिन्होंने काव्य शास्त्र की शिक्षा देने के लिए रीति ग्रंथों का प्रणयन किया। रीतिबद्ध कवि वे उन्हें मानते हैं जिन्होंने रीति ग्रंथों की रचना न करके काव्य सिद्धांतों या लक्षणों के अनुसार काव्य की रचना की है। इस प्रकार विश्वनाथ प्रसाद, डॉ. नगेंद्र के मत से सहमत नहीं है। क्योंकि मिश्र जी तो ऐसे कवियों को रीतिसिद्ध कवि मानते हैं। जिन्होंने काव्य सिद्धांतों के अनुसार काव्य रचनाएँ तो की है पर लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, अर्थात् स्वयं अपने किसी नये काव्य सिद्धांतों की स्थापना नहीं की है। इस प्रकार हम रीति साहित्य को तीन धाराओं में विभक्त कर सकते हैं। (1) रीति शास्त्रीय काव्य, रीतिसिद्ध काव्य धारा और रीतिमुक्त काव्यधारा। आइए अब संक्षेप में इन काव्यधाराओं का साहित्यिक आधार जान लें। इस युग के कवियों की पहली व्यापक प्रवृत्ति रीति-निरूपण की रही। यह प्रवृत्ति तीन रूपों में दिखाई देती है।

(क) रीतिकर्म कविता– इस वर्ग का कवि अलंकारिक विशिष्ट काव्यांगों पर संक्षिप्त लक्षण-उदाहरण देकर अथवा स्वरचित लक्षण और दूसरे कवियों के उदाहरण देकर विषय को मात्र समझाने में अपने कर्म की सफलता समझता रहा। वह स्वरचित सरस उदाहरणों के फेर में नहीं पड़ा। जसवंतसिंह का 'भाषा-भूषण', दूलह का 'कविकुल कंठाभरण' रस रूप का 'तुलसी भूषण' आदि इसी प्रकार के ग्रंथ हैं।

(ख) रीतिसिद्ध कविता– काव्य रचना इन कवियों का उद्देश्य था। काव्यशास्त्रीय ज्ञान होते हुए भी ये कवि लक्षणों के चक्कर में नहीं पड़े। फिर काव्यशास्त्रीय छाप इनके काव्य ग्रंथों में दृष्टव्य है। बिहारी, मतिराम, भूपति आदि की सतसइयाँ, हठी जी का 'श्रीराधा सुधाशतक' ग्वाल कवि का 'कविहृदय विनोद' आदि ग्रंथ इसी वर्ग में आते हैं। इन कविताओं का मुख्य विषय शृंगार है। फिर भी वीर रस भक्ति प्रवृत्ति,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

नीति की कविताएँ भी लिखी गई हैं। इस प्रकार इस वर्ग के इतिहास में सरसता के साथ-साथ विषय की विविधता भी देखने को मिलती है।

(ग) रीतिबद्ध कविता– इस वर्ग के कवियों ने काव्यांगों के लक्षणों और उनके अनुसार सरस उदाहरणों की रचना की है। चिंतामणि के 'कविकुल कल्प तरु', 'रस विलास', ललितललाम', भूषण का 'शिवराज भूषण' देव का 'भावविलास' 'रसविलास' पद्माकर का 'जगविनोद' आदि ग्रंथ इसी प्रकार के ग्रंथ हैं। रीतिबद्ध काव्य–संग्रहों की संख्या सर्वाधिक है तथा विषय-वैविध्य भी पर्याप्त है।

अब हम रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्यधाराओं की प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

3.6 रीतिबद्ध काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(1) लक्षण ग्रन्थों का निर्माण

रीति काल के अधिकांश कवियों की सर्वप्रमुख विशेषता लक्षण ग्रन्थों का निर्माण है। इनमें काव्य विवेचना अधिक है। संस्कृत के लक्षण ग्रन्थकार आचार्यों का अनुकरण करते हुए इन्होंने अपनी रचनाओं को लक्षण ग्रन्थों अथवा रीतिग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत किया। अनेक कवियों ने पाण्डित्य प्रदर्शन में रुचि ली, लक्षण ग्रन्थ लिखे, किन्तु इस क्षेत्र में इनकी सफलता संदिग्ध हैं रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में– "हिंदी में लक्षण ग्रन्थ की परिपाटी पर रचना करने वाले जो सैकड़ों कवि हुए वे आचार्य कोटि में नहीं आ सके। वे वास्तव में कवि ही थे। उनमें आचार्यत्व के गुण नहीं थे। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुसार आचार्यतव तथा कवित्व के मिश्रण ने ऐसी खिचड़ी पकाई जो स्वादिष्ट होने पर हितकर न हुई।"

(2) श्रृंगारिकता

भाव या अनुभूति का विश्लेषण करते हुए विद्वानों ने इन काव्यों में मुख्य रूप में श्रृंगार रस को देखा है। इस काल के काव्य रचना का प्रमुख प्रयोजन अर्थ प्राप्ति था। प्रतिपाद्य विषय आश्रय दाता की रुचि के अनुसार कविता करना। राजाओं की प्रवृत्ति श्रृंगारिक थी। अतः उसी के अनुसार इन्होंने श्रृंगार परक रचनाएँ लिखी। वास्तव में यही उनका प्रतिपाद्य था। डॉ. नगेंद्र ने रीतिकालीन श्रृंगारिकता का निष्पक्ष विवेचन करते हुए कहा है– "सांचा चाहे जैसा भी रहा हो इसमें ठली श्रृंगारिकता ही है। इसकी अभिव्यक्ति में उन्होंने किसी प्रकार से संकोच नहीं किया। इसलिए उनकी श्रृंगारिकता में अप्राकृतिक गोपन अथवा दमन से उत्पन्न ग्रंथियाँ नहीं है, न वासना के उन्नयन अथवा प्रेम का अतींद्रिय रूप देने का उचित-अनुचित प्रयत्न। जीवन की वृत्तियाँ उच्चतर सामाजिक अभिव्यक्ति से चाहे वंचित रही हो, परन्तु श्रृंगारिक कुंठाओं से ये मुक्त थी। इसी कारण इस युग की श्रृंगारिकता में घुमड़न अथवा मानसिक छलना नहीं है।"

रसराज श्रृंगार के दो रूप माने जाते हैं। संयोग और वियोग– संयोग में दर्शन, श्रवण, स्मरण, संलाप आदि पाये जाते हैं। चमत्कार प्रिय रीतिकालीन कवि हावों के चित्रण में विदग्ध हैं। नायिका-नायक रूपी मुरली से बेहद प्रेम करती है किंतु अपनी भावनाओं को ह्रदय में ही सहेजे हुए हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

बतरस लालन लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करैं भौहन हंसे दैन कहे नटि जाय।।

ऐसे ही पावस में जब प्रेमी प्रेमिका का मिलन हुआ वहाँ कवि रम सा गया है। तीज के अवसर पर नायिका के मानसिक उल्लास को देखिए–

काम भूलै उर में उरोजनि में दाम झूलै।
स्याम झूलै प्यारी की अनियारी अंखियान में।

श्रृंगार के अन्य पक्ष वियोग में पूर्व राग, मान, प्रवास, और करुण आते हैं। प्रायः सभी कवियों ने वियोग की दसों दशाओं का मनोरम चित्रण किया है। रीतिकालीन नायिका को शुभ चंद्रमा कसाई प्रतीत होता है किंशुक और अनार उसे अंगार से लगते हैं। चंदन, चाँदनी और बादल उनके लिए आग बरसाते हैं। कुल मिलाकर श्रृंगारिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण मुख्यतः भोगपरक था, इसलिए प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर वे नहीं जा सके।

(3) आलंकारिता

रीतिबद्ध काव्य की एक अन्य प्रधान प्रवृत्ति आलंकारिता है। इसका कारण राजदरबारों का विलासी वातावरण तथा जन साधारण की रुचि था। कवि को अपनी कविता को भड़कीले रंगों में रंगना पड़ा। बहुत सारे कवियों ने अलंकारों के लक्षण उदाहरण दिये किंतु उनके मन में भी लक्षण विद्यमान थे। अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि वह साधन न रहकर साध्य बन गए जिससे काव्य का सौंदर्य बढ़ने की अपेक्षा कम ही हुआ। कभी-कभी केवल अलंकार ही अलंकार स्पष्ट होते हैं और कवि का अभिप्रेत उसी चमत्कार में खो जाता है। यह दोष रीविकालीन कवियों में प्रायः पाये जाते हैं। केशव को इसी कारण कठिन काव्य का प्रेत कहा गया है।

(4) जीवन–दर्शन

इस काल के कवियों का मुख्य लक्ष्य जीवन और यौवन के रमणीय स्वरूप का उद्घाटन करना था। इनका जीवन दर्शन रूढ़िबद्ध और यांत्रिक है। यह एक सीमित कटघरे में बंधा हुआ है। जीवन की विविधता के दर्शन यहाँ नहीं होते। संघर्ष, साधना और वास्तविक समस्याओं का चित्रण यह काव्य नहीं कर सके। इस व्यापकता के अभाव के कारण उसमे गहराई और गंभीर चिंतन नहीं आ पाये हैं। ये आ भी कैसे सकते थे क्योंकि एक तो वह रसिकता प्रधान युग या दूसरे उस समय का कवि संस्कृत की ह्रासोन्मुखी परम्परा का अंधानुकरण कर रहा था। इसी कारण चिंतन का स्थान प्रदर्शन और अलंकरण प्रियता ने ले लिया और उसके काव्य में हल्कापन आ गया। फिर भी इन कवियों के काव्य में नवीन उद्भावनाएँ भी देखने को मिलती हैं। इन कवियों ने अपनी प्रतिभा द्वारा हिंदी साहित्य को अलंकृत भी किया है। डॉ. भगीरथ मिश्र के शब्दों में हम कह सकते हैं कि ऐसा लगता है कि "रीति कविता के रचयिता यौवन और वसंत के कवि हैं। जीवन का फूलता हुआ सुधार रूप ही उन्हें प्रिय है।"

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(5) आचार्यत्व

सामान्यतः आचार्य उस विद्वान को कहते हैं जो साहित्य-संबंधी विषय के नूतन सिद्धांतों की स्थापना करे अथवा व्याख्या करे। काव्यशास्त्र या लक्षण-ग्रंथ की रचना करना उसका काम है। कवि कविता करता है और आचार्य उसके गुण-दोषों की मीमांसा करता है। रीतिकाल में कवि ही आचार्य भी थे, यह विचित्र संयोग था। उस समय कवि के लिए कवि शिक्षा का ज्ञाता होना आवश्यक था। बिहारी आदि कुछेक कवियों को छोड़कर रीतिकाल के केशव, देव, मतिराम, पद्माकर, भूषण आदि सभी कवि आचार्य भी थे। विद्वानों ने इन आचार्यों की आलोचना की है, परंतु साहित्य के क्षेत्र में उनका योगदान उपेक्षणीय नहीं है। उसका सबसे बड़ा लाभ यह रहा कि एक तो इस बहाने काव्य में सरस उदाहरणों की भरमार हो गई और दूसरे काव्यशास्त्र के सिद्धांत सरल सरस जनभाषा में व्यक्त कर दिये गये। हिंदी में काव्यशास्त्र के अभाव की पूर्ति इन आचार्य कवियों द्वारा की गई है।

(6) आश्रयदाताओं की प्रशस्ति

आदिकालीन कवियों की भाँति इस काल के कवियों ने भी शासक एवं सामंत लोगों के आश्रय में रहकर काव्य-रचना की थी। अपने को आश्रय देने वाले व्यक्ति की स्तुति करना उनके लिए स्वाभाविक भी था। इन स्तुतियों में एक तो कवि ने अपनी बहुत सी रचनाओं के नाम ही अपने आश्रयदाता के नाम पर रखे हैं, जैसे भवानी-विलास, हिम्मत बहादुर-विरुदावली जगद्विनोद आदि। दूसरे, आश्रयदाता के जीवन-चरित्र को लेकर उसके विषय में लिखा है, जैसे वीर सिंह देवचरित, जहाँगीर-जस चंद्रिका, रतनावली, शिवाबावनी आदि ग्रन्थों में हैं। आश्रयदाता की वीरता, शूरता, दानशीलता, सुंदरता आदि अनेक गुण इन प्रशस्तियों में समाये हुए हैं। ये वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, जैसे–

'झूमत मतंग माते तरल तुरंग ताते,
राते राते जरग जरूर मांगि लाइयो।
कहे पद्माकर सो हीरा लाल मोतिम के,
पन्नन के भाँति-भाँति कहने जड़ाइबो।।

(7) भक्ति-भावना का पुट

रीति काल की कविता की एक विशेषता यह भी है कि उसके श्रृंगारमय वर्णनों में कहीं-कहीं भक्ति के भाव भी आ गए हैं। बिहारी ने राधा की स्तुति की है। कृष्ण की स्तुति बिहारी तथा पद्माकर, देव, मतिराम सबने की है। शिव, गणेश, सरस्वती आदि की स्तुतियाँ करके कवियों ने अपनी भक्ति दिखलाई है। यह दूसरी बात है कि यह भक्ति शब्दमात्र की थी। इतना अवश्य है कि कवि राधा और कृष्ण के नाम का स्मरण करना चाहते थे। भिखारीदास ने रीतिकालीन कवियों द्वारा राधा-कृष्ण को बहाने के रूप में वर्ण्य-विषय बनाने की ओर संकेत किया है–

रीझिहैं सुकवि जो तो मानों कबिताई,
न तु राधिका-कन्हाई के सुमिरन को बहानो है।

इनके विपरीत रीतिमुक्त कवियों ने अवश्य सच्चे भाव से भक्तिकाव्य लिखे हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

(8) विभिन्न प्रकार की नायिकाओं का वर्णन

रीतिकालीन, आचार्यकवियों ने श्रृंगार वर्णन के आलम्बन रूप में जो विस्तार से नायक-नायिका-भेद बतलाया है, उसमें नायक के वर्गीकरण में उन्होंने उतनी रुचि प्रदर्शित नहीं की है, जितनी नायिका के वर्गीकरण में रीतिकाल के इन कवियों ने अनेक प्रकार की नायिकाओं का वर्णन अपने काव्यों में किया है। देव, मतिराम, पद्माकर आदि ने विस्तार के साथ नायिकाओं के भेद बतलाएँ हैं और उनके उदाहरण दिये है। रसलीन ने नायिकाओं की संख्या 1152 तक पहुँचा दी है। इन नायिकाओं के भेदों के आठ आधार देखने में आते हैं :– (1) जाति-अनुसार, (2) कर्म-अनुसार, (3) पति-प्रेमानुसार, (4) वयक्रमानुसार, (5) मान के अनुसार, (6) दशा के अनुसार, (7) काल (अस्था) के अनुसार, (8) प्रकृति के अनुसार। इन नायिकाओं के वर्णनों में बहुत अधिक श्रृंगारिकता है। विलासपूर्ण जीवन बिताने वाले राजा नवाब यही चाहते थे और कवियों ने वैसा करके उनको प्रसन्न किया। उन्होंने नायिकाओं के भेद में श्रृंगार की कोई भी गोपनीय स्थिति बिना वर्णन के नहीं रहने दी।

(9) श्रृंगारेतर विषय

इस काल की कविता की विशेषताओं में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य विषयों पर पर्याप्त मात्रा में अभिव्यक्ति की गई है। उनमें से भक्ति के अतिरिक्त मुख्यतः नीति, वीरता, प्रकृति-चित्रण आदि को ले सकते हैं।

जीवन के व्यावहारिक अनुभवों से युक्त वृंद, रहीम आदि के दोहे और गिरधर की कुंडलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। बिहारी, देव, ममितराम आदि के काव्यों में भी श्रृंगारेतर विषयों का वर्णन मिलता है। प्रकृति का वर्णन आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में हुआ है।

(10) मुक्तक काव्य

रीतिकाल अपनी मुक्तक रचनाओं के लिए विशेष विख्यात है। यद्यपि इसमें प्रबंध काव्य भी लिखे गये हैं। रीतिकाल में मुक्तक काव्य लिखने की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। अधिकांश कवियों ने एक क्षण में चमत्कृत कर देने वाली बात कविता में उत्पन्न करने की कोशिश की है। रीतिकाल के मुक्तक काव्यों से पहले काल की गाथासप्तसती, अमरुक का अमरुक शतक, गोवर्द्धनचार्य की आर्य सप्तशती आदि प्राकृत तथा संस्कृत के ग्रंथ लिख चुके थे। रीतिकालीन मुक्तक काव्य दरबारी काव्य अधिक रहा। प्रबंध काव्यों की संख्या बहुत कम हैं, पर प्रबंध काव्य भी लिखे गए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ 'नाटक' नाम से रचनाएँ मिलती हैं, पर वे वास्तव में नाम के ही नाटक हैं।

(11) ब्रजभाषा का प्रयोग

ब्रजभाषा रीतिकाल के कवियों की प्रधान भाषा रही अपनी सुकुमारता, कोमलता और काव्योचित विशेषताओं के कारण ब्रजभाषा ने कवियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। इस समय अतीव परिष्कृत ब्रजभाषा का प्रयोग देखने में आता है। उसमें परिस्थितिवश अरबी, फारसी शब्दों की प्रचुरता भी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मिलती है, पर वे प्रयोग ऐसे हैं जो भाषा में घुलमिल गए हैं और उसकी स्वाभाविकता को नष्ट नहीं कर पाते। बिहारी का भाषा की प्रांजलता की बार-बार प्रशंसा हुई है। इस भाषा की विशेषताओं ने मुसलमानों को ब्रजभाषा काव्य लिखने की ओर प्रवृत्त किया।

(12) छंद

दोहा, कवित्त और सवैया इस काल के प्रमुख छंद रहे हैं। बिहारी, मतिराम, रसनिधि आदि ने सतसई ग्रंथों में दोहा छंद का प्रयोग किया है। लक्षण ग्रंथों में भी दोहों का प्रयोग बहुत हुआ है। इसके अतिरिक्त सोरठा, बरबै, छप्पय, रोला आदि छंद भी रीतिकाल में बार-बार प्रयोग में आए हैं। लक्षण-ग्रंथों की रचना करने वाले कवियों द्वारा भिन्न छंदों का सशक्त एवं उपयुक्त प्रयोग द्रष्टव्य है।

(13) ऊहात्मकता

ऊहात्मक वर्णन का अर्थ है बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करना। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करना भी रीतिकाल की एक विशेषता रही है। वियोग श्रृंगार-वर्णन में बिहारी की नायिका का जो चित्र है, वह ऊहात्मकता से युक्त है–

इत आवति, चलि जात उत, चली छःसातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहे, लगी उसासनु साथ।

अर्थात् नायिका विरह में इतनी कमजोर हो गई है कि जब सांस छोड़ती है तब छः-सात हाथ आगे चली जाती है और जब सांस लेती है तो छः-सात हाथ पीछे आ जाती है। इस तरह वह हिंडोरे पर चढ़ती रहती है।

विरह के कारण नायिका इतनी तृप्त है कि जाड़े की रात में भी गीले वस्त्र की आड़ रखे बिना उसकी सखियाँ उसके पास नहीं आ सकती हैं। विरह से तप्त नायिका पर गुलाब जल डाला तो छनछनाकर सूख गया। राजाओं की प्रशस्ति में भी ऐसी अतिशयोक्तिपूर्ण ऊहाएँ देखने को मिलती है। अनेक प्रसंग संयोग श्रृंगार-वर्णन के भी ऐसे हैं जिन्हें ऊहात्मक कहा जा सकता है।

निष्कर्ष यह है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में रीतिबद्ध कवियों का अपना विशिष्ट स्थान है। हिंदी के रीति आचार्यों का प्रमुख योगदान यह है कि उन्होंने भारतीय काव्य शास्त्र परंपरा को हिंदी में सरस रूप में अवतरित किया है। कला की दृष्टि से भी रीतिकाव्य का महत्त्व असंदिग्ध है।

3.7 रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(क) काव्यगत दृष्टिकोण की भिन्नता

रीतिकाल में **रीतिमुक्त** अथवा **स्वछंद काव्यधारा** प्रमुख रूप से प्रवाहित हुई है। इस वर्ग की कविताएँ भाव-प्रधान थीं। इनमें शारीरिक वासना की गंध नहीं, वरन् हृदय की अतृप्त पुकार है। राधा

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

और कृष्ण की लीलाओं के गान के बहाने नहीं, सीधे-सादे रूप में वैयक्तिक रूप की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। इन्होंने जो कुछ भी लिखा अपनी अंतः प्रेरणा से परिचालित होकर लिखा है। रीतिमुक्त कवियों में घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों का काव्य दो प्रकार का मिलता है। (1) **स्वानुभूतिपरक काव्य**, (2) **भक्तिपरक काव्य**। स्वानुभूतिपरक कवियों ने अपने हृदय की आँखों से प्रेम की पीड़ा को देखा था, उसकी चुभन को गहराई तक भोगा था और इसके कारण वियोग की तपन को झेला था। घनानंद जैसे कवियों ने प्रणय में असफल होकर जहाँ एक ओर अपने विरह का गान किया है, वहीं दूसरी ओर अपने हृदय की रसार्द्रता को भक्ति में डुबाकर सांत्वना प्राप्त की है। स्वाभूतिपरक कवियों ने अपने जीवन के वास्तविक प्रेम से प्रेरणा लेकर प्रबंधों और मुक्तकों की रचना की है, जबकि भक्तिप्रेरित स्वछंद कवियों ने कृष्ण भक्ति से प्रभावित होकर अपने काव्यों में श्रृंगार की सरिता नबहाई है। रीतिमुक्त धारा में जगारी कवियों का श्रृंगार चित्रण एक भिन्न पद्धति पर चला है। अतः उनके काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों और विशेषताओं को जानना आवश्यक है।

(1) स्वच्छंद, संयत प्रेम का चित्रण– रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने प्रेम का चित्रण रीतिबद्ध कवियों के समान बंधी-बंधाई परिपाटी में नहीं किया है। रीतिबद्ध कवियों का प्रेम रसिकता की कोटि से आगे नहीं जा सका, उनमें उन्मुक्त रूप से हृदय का स्पंदन नहीं आ सका, किंतु रीतिमुक्त कवियों का प्रेम स्वछंद और संयत है। उनमें भावप्रवण हृदय की सच्ची अनुभूति है कहीं भी कृत्रिमता नहीं, और न कहीं कोई छिपाव और दुराव है। उन्हें न कोई लोक लाज का भय है और न ही परलोक की चिंता। प्रेम का मार्ग सीधा है, उस पर चलने के लिए सरल हृदय होना आवश्यक है–

अति सूधों सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
यहाँ साँचे चलै तजि आपन पौ झिझकैं कपटी जे निसांक नहीं।।

हृदय की सरलता के साथ-साथ इन कवियों ने शारीरिक प्रेम की अपेक्षा आंतरिक प्रेम को महत्त्व दिया है। प्रिय के अनुराग में प्रेमी इतना तन्मय है कि उसकी वृत्ति पागलों की सी है। उसका अंतः करण प्रिय की प्रेम साधना और ध्यान में ऐसा लगा है कि अब केवल वही उसके सामने है, सारे संसार की प्रतीति समाप्त हो गई है। चातक की भाँति केवल देखना है–

"मन जैसे कुछ तुम्हें चाहत है सु बखानिये कैसे सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे बावरे लौं लगियै नित लौं।
बुद्धि और सुधि नैननि बैननि मैं करि बास निरंतर अंतर गौ।
उधरौ जग छाय रहे घनआनंद चातिक त्यौं तकियै अब तौ।

इस प्रकार इनके प्रेम में शुद्ध हृदय का योग है, वृद्धि की कतरब्योंत नहीं है। यह प्रेम उनकी आत्मा की पुकार है। उन्होंने अपनी प्रेमानुभूति रीतिबद्ध कवियों की तरह दूत या दूती के माध्यम से अभिव्यक्त न कर आत्माभिव्यक्ति की शैली में व्यंजित की है। यदि कहीं दूती और सखी का प्रयोग हुआ भी है तो वहाँ वह तटस्थ रूप से प्रेमी की शब्दावली को दुहराती है, अपनी बुद्धि की कतरब्योंत नहीं दिखलाती। इनका प्रेम एकनिष्ट है, इसमें लोकापवाद की तनिक भी चिंता नहीं। इन कवियों पर कवि

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कालिदास की यह उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है। 'न कामवृत्ति—वर्चनीय मीक्षते।' इनके पास प्रेम की सच्ची अनुभूतियाँ हैं और उनका इन्होंने उदात्त रूप में वर्णन किया है। विवाह के बंधन में न पड़ कर भी इन कवियों ने प्रेम का जो निर्वाह किया, वह अनुपम है।

(2) विरहानुभूति की प्रधानता

रीतिमुक्त कवियों का प्रेम व्यथा प्रधान है। पीड़ा ही इनके काव्य का प्राण है। वियोग वर्णन में इन कवियों की मनोवृत्ति अधिक रमी है, क्योंकि वियोग में कवि की दृष्टि अंतर्मुखी होती है। वह अंतस्तल के प्रेम की अतल गहराइयों तक बैठने के लिए आतुर रहता है। वियोग की अमिट प्यास उसके भाव पेशल हृदय को सदा द्रवित रखती है। अतः उसमें क्रियाशीलता बनी रहती है। हाई ब्लड-प्रेशर की भी वह परवाह नहीं करता। इन कवियों के प्रेम के अंतर्गत संयोग की मात्रा कम है और है भी तो उसमें भी पीड़ा की अनुभूति किसी न किसी प्रकार बनी रहती है—

"यह कैसो संयोग न जानि परै जु वियोग न क्यौ हूँ बिछोहत है।"

इन कवियों की प्रेम-तृषा सदा बढ़ती ही रहती है। इनमें प्रेम की अथाह पीर है और उस पीर को पहचानने के लिए पीर भरा हृदय अपेक्षित है।

समुझे कविता घनानंद की,
हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी।

विरह की अग्नि इन कवियों के भीतर ही भीतर सुलगती रहती है। गिरिधर कविराय ने भी लिखा है—

चिंता ज्वाल सरीर बन दाहा लगि लगि जाइ।
प्रगट धुआं नहीं देखियै उर अंतर धुंधआई।

विरहिणी विरह में किस प्रकार व्यथित है उसका विवरण घनानंद ने अपने काव्य में किया है। विरहिणी को चैन नहीं है, विरह व्याकुलता अधिक है, जी क्षण भर भी नहीं बहलता, संजीवन सुजान प्रिय को चाहता है। वेदना ऐसी हो गई है कि उसे दूर करने के उपाय से उसे मूर्छा हो जाती है। अकेले विरहिणी ही सह रही है, बेचारी किस से कहे—

क्यौहूं न चैन पर दिनरैन सु पैडे परयो बिरहा बज्रमारो।
ज्यौ बहरे न कहू छन एक हू नाहै सुजान सजीवन प्यारो।
ऐसी बढ़ो घनानंद वेदनि देया उपाय ते आवै तॅवारो।
हों ही भरौं अकली कहौ कौन सौं जा विध होत है सांस सबरो।

प्रिय के विरह से विरहिणी व्याकुल होकर संकल्प करती हैं कि यदि प्रिय अपने दर्शनों से वंचित कर रहा है, तटस्थ हो अपना मुख छिपा रहा है तो उसकी पीठ ही देखती रहेगी। पर उसे यह अवश्य कहना है कि प्रिय जिसे खेल या प्रयोग मात्र समझ रहा है वह उसके लिए बरछे के समान है। बिछोह

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

संसार में भारी दुःख है। प्रिय की लोक कल्याण की प्रवृत्ति के अनुकूल ही उसे चलना है। प्रिय को यदि तटस्थता ही सूझती है उसे वह भी उसके लिए सिरमाथे पर है—

> तोहिं तो खैल पै मो हिय सेल सो ए रे अमोही बिछोह महादुःख
> जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो पै कयों न परयौ लहि त तौ सदा सुख
> एक ही टेक न दूसरी जानति जीवन प्रान सुजान लिये रुख।
> ऐसी सुहाय तौ मेरी कहा बस, देखिहौं पीठ दुराह हौ जो मुख।

इस प्रकार रीतिमुक्त काव्य परम्परा की व्यथा—प्रधानता उसे प्रचलित परम्परा से पृथक् प्रमाणित करती है। इसका एक कारण फारसी का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त इन कवियों की 'प्रेम की पीर' सूफी कवियों से भी प्रभावित प्रतीत होती है। इसी कारण इनके प्रेम में रहस्यमयता की झलक भी मिलती है। संक्षेप में इनका प्रेम बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी अधिक है। वह वासना पंकिल न होकर स्वच्छ एवं उदात्त है। उसमें हृदय की मार्मिक सूक्ष्म अनुभूतियाँ और सौन्दर्य की महीन से महीन बारीकियाँ हैं। वस्तुतः ये कवि प्रेम, हृदय और सौंदर्य के सच्चे पारखी हैं। इन कवियों का विरह वर्णन शास्त्रीय कोटि का नहीं है, उनकी सच्ची अनुभूति में अनायास विरह के शास्त्रीय लक्षण मिल जाते हैं।

(3) काव्यगत दृष्टिकोण की भिन्नता

रीतिमुक्त कवियों ने न तो परम्परागत काव्यशास्त्रीय नियमों को आधार बनाकर रचना की और न ही किसी काव्यशास्त्रीय सम्बन्धी विशेष सम्प्रदाय का अनुसरण किया। ये कवि आश्रयदाताओं की इच्छा के गुलाम नहीं रहे। रीतिबद्ध कवियों ने अनुप्रास, यमक आदि अलंकार-विधान को प्रधानता दी, अनुभूति गौण थी। रीतिमुक्त काव्य में यह क्रम उलट गया। इस काव्य में अनुभूति साध्य बनी और कवित्त रचना मात्र साधन रही। इस प्रकार रीतिमुक्त कवियों ने जो अपने काव्यादर्श प्रस्तुत किये हैं उन्हें रीतिबद्ध काव्यादर्शों से पृथक् समझा है।

(4) सौंदर्यानुभूति

रीतिमुक्त कवियों ने प्रिय की छवि के अनेक रमणीय चित्र खींचे हैं, जो सर्वथा लीक से हटकर हैं। रीतिबद्ध कवियों की तरह इन कवियों ने नायिका का नख-शिख का वर्णन नहीं किया, बल्कि प्रिय ने समग्र सौंदर्य के प्रभाव का चित्रण किया है। नारी-सौंदर्य के अतिरिक्त कृष्ण रूप में पुरुष नायक के रूप-प्रभाव का भी चित्रण किया है।

(5) प्रकृति-चित्रण

रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण कर जिस संवेदनशीलता का उद्घाटन किया है वह उनके स्वछंदतावादी दृष्टिकोण की परिचायक है। रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति के आलंबन, उद्दीपन, अलंकार, पृष्ठभूमि और मानवीकरण आदि विविध रूपों का सजीवता के साथ चित्रांकन किया है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(6) शिल्प-सौष्ठव

रीतिमुक्त कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए काव्य नहीं लिखा, अपितु भावावेग में जो लिखा, वह उनकी सहजता का कलात्मक रूप बन गया। इन कवियों ने अरबी, फारसी शब्दों को स्वतन्त्र रूप में ग्रहण कर स्वच्छ प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इन कवियों ने मुख्य रूप से ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, इसके साथ-साथ कवि आलम ने अवधी भाषा में भी काव्य रचना की है। भाषा मुहावरेदार और लोकोक्ति प्रधान है। सानुप्रासिकता इनकी भाषा का निजी गुण है। लाक्षणिकता, व्यंजना और सूक्ति प्रयोग से इनकी काव्य भाषा रमणीय बन गयी है। इन कवियों ने अधिकांशतः कवित्त और सवैये का प्रयोग किया है, इसके साथ-साथ इनके काव्य में दोहा छंद का प्रयोग भी पर्याप्त है। यत्र-तत्र कुछ अन्य छन्द भी प्रयुक्त हैं। छंद में संगीतात्मकता और लय की अनुगूँज भी विद्यमान है।

रीतिमुक्त कवियों ने न केवल मुक्तक काव्य लिखे, वरन् प्रबंध काव्य भी लिखे हैं। कवि आलम और बोधा ने क्रमशः 'माधवानल कामकंदला' और 'विरह वारीश' नामक प्रबंध काव्यों की रचना की। 'श्याम सनेही' ने भी प्रयाशः प्रबंध कोटि की रचना है। कवि घनानंद रचित गिरिपूजन, यमुनायश, गोकुलगीत आदि को भी किसी सीमा तक प्रबंधात्मक रचनाएँ माना जा सकता है।

इन कवियों ने अधिकांशतः दृश्य और श्रव्य बिंबों का प्रयोग किया है। इन्होंने अपनी स्वछंद प्रवृत्ति के अनुकूल प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य से बिंब ग्रहण किए हैं। इनकी संपूर्ण कला लोक जीवन की ओर विशेष झुकी हुई है।

3.8 रीतिकाल के प्रमुख कवि और उनके काव्य

केशवदास

परिचय पीछे 'भक्तिकाल' के अंतर्गत दिया जा चुका है। यद्यपि ये अलंकारों को महत्त्व देने वाले चमत्कारवादी कवि माने जाते हैं, प्रमाणस्वरूप इनकी प्रसिद्ध उक्ति– 'भूषण बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त' को उद्धृत किया जाता है। किंतु इनके दो काव्यशास्त्रीय ग्रंथ **'रसिकप्रिया'** और **'कविप्रिया'** इन्हें अलंकारवादी सिद्ध नहीं करते हैं। 'रसिकप्रिया' कविता के श्रृंगार-अलंकारों का विवेचन ग्रंथ है। कुछ विद्वानों ने केशव को रीतिकाल का प्रवर्त्तक कवि नहीं माना है और उन्हें भक्तिकाल में रखा है, किंतु कुछ उन्हें रीतिकाल का प्रवर्त्तक आचार्य कवि मानते हैं।

बिहारीलाल

इनका जन्म ग्वालियर के पास बहुवा गोविंदपुर नामक स्थान पर संवत् 1660 (सन् 1603 ई.) में हुआ था। इनका बचपन बुंदेलखण्ड में बीता और युवावस्था में अपनी ससुराल मथुरा में आ बसे थे। ये आमेर (जयपुर) के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबार में रहा करते थे। कहा जाता है कि राजा से इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी इनाम में मिला करती थी। बिहारी रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि हैं। इनका एक मात्र ग्रंथ **'बिहारी सतसई'** है। इस ग्रंथ की बहुत प्रशंसा हुई है। छोटी सी रचना में श्रृंगार रस

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

की मार्मिक अभिव्यंजना तो है ही साथ ही इसमें भक्ति और नीति-विषयक दोहे भी मिलते हैं। ब्रजभाषा पर बिहारी का बहुत अधिकार था और इन्होंने बड़ी परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया है।

चिंतामणि त्रिपाठी

इनका जन्म 1610 ई. में हुआ था। ये कानपुर के निकट तिकवांपुर के रहने वाले थे। कहते हैं ये चार भाई थे— चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर। चारों कवि थे। बहुत विद्वानों ने चिंतामणि त्रिपाठी को ही रीतिकाल का प्रवर्तक माना है। इनका प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'कविकुल कल्पतरु' है। इनके अन्य ग्रंथों के नाम **छंदविहार, काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, रामायण** हैं। चिंतामणि प्रसिद्ध कवि थे। शुक्ल जी ने इनकी भाषा का लालित्य की प्रशंसा की है।

भूषण

इनका जन्म संवत् 1610 (1613 ई.) में हुआ था। ये चिंतामणि और मतिराम के भाई थे। चित्रकूट से सोलंकी राजारुद्र ने इन्हें कवि भूषण की उपाधि से विभूषित किया था। उसी नाम से ये प्रसिद्ध हैं। इनका असली नाम क्या था, इसका पता नहीं चला ये महाराज शिवाजी और छत्रसाल के दरबार में रहे थे, दोनों ने इनका बड़ा मान किया था। कहते हैं, शिवाजी ने भूषण को एक-एक छंद पर लाखों रुपये दिये थे। रीतिकालीन कवियों में भूषण वीररस के कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ तीन हैं— 'शिवा बावली', 'छत्रसाल दशक' और 'शिवराजभूषण'।

भूषण ओजभरी भाषा में कवित्त लिखने के कारण बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।

मतिराम

ये कानुपर जिले के तिकवापुर नामक स्थान पर संवत् 1678 (1621 ई.) के लगभग उत्पन्न हुए थे। ये चिंतामणि और भूषण कवि के भाई थे। ये बूंदी के महाराज भाव सिंह के यहाँ रहे थे। इनका रीतिकाल के कवियों में अच्छा स्थान है। **'रसराज'** और **'ललित ललाम'** इनके बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। मतिराम सतसई, साहित्यसार, लक्षणसार— ये ग्रंथ भी मतिराम के माने जाते हैं।

मतिराम सरसता के लिए प्रसिद्ध हैं। ये श्रृंगार के कवि हैं। उनके वर्णनों में बड़ी सरस व्यंजनाएँ मिलती हैं।

देव

देव का जन्म संवत् 1730 (1673 ई.) में हुआ था। इनका पूरा नाम देवदत्त था। कहते हैं कि ये कई रईसों के यहाँ घूमते रहे, इन्हें कोई अच्छा आश्रयदाता नहीं मिला। एक भवानीदत्त वैद्य के नाम पर उन्होंने 'भवानी विलास' नामक ग्रंथ लिखा। कुशलसिंह के नाम पर 'कुशल विलास' लिखा। इन्हें राजा भोगीलाल का आश्रय भी मिला और इन्होंने उसके लिए 'रस विलास' नामक ग्रंथ लिखा और उसमें उसकी प्रशंसा की—

> भोगीलाल भूप लाख पाखर लेवैया, जिन्हें लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं।

देव द्वारा हिंदी और संस्कृत में रचे हुए 25 ग्रंथ बतलाये जाते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

भिखारीदास

इनका कविता-काल संवत् 1786 से 1806 तक है। ये प्रतापगढ़ के पास ट्योंगा नामक गांव के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम कृपालदास था। इन्होंने अपने परिवार का पूरा परिचय दिया है। अपने एक ग्रंथ में इन्होंने अपने आश्रयदाता बाबू हिंदूपति सिंह का उल्लेख किया है। इन्होंने काव्यांग-निरूपण के लिए 'काव्य निर्णय' नामक ग्रंथ लिखा है। इनके अन्य ग्रंथों **'रस-सारांश'**, **'शृंगार-निर्णय'**, **'छंद प्रकाश'** आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने ग्रंथों में बड़े मनोहर और सरस उदाहरणों को प्रस्तुत किया है।

पद्माकर

पद्माकर का जन्म संवत् 1810 में बांदा में हुआ था। ये रीतिकाल के लोकप्रिय कवि हैं। इनके काव्य रमणीयता की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हैं। ये पंडित थे। इनका अनेक जगह बहुत सम्मान हुआ था। नागपुर के महाराज रघुनाथराव, पन्ना के महाराज हिंदूपति, जयपुर नरेश प्रतापसिंह की प्रशंसा इन्होंने की है।

इनके प्रसिद्ध ग्रंथ **'हिम्मत बहादुर विरुदावली'**, **'राम रसायन'**, **'प्रबोध पचासा'** और **'जगद्विनोद'** हैं।

घनानंद

इनका जन्म संवत् 1746 के लगभग हुआ था। ये ब्रजभाषा के बहुत अच्छे कवि थे। घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा के रीतिमुक्त कवियों में आते हैं। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीरमुंशी थे। कहते हैं, एक दिन इन्होंने बादशाह के कहने से ध्रुपद गाया नहीं और अपनी प्रेमिका सुजान नामक वेश्या के कहने से गाना गा दिया। बादशाह ने इन्हें शहर से निकाल दिया। तब वे सुजान के पास गये और अपने साथ चलने को कहा। पर जब सुजान इनके साथ नहीं गई, तो ये निराश होकर मृत्युपर्यंत वृंदावन में रहे और 'सुजान' छाप देकर प्रेम और भक्ति के गीत गाते रहे।

'सुजानविनोद', **'सुजानसागर'**, **'विहार लीला'** आदि इनकी रचनाएँ हैं। इनके 400 के लगभग फुकल कवित्त और सवैये मिलते हैं। ये अपनी सरसता और प्रेम की उच्चता के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं।

बोध प्रश्न

1. रीतिकाव्य की प्रमुख काव्यधाराओं का परिचय दीजिए।
2. रीतिकाव्य की पांच प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

3.9 सारांश

रीतिकाल काव्य की विविध काव्य धाराएं हैं, इनको मूलतः तीन वर्गों में विभक्त किया है। ये तीन धाराएं हैं - रीतिबद्ध काव्य, रीतिसिद्ध काव्य, रीतिमुक्त काव्य। रीतिकाल के कवि जिन्होंने लक्षण

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

ग्रंथों की परिपाटी पर काव्यांगों का लक्षण एवं उदाहरण देते हुए रीति ग्रंथों की रचना की। रीतिसिद्ध कवियों के वर्ग के प्रतिनिधि कवि हैं - बिहारी। बिहारी ने यद्यपि कोई रीतिग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्होंने अपनी एकमात्र रचना 'सतसई' में रीति की जानकारी का पूरा-पूरा उपयोग किया है। रीतिकाल के वे कवि जो रीति के बंधन से पूर्णतः मुक्त हैं - रीतिमुक्त कवि कहे जाते हैं। रीतिमुक्त कवियों की प्रवृत्ति मुक्तक रचना की अधिक रही है। लाक्षणिक ब्रजभाषा का प्रयोग इनके काव्य में हुआ है जिसमें भाव व्यंजना की अपूर्ण क्षमता है। निश्चय ही रीतिमुक्त कवियों के प्रदेय ने हिंदी साहित्य की पर्याप्त वृद्धि की है। हिंदी में काव्यशास्त्र का द्वार खोलने का श्रेय इन रीति ग्रन्थकारों को अवश्य दिया जा सकता है काव्य रसिकों को काव्यांगो की जानकारी प्रदान कर उन्होंने काव्य के प्रति लोगों के रुझान को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान किया है।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. रीतिबद्ध काव्य का वर्णन कीजिए।
2. रीतिबद्ध, रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध काव्य किस प्रकार भिन्न हैं?
3. रीतिमुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
4. रीतिबद्ध काव्य की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
5. रीतिकाल के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दें।
6. रीतिकाल की परिस्थितियों को बताइए।

3.11 संदर्भ-ग्रंथ

1. '*हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*' - विश्वनाथ त्रिपाठी
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - सं.-डॉ. नगेंद्र
4. '*हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*' - बच्चन सिंह
5. '*हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*' - रामस्वरूप चतुर्वेदी

© DDCE, COL SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-II

(ख) हिंदी साहित्य का इतिहास : आधुनिककाल

1. आधुनिककाल युगीन काव्यधाराएँ : सामान्य परिचय

लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 आधुनिक काल और उसकी परिस्थितियाँ
1.3 आधुनिक कविता : सामान्य परिचय
  1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 भारतेन्दु युगीन काव्यधारा
  1.4.1 बोध प्रश्न
1.5 द्विवेदी युगीन काव्यधारा
  1.5.1 बोध प्रश्न
1.6 छायावादी काव्यधारा
  1.6.1 बोध प्रश्न
1.7 प्रगतिवादी काव्यधारा
  1.7.1 बोध प्रश्न
1.8 प्रयोगवादी काव्यधारा
  1.8.1 बोध प्रश्न
1.9 नयी कविता
  1.9.1 बोध प्रश्न
1.10 सारांश
1.11 अभ्यास प्रश्न
1.12 संदर्भ-ग्रंथ

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1.0 अधिगम का उद्देश्य

आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ 19वीं सदी के मध्य में माना जाता है। यह काल भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण है। 1857 की क्रांति के बाद भारत में अंग्रेजी सत्ता पूरी तरह स्थापित हो चुकी थी। आधुनिक युगीन हिंदी साहित्य में स्पष्ट परिवर्तन दिखते हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य का संबंध इन्हीं नए परिवर्तनों से है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक काल की पृष्ठभूमि जान सकेंगे।
- आधुनिक काल के उदय के कारणों को जान सकेंगे।
- आधुनिक काल के स्वरूप को जान सकेंगे।
- आधुनिक काल की विभिन्न परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ उन्नीसवीं सदी के मध्य माना जाता है। उन्नीसवीं सदी भारतीय इतिहास से कई दृष्टियों से निर्णायक कही जा सकती है। हमें आधुनिक साहित्य की उस पृष्ठभूमि को समझना है जिसने इस काल के साहित्य के निर्माण की परिस्थितियाँ पैदा कीं अर्थात् यह साहित्य किन परिस्थितियों में पैदा हुआ और इसकी सृजना के पीछे की प्रेरक शक्तियाँ कौन सी हैं। प्रत्येक युग के साहित्य का संबंध उस युग की परिस्थितियों से बहुत गहरा होता है वह इस युग की परिस्थितियों को बनाने वाले प्रमुख कारकों में से एक होता है, और साहित्य परिस्थितियों को प्रभावित भी करता है।

1.2 आधुनिक काल और उसकी परिस्थितियाँ

आदिकाल का वीरगाथा काल में युद्ध की प्रवृत्ति प्रमुख थी। भक्तिकाल में धर्म प्रमुख हो गया और रीतिकाल में सामंतों के दरबार प्रमुख हो गए। पर रीतिकाल के बाद जनता, लोक–समाज, राष्ट्रीयता और देश–गौरव सहसा प्रमुख हो उठे इसलिए काल की दृष्टि से जिसे हम आधुनिक काल मानते हैं, उनमें बृहत्तर जन–सूमाज और राष्ट्र की चेतना परिपूर्ण रूप में व्यक्त हुई है, उसमें देश के विगत गौरव का इस तरह आख्यान किया गया है, जिससे निराश जन समूह को प्रेरणा मिलती है। उसमें धर्म, दर्शन, राजनीति, मनोविज्ञान, सामूहिक अधिकार और कर्त्तव्य, विज्ञान आदि के संबंध में पर्याप्त तर्क–वितर्क का साहित्य मिलता है। उसमें व्यक्ति की निजी भावनाओं, संवेदनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है। इस तरह आधुनिक काल का साहित्य बहिर्जगत् और अंतर्जगत् दोनों ही पर बल देकर विकसित हुआ है

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

और हो रहा है।

धार्मिक कर्मकाण्ड, सामाजिक रूढ़ि, शासन–व्यवस्था और अंग्रेजी सम्राज्यवाद के विरोध से आधुनिक साहित्य का प्रारंभ माना गया है। इस दृष्टि से भारतेंदु युग (सन् 1850 से 1900) के साहित्यकारों ने नवीन परंपरा का सूत्रपात किया। अपने साहित्य के माध्यम से यह काम करने के लिए भारतेंदु युग में ही कई पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। उन पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों और व्यंग्य कविताओं को पढ़कर आप भी यह स्वीकार करेंगे कि भारतेन्दु युग में विचार की प्रौढ़ता और आधुनिकता का आरंभ हो गया था। इसी विचार का प्रौढ़ता और आधुनिकता में प्रवेश के कारण गद्य को इतना महत्व मिला। चूंकि कविता के माध्यम से एक सीमित दायरे में ही सीमित वर्ग तक अपनी बात पहुंचाई जा सकती है, इसलिए भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्रि, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' और बालकृष्ण भट्ट ने गद्य का सहारा लिया। भारतेंदु युग में गद्य के क्षेत्र में निबंध, नाटक और कहानी का प्रारंभ हुआ। आधुनिक साहित्य का प्रारंभिक स्वरूप भारतेंदु–युग में ही निश्चित हुआ। भारतेंदु और उनके सहयोगियों ने हिंदी साहित्य को आधुनिक बनाने में बड़ा काम किया।

हिंदी साहित्य में आधुनिक प्रवृत्तियों के अध्ययन से पूर्व आधुनिक काल की कुछ अन्य प्रारम्भिक परिस्थितियों और पृष्ठभूमियों का परिचय पाना आवश्यक है।

अंग्रेजों का राज्य भारत वर्ष में यूं तो सन् 1707 में ही स्थापित हो चुका था, किन्तु अंग्रेजों के सम्पर्क का प्रभाव साहित्य पर बहुत बाद में जाकर पड़ा। रीतिकाल के समाप्त हो जाने पर भी कवि रूढ़ि और परम्परा से प्रभावित हो, राधा-कृष्ण की लीलाओं और नायक-नायिकाओं के वर्णन में लीन थे। ऐसे भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त साधन भी कवियों के पास थे। कविता के आदर्श में अभी तक परिवर्तन नहीं हुआ था, किन्तु अंग्रेजों के आने पर ज्ञान-विज्ञान तथा शासन व्यवस्था की नवीन पद्धति से भारतीयों का परिचय हुआ। रीतिकाल में साहित्य राजा और रईसों से पोषित और प्रोत्साहित होता रहा था। अंग्रेज पदाधिकारियों से इस प्रकार का कोई प्रोत्साहन नहीं मिला, फिर भी इस काल में प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के उद्धार का प्रयत्न अंग्रेजों की ओर से हुआ। यूरोपीय विद्वानों द्वारा इतिहास, पुरातत्त्व, भाषा-विज्ञान, प्राचीन भारतीय धर्म और भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन एवं शोधन कार्य आरम्भ करने पर अपरिमित सामग्री प्रकाश में आयी। जीवन की नवीन परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार इस समय गद्य की आवश्यकता का अनुभव हुआ। फलतः गद्य का आश्रय लेना पड़ा। इसीलिए अनेक विद्वान आधुनिक काल को गद्य काल भी कहते हैं। इससे पूर्व हिन्दी में ब्रजभाषा गद्य, राजसथानी गद्य और खड़ी बोली गद्य अविकसित रूप में थे। अर्थात् साहित्य के लिए सशक्त साधन न था। आधुनिक काल में आकर हिन्दी गद्य का प्रारम्भ हुआ–गद्य की नाना साहित्यिक विधाओं का जन्म हुआ, जिसमें निबन्ध, कहानी, उपन्यास आलोचना आदि प्रमुख हैं।

1.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

जिस समय के आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ माना जाता है उस समय से एक शताब्दी पूर्व ही भारत की राजनैतिक स्थिति में बदलाव आना शुरू हो गया था। अंग्रेजी राज्य की नींव सन् 1757 से

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

भारत में पड़ चुकी थी, उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी ने नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराया था। इस पराजय से सम्पूर्ण बंगाल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

देशी रियासतों के राजाओं ने एकत्रित होकर 1857 में पहला स्वतंत्रता समर लड़ा। वे पराजित हुए किंतु इसके दो लाभ हुए। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त हुआ। भारत ब्रिटिश राज्य का उपनिवेश बन गया दूसरे अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षिणिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। नये उद्योग धंधों ने देश की आर्थिक स्थिति उन्नत की। अंग्रेजी प्रचलन ओर शिक्षा के व्यापक प्रसार से जनता में ज्ञान का उदय हुआ। रेल, डाक, तार आदि यातायात और संचार साधनों से देश में सुख-समृद्धि के बीज उत्पन्न हुए। प्रेस के आविष्कार से साहित्य का प्रचार और प्रसार हुआ।

1.2.2 धार्मिक स्थिति

धार्मिक परिस्थितियाँ भी मानव चेतना का प्रभावित किये बिना नहीं रह सकती। ब्रिटिश राज्य की स्थापना के कारण भारत की अर्थनीति शिक्षा पद्धति यातायात के साधनों आदि में बुनियादी परिवर्तन हुए। फलतः समाज के इस नवीनीकरण से पुराने धार्मिक संस्कार, राजनीतियाँ मेल नहीं खाती थी। अतः धर्म में भावना के स्थान पर तर्क, बुद्धि और विवेक का आगमन हुआ। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज राम, कृष्ण मिशन आर्य समाज और थियोसाफिकल सोसाइटी की मान्यताएँ बहुत कुछ बुद्धि विवेक ओर तर्क पर आधारित हैं।

राजा राम मोहन राय ब्रह्म समाज के संस्थापक थे। उन्होंने अकेले खड़े होकर समाज की कुरीतियों पर प्रहार किया। विधवा-विवाह का समर्थन किया। स्त्री-पुरुष के समानाधिकार की मांग की।

सन् 1861 में केशवचंद्र सेन ने प्रार्थना समाज की स्थापना की। इसके प्रमुख उन्नायक महादेव गोविंद राणाडे थे। वे मनुष्य की समानता के पक्ष में थे। जाति प्रथा के विरुद्ध थे। अंतर्जातीय के समर्थक थे। स्त्री शिक्षा पर उन्होंने बराबर बल दिया।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। स्वामी विवेकानंद ने हीनता से ग्रस्त देश को यह अनुभव कराया कि इस देश की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय है। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य, मनुष्य समता, एकता, बंधुत्व और स्वतंत्रता की ओर उन्होंने ध्यान आकृष्ट किया।

सन् 1867 में महर्षि दयानंद ने आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने उत्तर भारत में बड़े प्रभावशाली ढंग से कार्य किया। वैदिक धर्म की ध्वजा पताका को लहराया। अनेक स्कूल-कॉलेज खोलकर शिक्षा का प्रसार किया। अस्पृश्यता पर जितना प्रबल प्रहार आर्य समाज ने किया उतना और किसी ने नहीं। गद्य की भाषा के परिष्कार में आर्य समाज आंदोलन का बहुत महत्त्व है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.2.3 सामाजिक स्थिति

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ-साथ इस देश के सामाजिक संगठनों में विघटन होने लगा। छोटे-छोटे गाँवों की जड़ता टूटने लगी। वे दूसरे गाँवों और शहरों के संपर्क में आने को बाध्य हुए। घेरे में बंधी अर्थ-व्यवस्था राष्ट्रोन्मुख हो चली। जाति प्रथा आर्थिक वर्गों में बदलने लगी किंतु जातीय उच्चता की भावना विलीन नहीं हो सकी।

अंग्रेजी-शिक्षा, यातायात के साधनों, शान्ति और व्यवस्था ने मानव समाज को उनत्ति का अवसर प्रदान किया। देश प्रेम और समाज सुधार के अंकुर प्रस्फुटित हुए।

आधुनिक युग की परिस्थितियों का परिचय देते हुए बाबू गुलाबराय ने लिखा है "अंग्रेजी राज्य के आने से लोगों का ध्यान जीवन की कठोर वास्तविकताओं की ओर गया। जीवन संग्राम बढ़ा और साथ ही जातीय जीवन की भी जागृति हुई। लोग अपनी सभ्यता को महत्त्व देने लगे। जनता ने अपने राजनीतिक अधिकारों को समझा और अपने राष्ट्रीय भाव को प्रकट करना चाहा। हिंदू लोगों ने विदेशी धर्मों का मुकाबला करने के लिए अपने धर्म को बुद्धिवाद के आलोक में परिष्कृत करना आरंभ किया। राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज की और महर्षि दयानंद ने आर्य समाज की स्थापना की। ऐसे बुद्धिवाद और प्रतिद्वंद्विता के समय में जनता के भावों के प्रकाश के लिए पद्य उपयुक्त माध्यम नहीं हो सकता था। अतः अंग्रेजी राज्य के साथ-साथ गद्य का युग आया। पद्य में ब्रजभाषा का साम्राज्य था, किंतु नवीन युग आ जाने पर उसकी कोमलकांता पदावली जीवन की संधर्षमय कठोरभूमि के लिए अनुकूल सिद्ध न हो सकी। ब्रजभाषा गद्य के लिए उपयुक्त न ठहरी। अरबी फारसी और व्यवहार योग्य भाषाएँ न थीं। फलतः खड़ी बोली पहले गद्य की भाषा स्वीकार की गई और बाद में गद्य-पद्य दोनों का माध्यम बनी।

गद्य के नाना साहित्यिक रूपों के विकास एवं प्रसार का कारण छापाखाना (प्रेस) भी बना। इसके अतिरिक्त यातायात के साधन, शांतिपूर्ण व्यवस्था और नयी शिक्षा प्रणाली के आरंभ में भी उसमें योग दिया।

आधुनिक काल के हिंदी-साहित्य को भली-भाँति समझने के लिए उन नवीन परिस्थितियों, शक्तियों एवं विचारों को समझना आवश्यक है, जिनका जन्म 19वीं और 20वीं शताब्दियों में हुआ। आओ इन पर संक्षेप में दृष्टिपात करें। भारत में अंग्रेजी राज्य के स्थापित हो जाने पर नवीन शिक्षा-प्रणाली आरम्भ हुई। नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों से लोग परिचित हुए। इनके परिणामस्वरूप समाज, धर्म और राजनीति सम्बन्धी अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। उनके कारण सामाजिक सुधार की ओर लोगों का ध्यान गया, प्राचीन भारत संस्कृति के पुनरुद्धार का विचार भी उत्पन्न हुआ।

यह काल नवजागरण का काल था। इसी समय पूर्वी ओर पश्चिमी विचारधाराओं का संघर्ष भी आरम्भ हो गया। कुछ लोग पश्चिमी प्रवाह में बह गए, कुछ लोग रूढ़िवादी बने रहे, इस तरह दोनों विचारधाराओं के साथ-साथ नवीन वैज्ञानिक भावधारा का साहित्य में प्रवेश इसी समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिणाम था। इसी काल में राष्ट्रीयता की भावना भी पनपी, विचार-स्वतन्त्रता भी अंकुरित हुई। फलतः इस काल

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

के अन्तर्गत कविता निबन्ध, उपन्यास, नाटक, कहानी, समालोचना, जीवनी आदि नाना साहित्य-रूपों का उद्‌भव हुआ। इस पाठ में इन सभी साहित्य रूपों में से केवल कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी और निबन्ध आदि के विकास का परिचय दे रहे हैं। इसलिए यहाँ हम इन्हीं से आपका संक्षिप्त परिचय करवा रहे हैं।

1.2.4 बोध प्रश्न

1. आधुनिक काल की समय–सीमा बताइए।
2. आधुनिक काल की भाषा कौन–सी थी?
3. आधुनिक काल की मुख्य समस्याएँ कौन–सी थीं?

1.3 आधुनिक कविता : सामान्य परिचय

यह तो आपको पता ही है कि हिंदी साहित्य का आधुनिक काल 1850 ई. के लगभग से आरंभ होता है। और इसे आधुनिक इसलिए कहा जाता है कि विश्व साहित्य और संस्कृति में पाश्चात्य प्रभाव से, राजनीतिक विचार-धारा, विज्ञान की उन्नति और मशीन के उपयोग से हमारे जीवनक्रम में ऐसा परिवर्तन हो गया कि हमें अपनी पुरानी मान्यताओं ओर रूढ़ियों से अरुचि हुई और हमने स्वतन्त्र चिन्तन को अपना पथ-प्रदर्शक मान लिया। अंग्रेजी के माध्यम से भारत के शिक्षित वर्ग पर उन्नीसवीं सदी के राष्ट्रीयता का प्रभाव पड़ना आरम्भ होता है और दूसरी तरफ पाश्चात्य विचारकों–मार्क्स, डार्विन तथा फ्रॉयड का भी प्रभाव पड़ता है। अंग्रेजों के रहन-सहन, उनके सोचने-विचारने के ढंग तथा उनकी भाषा में अनुदित विश्व साहित्य ने हमें वैज्ञानिक युग में ला खड़ा किया।

लेकिन यह आधुनिक काल अपने में किस-किस प्रकार की विशेषताएँ लिए है, यह जानने के लिए उसकी परिस्थिति का सामान्य परिचय पा लेना चाहिए। इस विषय में हम संक्षेप में इतना ही कहेंगे कि सन् 1857 के विद्रोह के बाद भारत की राजनीति बदल गयी। भारतीय जनता जिस तरह की धारणाओं और विचारों के प्रभाव में थी, वह इस विद्रोह के असफल होने के कारण जाता रहा और उसे लगा कि अपनी दयनीय दशा को सुधारने के लिए स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए, तभी महारानी विक्टोरिया के शासन की घोषणा हुई। वह घोषणा उदार थी, इसलिए भारतीयों पर फिर से राजभक्ति का असर पड़ा। एक ओर राजभक्ति और दूसरी ओर देशभक्ति इन दोनों की मिश्रित भावना को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

> अंग्रेज राज सुख साज सबै सुखकारी।
> पे धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

रीतिकाल के बाद हिंदी कविता में पुराने के साथ-साथ नये विचारों के प्रवर्तन के कारण सबसे बड़े कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र ही हुए। आधुनिक काल के प्रथम चरण को इसी कारण भारतेंदु-युग कहा जाता है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सन् 1903 के लगभग से परिस्थिति फिर बदलती है ओर कांग्रेस सारे देश पर छा जाती है। अब राज-भक्ति समाप्त हो जाती है और देशभक्ति युग-दर्शन बन जाती है। जनता भूत, वर्तमान ओर भविष्य के बारे में इस प्रकार सोचने लगती है–

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारे आज मिलकर ये समस्यायें सभी।। –मैथिली शरण गुप्त

यह द्विवेदी युग की आवाज थी और इस युग के प्रवर्त्तक थे– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी।

इसके बाद बाता है– प्रथम महायुद्ध (सन् 1914)। इस युद्ध में भारतवासी अंग्रेजों को इस आशा से सहायता देते हैं कि वे उन्हें स्वतन्त्रता देंगे। लेकिन अंग्रेज अपना वादा पूरा नहीं करते। इसके विरोध में गाँधीजी के नेतृत्व में सन् 1921 का सत्याग्रह आंदोलन छिड़ता है। इस आन्दोलन में चारों तरफ नवयुवकों का संगठन आरम्भ होता है। देहाती अंचलों में भूमि की समस्या को लेकर अंग्रेजी शासन तथा जमींदारों, किसानों की टक्कर आरम्भ होती है। शहरों में मजदूरों की व्यापक हड़तालें होती हैं। पर चोरी-चौरा (गोरखपुर जिला) में किसानों का एक दल पुलिस अफसर के अन्यायपूर्ण किसान-विरोधी रवैये को लेकर हमला करता है। इसी आधार पर गाँधीजी पूरे असहयोग आन्दोलन को वापस ले लेते हैं। फल यह होता है कि समाज में घोर निराशा और स्कूल कॉलेजों मे 1917 की अक्तूबर क्रांति के प्रभाव से आयी स्वच्छन्दता मिलकर साहित्य में कल्पनाशीलता को बढ़ाती है। दूसरी तरफ दमन होता है और साहित्यकार विशेष रूप से कवि, संघर्ष से भागकर कल्पना लोक का वासी हो जाता है। वह पुकार लगाता है–

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर-लहरी
अम्बर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे।

इस कल्पना-लोक के वासी कवि छायावादी कहलाए और उनका युग छायावाद-युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

1931 में कांग्रेस फिर अंग्रेजी राज्य से मोर्चा लेती है किन्तु फिर भी सत्य-अहिंसा का आन्दोलन क्रूर शासन का कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता। रूस की जनक्रांति से प्रेरणा लेकर हमारे यहाँ भी किसान-मजदूर का राज स्थापित करने के लिए क्रांतिकारी साहित्य लिखा गया है। इसका स्वर यथार्थवादी होता है, जो छायावाद की कल्पनाशीलता का विरोध करता है। ऐसा साहित्य प्रगतिवादी कहा जाता है और इसका युग प्रगतिवाद युग।

दूसरे महायुद्ध के समाप्त (1945) होने से पहले ही प्रगतिवाद का विरोध प्रारम्भ हो जाता है और सन् 1943 में फिर निराशा और घुटन गहरी हो जाती है। छायावादी कल्पनालोक और प्रगतिवादी यथार्थ

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

दोनों के समाप्त होने पर अब कवि व्यक्तिवादी काव्य लिखता है। आगे चलकर इसी का नाम प्रयोगवादी या नई कविता हो जाता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसके आधार पर आधुनिक काल की काव्यधाराओं को मोटे तौर पर पाँच रूपों में विभाजित कर सकते हैं–

1. भारतेन्दु युगीन काव्यधारा (सन् 1850 से सन् 1900)
2. द्विवेदी युगीन काव्यधारा (सन् 1900 से 1918-25 तक)
3. छायावादी काव्यधारा (सन् 1919-25 से सन् 1936-42 तक)
4. प्रगतिवादी काव्यधारा (1936-42 से 1946-48 तक)
5. प्रयोगवादी और नई कविता की काव्यधारा (सन् 1948 से अब तक)

इन काव्यधाराओं में भी निश्चित विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं है कि इनका आरम्भ और अन्त किस निश्चित समय पर हुआ। फिर भी प्रवृत्तियों अथवा प्रेरकों के आधार पर इनकी पहचान की जा सकती है।

1.4 भारतेंदु–युगीन काव्यधारा

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र राष्ट्रीय जनगरण के अग्रदूत थे। उनके युग में रातिकालीन परिपाटी की कविता का अवसान और राष्ट्रीय एवं समाज सुधार भावना की कविता का उदय हुआ। इस युग की कविता की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. इस काल में नायिका-भेद और अलंकार ही कविता के विषय नहीं रहे। समय के अुनसार उसमें वर्तमान के प्रति असन्तोष, समाज का उद्धार, देशप्रेम आदि का स्वर भी प्रखर हुआ। साथ ही, राजभक्ति की भी प्रधानता रही।
2. राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ सामाजिक स्थिति की ओर भी कवियों का ध्यान आकर्षित हुआ। सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों के विरोध में भी कविता लिखी गई।
3. भक्तिकालीन और रीतिकालीन परिपाटी की कविताएँ भी लिखी जाती रहीं, पर उनमें उर्दू-साहित्य के 'दर्द' आ जाने से कुछ नवीनता आ गई।
4. प्रकृति–वर्णन की ओर भी कवियों का ध्यान गया ओर उद्दीपन के अतिरिक्त आलम्बन रूप में भी प्रकृति चित्रण होने लगा।
5. कविता अब किसी राजा को प्रसन्न करने के लिए न लिखी जाकर जनता की भावनाओं को व्यक्त करने का साधन बन गई। उसमें यथार्थ का समावेश हुआ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

6. भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अपेक्षा पश्चिमी सभ्यता ओर संस्कृति को उच्च बताने वालों के विरुद्ध व्यंग्य और हास्यपूर्ण रचनाएँ लिखी गयी।
7. भारत के गौरवमय अतीत को भी कविता का विषय बनाया गया।
8. सजीवता और जिन्दादिली इस युग की कविता की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। कवि लोकगीत, होली, कजली आदि लोक-जीवन में व्याप्त काव्य-प्रकारों को भी अपनाने लगे।
9. छन्दों में कवित्त, सवैया और दोहा के अतिरिक्त लावनी का विशेष प्रयोग हुआ।
10. यद्यपि इस युग में काव्य की भाषा ब्रजभाषा रही और गद्य की खड़ी बोली, लेकिन अनेक कवियों ने अपने काव्य में खड़ी बोली का प्रयोग करने की भी कोशिश की। इस युग के अन्त में श्रीधर पाठक के ब्रज और खड़ी बोली दोनों की रचना की।

निस्सन्देह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस युग के सर्वप्रमुख कवि हैं। उनका जन्म सन् 1850 में हुआ, सन् 1857 की जनक्रान्ति से सात वर्ष पूर्व वे केवल 34 वर्ष जीवित रहे। पर इसी छोटी सी आयु में ही उन्होंने 175 ग्रन्थ लिखे, नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता, निबन्ध, इतिहास आदि सभी विषयों से सम्बन्धित हैं। भारतेन्दु जी ने कवि-समाज की स्थापना की और कई पत्रिकाएँ निकालीं। यही नहीं, उन्होंने कितने ही लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन दिया। इन सब बातों के कारण ही वे युग-प्रवर्तक कहलाते हैं।

भारतेन्दु बाबू की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है– प्राचीन और नवीन का समन्वय। वे कविता में ब्रजभाषा और गद्य में खड़ी बोली के पक्षपाती हैं। ब्रजभाषा में वे एक साथ भक्ति और शृंगार की कविता लिखकर प्राचीन कवियों की कोटि में पहुँचते हैं– और नवीन ढंग की देश-भक्ति और समाज-सुधार की कविताएँ लिखकर नये कवियों का नेतृत्व करते हैं। वे सच्चे प्रेमी थे। निम्नलिखित सवैये में उनका प्रेमी रूप झलकता है–

हमहूं सब जानति लोक की चालन क्यों इतनी बतरावती हो,
हित जामें हमारो हे सोई करो, सखियां तुम मेरी कहावती हौ।
हरिचन्द जू यामें न लाभ कछू, हमें बातनि क्यों बहरावती हौ,
सजनी मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कौन का समुझावती है।।

उनके भक्ति-भावना वाले अनेक पद भी मिलते हैं कवित्त-सवैये ओर पद उन्हें प्राचीन कवि की पंक्ति में बिठाते हैं, तो 'भारत दुर्दशा' नाटक में 'आवहु सब मिलि रोवहु भाई। हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।' अथवा 'नील देवी' में 'कहा करुणानिधि केशव तुम सोये। जगत नाहि अनेक जतन करि भारतवासी रोये।' जैसी पंक्तियाँ उन्हें युग का प्रतिनिधि कवि बनाती हैं। उनकी ऐसी ही देशभक्ति की रचनाओं को देखकर आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा था कि भारतेन्दु की कविता में सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था। तीसरी विशेषता उनकी कविता में प्रकृति-वर्णन की है। उन्होंने ही सबसे पहले

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण की कविताएँ लिखीं। उनकी गंगा और यमुना नदियों पर लिखी कविताएँ इसका प्रमाण है। लेकिन प्रकृति-वर्णन में उनका मन विशेष नहीं रमा।

भारतेन्दु के बाद उनके युग के दूसरे प्रमुख कवि हैं श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन'। वे अपनी कविताएँ विशेष अवसरों पर ही लिखते थे। वे कभी दादा भाई नौरोजी के पार्लियामेंट मेम्बर होने पर प्रसन्नता प्रकट करते हैं, तो कभी महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती मनाते हैं। कभी देव-नागरी के कचहरी-प्रवेश पर गद्‌गद हो उठते हैं, तो कभी सनातन धर्म की स्तुति गाने लगते हैं। देश का ध्यान वे सदा रखते हैं। उनके 'सौभाग्य' नाटक में देश की दशा का सजीव चित्र है।

इस युग में अन्य कवियों में सर्वश्री प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह और पं. अम्बिका प्रसाद व्यास प्रमुख हैं।

1.4.1 बोध प्रश्न

(1) भारतेन्दु युगीन काव्यधारा का समय क्या माना गया है?

(2) भारतेन्दु का जन्म किस वर्ष में हुआ था?

(3) भारतेन्दु युगीन कवियों के नाम बताएं।

1.5 द्विवेदी युगीन काव्यधारा

भारतेन्दु-युग में राजभक्ति और देशभक्ति के साथ समाज सुधार की कविता होती थी, इसे आप जान ही गये हैं साथ ही आपको यह भी पता चल गया है कि काव्य की भाषा ब्रजभाषा थी और गद्य की खड़ी बोली। यह आप जानते ही हैं कि भारतेन्दु ने ब्रजभाषा को देशभक्ति की भावनाओं को व्यक्त करने योग्य बनाया किन्तु द्विवेदी-युग में राजभक्ति समाप्त हुई और कांग्रेस के रूप में जनता ने देशभक्ति का परिचय दिया। अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष अब हमारा लक्ष्य था। राष्ट्रीयता की भावना सारे देश में व्याप्त हो गई। फलस्वरूप साहित्य में भी उनकी अभिव्यक्ति हुई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने गद्य और पद्य की भाषा का अन्तर मिटाकर खड़ी बोली को ही दोनों के लिए उपयुक्त ठहराया। द्विवेदी जी ने स्वयं खड़ी बोली में कविता लिखी। उनके अनुकरण पर श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा और अयोध्यासिंह 'हरिऔध' ने ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ी बोली को अपनाया। श्रीधर पाठक आधुनिक खड़ी बोली कविता के जनक ही हैं।

आचार्य द्विवेदी ने छन्दों में भी क्रांति की। हिंदी कविता के लिए संस्कृत के छन्दों की उपयोगिता पर उन्होंने बल दिया और छोटे-छोटे मात्रिक छन्दों को हिंदी-प्रकृति के अनुकूल बताया।

भाषा और छन्द के अतिरिक्त भाव के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ। शृंगारिक कविता की भर्त्सना की गई और नैतिकता-प्रधान रचनाओं का समर्थन किया गया। इस युग की कविता में न तो कल्पना की उड़ान है और न भावुकता की अधिकता। वह तो सीधी-सादी है। शृंगार से अछूती और सात्विक भावों से

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

भरी यह कविता इतिवृत्तात्मक कहलायी। आशा, विश्वास, नैतिकता, मातृभूमि-प्रेम और समाजोत्थान की भावना इसमें विशेष रूप से मिलती है। संक्षेप में द्विवेदी युग की कविता में हम निम्नलिखित विशेषताएँ पाते हैं–

1. काव्य के क्षेत्र में खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई ओर उसमें ब्रजभाषा जैसी सरसता लाने का प्रयत्न किया गया।
2. कवित्त, सवैये जैसे पुराने छन्दों का बहिष्कार किया गया और संस्कृत छन्दों को अपनाया गया। कुछ नये छन्द भी प्रयोग में लाये गये।
3. कल्पना, भावुकता ओर श्रृंगार को छोड़कर उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक (कथानक) कविताएँ लिखी गयीं।
4. कविता में आदर्शवाद पनपा और वह मनोरंजन की वस्तु न होकर हमारे जीवन को अभिव्यक्त करने लगी।

द्विवेदी-युग के कवियों में तीन प्रकार के कवि हैं– एक तो वे जो पहले ब्रजभाषा में कविता लिखते थे और फिर खड़ी बोली में लिखने लगे। दूसरे वे जो शुद्ध खड़ी बोली में लिखते थे और तीसरे वे, जो एक मात्र ब्रजभाषा में कविता लिखते थे।

पहले प्रकार के कवियों में सर्वश्री पं. श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीधर पाठक (1876-1928 ई.) पहले ब्रजभाषा में कविता करते थे और उसके सफल कवि थे, लेकिन जब खड़ी बोली का प्रचार हुआ तो वे खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। फिर भी उनकी कविता में ब्रजभाषा का प्रभाव बना रहा, क्योंकि उसकी मिठास उनसे छोड़ी नहीं गई। वे स्वतन्त्र प्रकृति के कवि थे और स्वच्छन्दतावादी कविता के आदि कवि। प्रकृति-प्रेम और स्वदेश-प्रेम उनकी कविता के मुख्य विषय थे। 'कश्मीर-सुषमा' में प्रकृति-प्रेम और 'भारत गीत' में स्वदेश-प्रेम की जो कविताएँ हैं, वे बड़ी सरल और सुन्दर हैं। 'एकांतवासी योगी', 'भ्रांत पथिक', 'ऊजड़ गाँव' आदि उनकी अन्य कृतियाँ हैं। इनमें से पिछली दो अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ की 'ट्रेवलर' और 'डेजर्टेड विलेज' नामक कृतियों के अनुवाद हैं। ये कृतियाँ ब्रजभाषा में हैं। सब मिलाकर पाठक जी खड़ी बोली कविता के प्रथम कवि थे। उनकी कविता का एक उदाहरण देखिए।

आज रात इससे परदेशी चल कीजै विश्राम यहीं,
जो कुछ वस्तु कुटी में मेरी करो ग्रहण संकोच नहीं।
तृष्णा शैया ओर स्वल्प रसोई पाओ स्वल्प प्रसाद,
पैर पसार चलो निद्रा लो मेरा आशीर्वाद।।

पं. नाथूराम शंकर शर्मा ने भी पाठक जी की भाँति ब्रजभाषा और खड़ी बोली में कविता की है। ये आर्य समाजी थे, इसलिए इनके काव्य में उपदेशात्मकता अधिक है। वैसे इन्होंने श्रृंगारी कविताएँ भी बहुत लिखी हैं। इनकी कविता में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग बड़ी खूबी से हुआ है। मात्रिक और वर्णवृत्त

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

दोनों में समान रूप से टकसाली कविता लिखना इनका स्वभाव था। छन्दों पर इन जैसा अधिकार कम ही कवियों का होता है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (1865-1947 ई.) भी पहले ब्रजभाषा में ही लिखते थे। इनका 'रसकलस' ब्रजभाषा की महत्त्वपूर्ण कृति है और उससे ये रीतिकालीन आचार्यों की कोटी में पहुँच जाते हैं। उसके अतिरिक्त भी ब्रजभाषा में इनकी रचनाएँ मिलती हैं। लेकिन आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से ये खड़ी बोली में कविता करने लगे। ये एक ओर उर्दू छन्दों की छटा है, तो 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' में संस्कृत छन्दों की। भाषा भी चौपदों में चलती हुई मुहावरेदार है तो महाकाव्यों में संस्कृतगर्भित। इस तरह ये सब प्रकार की भाषा में सिद्धहस्त थे।

इनकी अनेक कृतियाँ हैं, जिनमें 'प्रियप्रवास', 'रस कलस', 'चौखे चौपदे', 'चुभते चोपदे', 'बोल-चाल', 'वैदेही वनवास', 'पारिजात' आदि प्रसिद्ध हैं। 'प्रियप्रवास' इनकी अमर कृति है। 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली का सफल महाकाव्य है। हिंदी-साहित्य में 'प्रियप्रवास' का ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसने महाकाव्यों की धारा ही बदल दी।

हरिऔध जी के 'वैदेही वनवास' और **'परिजात'** इसी शैली के महाकाव्य हैं, पर वे 'प्रियवास' की कोटि के नहीं है। वस्तुतः 'प्रियप्रवास' ही इनकी अमर रचना है।

मैथिलीशरण गुप्त (1886-1965) द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्हें हम अपने युग का प्रतिनिधि कवि कहते हैं। अपने समय की प्रचलित सभी शैलियों में उन्होंने काव्य-रचना की है। यदि आप राष्ट्रीयता को लें, तो 'भारत भारती' प्रस्तुत है। छायावाद को लें तो 'साकेत' ओर यशोधरा' के गीत देखिए और रहस्यवाद की झलक पानी हो तो वह 'झंकार' में मिलेगी। इसके अतिरिक्त सभी संस्कृतियों के प्रतीक-रूप काव्य ग्रन्थ लिखने में वे अद्वितीय है। उदाहरण के लिए महाभारत कालीन संस्कृति 'जयद्रथ-वध', 'वक-संहार', 'वन-वैभव', 'सेरन्ध्री', 'द्वापर' और 'जयभारत' में है। पौराणिक संस्कृति 'चन्द्रहास', 'तिलोत्तमा', 'शकुन्तला' ओर 'नहुष' में है। रामायण-कालीन संस्कृति 'पंचवटी, 'साकेत' ओर 'प्रदक्षिणा' में है। बौद्धकालीन संस्कृति 'अनध', 'यशोधरा' ओर कुणाल' में है। मध्य-कालीन संस्कृति 'रंग में भंग', 'गुरुकूल', 'गुरु तेगबहादुर' और 'सिद्धराज' में है। मुस्लिम संस्कृति 'अर्जन और विसर्जन' तथा 'काबा और कर्बला' में है। यदि सामाजिक जीवन की झांकी लेनी हो तो 'किसान' और 'विश्ववेदना' देखिए। इस प्रकार उनसे कोई क्षेत्र छूटा नहीं है। इसलिए उन्हें राष्ट्रकवि कहा जाता है।

सन् 1906 से उनकी रचनाएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगी थी। तब से सन् 1965 के प्रारम्भिक महीने तक वे निरन्तर लिखते रहे। वे आचार्य द्विवेदी जी के शिष्य थे और हिंदी के प्रत्येक कवि को उनकी रचनाओं से प्रेरणा मिली है। छायावादी कवियों तक को उन्होंने प्रभावित किया है।

उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना 'भारत-भारती' है। इसमें भारत के अतीत और वर्तमान का बड़ा ही भावपूर्ण चित्रण है। इसके बाद 'जयद्रथ-वध' और 'पंचवटी' के नाम आते हैं। 'पंचवटी' में लक्षण के चरित्र का उत्कर्ष वर्णित है। लेकिन इनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास 'साकेत' और यशोधरा में हुआ है। ये दोनों प्रबन्ध-काव्य हिंदी की निधि हैं। 'साकेत' में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के तप और त्याग का

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

गुणगान है और 'यशोधरा' में गौतम बुद्ध की पतनी यशोधरा के चरित्र की उज्ज्वलता का दिग्दर्शन। भारतीय काव्यों में दोनों ही उपेक्षित रही हैं।

'साकेत' नाम इसलिए रखा गया कि समस्त कथा का केन्द्र साकेत अथवा अयोध्या है। एक बार कथा का केन्द्र चित्रकूट बनता है, तब सारी अयोध्या ही वहाँ पहुँच जाती है। उर्मिला का विरह-वर्णन इसकी विशेषता है। इसके नवम् और दशम् वर्ग उसी के आँसुओं से भरे हैं। इसकी दूसरी विशेषता कैकेयी की आत्मग्लानि का प्रकाशन है। भारत और माण्डवी के चरित्र भी अच्छे निखरे हैं। राम भूतल को स्वर्ग बनाने आये हैं। वे आर्य-संस्कृति के रक्षक हैं। यद्यपि इसमें छायावादी अभिव्यंजना-पद्धति को अपनाया गया है, तथापि किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति, युद्ध की विभीषिका, राज्य-व्यवस्था में पूजा का अधिकार, सत्याग्रह विश्वबन्धुत्व आदि सभी बातों का समावेश सफलता से हुआ है। युग की छाप तो पग-पग पर मिलती है।

'यशोधरा' में गौतम के गृहत्याग और वह भी पत्नी को कहे बिना गृहत्याग करने से उत्पन्न पतिव्रता की वेदना का प्रकाशन है। नारी-जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति इस काव्यकृति की विशेषता है। कुछ लोगों की दृष्टि में यह 'साकेत' से भी बढ़कर है।

अन्य रचनाओं में 'द्वापर', 'नहुष' 'विष्णुप्रिया' आदि प्रमुख हैं। गुप्त जी ने बंगला में 'विरहिणी ब्रजांगना', 'मेघनाथ-वध', 'प्लासी का युद्ध' आदि रचनाओं का हिंदी में अनुवाद भी किया है जो अत्यन्त सुन्दर हैं।

गुप्त जी की भाषा शुद्ध और परिमार्जित खड़ी बोली है। पदावली सरल और कोमल है। उनकी रचनाओं में चमत्कार की प्रवृत्ति मिलती है। वे समन्वयवादी कवि है। पक्के वैष्णव होते हुए भी राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखने वाले हैं। प्राचीन और नवीन को समान रूप से महत्त्व देना उनका स्वभाव है।

खड़ी बोली में ही श्रेष्ठ कविताएँ लिखने वाले कवियों में मुकुटधर पाण्डेय का नाम भी उल्लेखनीय है।

द्विवेदी युग में आपको ऐसे ही कवि मिलेंगे, जो खड़ी बोली की कविता के पर्याप्त प्रचार के बावजूद ब्रजभाषा में रचना करते रहे। ऐसे कवियों में केवल दो का विशेष महत्त्व है—एक है बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ओर दूसरे हैं सत्यनारायण 'कविरत्न'। रत्नाकर की विशेषता यह है कि आधुनिक काल में रह कर भी उन्होंने प्राचीन परिपाटी का पालन किया। 'हरिश्चन्द्र', 'गंगावतरण' और 'उद्धव शतक' तीनों ब्रजभाषा की बहुमूल्य कृतियाँ हैं। इन में भी 'उद्धव शतक' तो अद्वितीय है। 'बिहारी सतसई' पर बिहारी रत्नाकर' नाम की इनकी टीका भी उच्च कोटि की है। रत्नाकर जी के काव्य मं भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर सामंजस्य है। वे शब्द चित्र अंकित करने में अद्वितीय हैं।

सत्यनारायण 'कविरत्न' 'ब्रजकोकिल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। रतनाकर में यदि भक्तिकाल और रीतिकाल का समन्वय है तो सत्यनारायण 'कविरत्न' में भक्तिकाल और आधुनिक काल का। ये ब्रजभाषा के अनन्य प्रेमी थे। 'हृदय तरंग' में इनकी रचनाएँ संग्रहीत हैं। 'भ्रमरदूत' नामक काव्य में इन्होंने देश की वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा का अच्छा वर्णन किया है। इनके उपालम्भ के पद

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

और सवैये भी उत्तम हैं। इन्होंने भवभूति के 'उत्तर रामचरित' और 'मालती माधव' नाटकों का सुन्दर अनुवाद भी किया है।

द्विवेदी-युग में उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त खड़ी बोली और ब्रजभाषा के अन्य उल्लेखनीय कवि भी हुए है। उनमें से खड़ी बोली के कवियों में सर्वश्री रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और लोचन प्रसाद पांडेय और ब्रजभाषा के कवियों में राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' और वियोगी हरि के नाम स्मरण रखने योग्य हैं।

1.5.1 बोध प्रश्न

(1) **'प्रियप्रवास' किसकी रचना है?**

(2) **मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं के नाम बताइए।**

1.6 छायावादी काव्यधारा

इस युग में भारतीय राजनीति में ऐसा परिवर्तन हुआ कि कविता का स्वरूप ही बदल गया। बात यह हुई कि सन् 1914 से जो प्रथम महायुद्ध हुआ, उनमें गाँधी जी ने यह सोचकर अंग्रेजों की सहायता की थी कि वे भारत को स्वतंत्रता देने का वचन पूरा करेंगे। दो साम्राज्यवादी देशों के इस युद्ध में जनता पर नये करों का बोझ पड़ा और महंगाई भयंकर रूप धारण करने लगी। अंग्रेंजी ने स्वतन्त्रता-आन्दोलन का दमन किया फलस्वरूप गाँधी जी ने सन् 1921 में सहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। दुर्भाग्य से इस आन्दोलन को भी गाँधी जी ने वापस ले लिया और देश में घोर निराशा का वातावरण छा गया। इस निराशापूर्ण वातावरण में जो काव्य-प्रवृत्ति विकसित हुई, उसका नाम छायावाद पड़ा।

छायावाद क्या है? इस प्रश्न का उत्तर आज तक कोई ठीक नहीं दे पाया। जितने विचारक उतने ही मत। हाँ, जिस परिस्थिति में यह जन्मा ओर जो कवि इसके जनक कलाये उनकी मनःस्थिति तथा उनके काव्यों की भूमिकाओं को समझ लेने पर इसका स्वरूप स्पष्ट हो सकता है।

सबसे पहली बात तो यह है कि छायावादी कवियों पर अंग्रेजों के रोमांटिक कवियों का प्रभाव है। इन कवियों में वर्ड् सवर्थ, शैले, कीट्स, ब्राउनिंग आदि प्रमुख हैं। अंग्रेजी रोमांटिक कविता में राजनीति और साहित्य के बन्धनों का तिरस्कार होता है। हिंदी के छायावादी कवियों की भी यह विशेषता रही है। वे यथार्थ जीवन की कटुता से मुँह मोड़कर, अर्थात् राजनीति से विमुख होकर, कल्पनालोक में विचरण करने वाले हैं। इसीलिए उन्हें पलायनवादी कहा जाता है। (पलायन का अर्थ है भागना)। दूसरी बात यह है कि वे सामाजिक बन्धनों को भी स्वीकार करते हैं। तीसरी बात साहित्य और कला के सिद्धान्तों में क्रान्ति से सम्बन्धित है। उन्होंने भाव और कला दोनों ही पत्रों में परिवर्तन किये कि जनता उन्हें समझ न सकी और कविता की अस्पष्टता को लोगों ने 'छायावाद' कह दिया अर्थात् जो समझ में न आये, वह छायावाद है। कुछ लोग प्रतीकों के माध्यम से भाव व्यक्त करने को छायावाद कहते हैं। प्रतीकवाद क्या है? दुःख के लिए 'कांटा', सुख के लिए 'फूल', आशा के लिए 'प्रभात' ओर निराशा के लिए 'रात' जैसे

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

शब्दों का प्रयोग करना प्रतीकवाद है। कुछ का मत है कि प्रकृति में आत्मा या परमात्मा की छटा देखना छायावाद है। यहाँ छायावाद रहस्यवाद-सा हो जाता है। आचार्य शुक्ल छायावाद को एक शैली मानते हैं। डाक्टर नगेन्द्र छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का 'विद्रोह' मानते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि उसमें द्विवेदी युग की शुष्कता के स्थान पर सूक्ष्म भावों से परिपूर्ण सरसता रहती है। वास्तव में द्विवेदीयुगीन कविता के पश्चात् नवीन भावविन्यास, नवीन भावना, नवीन छन्द और नवीन अलंकार-युक्त कविता को ही छायावाद नाम दिया गया।

छायावाद युग की कविता की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. निराशा तथा अतृप्त प्रेम के कारण संसार में सुख का अनुभव न करने के कारण काल्पनिक संसार बनाने की इच्छा करना।
2. आदर्श महापुरुष अथवा राजा के स्थान पर सामान्य कृषक, मजदूर, भिखारी, विधवा आदि को काव्य का विषय बनाकर मानव-गौरव की प्रतिष्ठा करना।
3. सामाजिक भावनाओं के स्थान पर व्यक्तिगत भावनाओं को महत्त्व देना और अपने ही दृष्टिकोण से विश्व को देखना।
4. कविता में घटनाओं की अपेक्षा हृदय की सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करना।
5. प्रकृति का आलम्बन अर्थात् स्वतन्त्र रूप में चित्रण करना और उसे प्रमाण तथा संवेदनशील मानकर चलना।
6. भारत और यूरोप के विभिन्न दर्शनों के अध्ययन के फलस्वरूप कविता में आध्यात्मिकता का प्रकाशन। प्राचीन रहस्यवादी कवियों की कविता, रविन्द्र की 'गीतांजलि', अंग्रेजी कवियों की भाव-प्रवणता और स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का घुला-मिला रूप इस आध्यात्मिकता को नया रूप देता है।
7. सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष के कारण बन्धनों को ठुकराना और स्वच्छन्दप्रेम व व्यंजना करना।
8. स्वदेश-प्रेम के प्रसंग में बलिदान-भावना का प्रकाशन और देश के अतीत गौरव, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सम्पन्नता की स्मृति में लीन रहना।
9. छोटे-छोटे मात्रिक छन्दों का प्रयोग, जिनमें दो मात्रिक छन्दों के मिश्रण बने हुए अतुकान्त छन्द और मुक्त छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त हुए।
10. इस विधान में अलंकार-विधान बदल गया। अब तक मूर्त (दिखाई न पड़ने वाले) के लिए मूर्त उपमान ही प्रयोग में आते थे। अब मूर्त के लिए अमूर्त (न दिखाई पड़ने वाले) उपमानों का प्रयोग होने लगा। यही नहीं, अमूर्त भावनाओं के लिए मूर्त उपमान लाये जाने लगे। उदाहरणार्थ 'उच्चाकांक्षाओं से तरुवर' में मूर्त के लिए अमूर्त और 'जीवन की जटिल समस्या है, बढ़ी समस्या है, बढ़ी जटा सी केसी' में अमूर्त के लिए मूर्त उपमान प्रयुक्त हुए हैं। इनके साथ-साथ

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

मानवीनीकरण और विशेषण-विपर्यय दो नये अलंकार विशेष रूप से ग्रहण किए गए। जड़ पदार्थ को चेतन मानकर उसमें मनुष्य के गुणों का आरोप मानवीकरण और विशेषण को अपने स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर लगाना विशेषण-विपर्यय है। निराला की जुही की कली' और पन्त की 'छाया' में कली और छाया में स्त्री का रूप देखना मानवीकरण के उदाहरण हैं। 'गीला गान' और 'अधीर वीणा' में 'गीला' और अधीर वीणा' क्रमशः रोते हुए और अधीर व्यक्तियों के विशेषण हैं, जिनके द्वारा गाये जाने वाले गान में सरसता और बजायी जाने वाली वीणा में अधीरता का आरोप हुआ है।

छायावाद के प्रमुख कवियों में सर्वश्री जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा की गणना होती है। इसमें से प्रसाद जी (1889-1937 ई.) छायावाद के प्रवर्तक माने जाते है। काशी निवासी इस सहकवि ने घर पर ही शिक्षा पाई और इतिहास, दर्शन, साहित्य आदि सभी का गम्भीर अध्ययन किया। ये एक साथ कवि, नाटककार, कथाकार, निबन्ध-लेखक, आलोचक और इतिहासवेत्ता थे। कवि के रूप में इन्होंने पहले ब्रजभाषा में लिखना प्रारम्भ किया। उनकी ब्रजभाषा की कविताओं का संग्रह 'चित्रधार' हैं इसके बाद इनकी खड़ी बोली की कविताओं का प्रथम समूह 'कानन कुसुम' है। ये कविताएँ द्विवेदी-युग की कविताओं से मिलती-जुलती हैं। उसके बाद तो 'झरना', 'आँसू', 'लहर' और कामायनी' जैसी एक से एक बढ़कर रचनाएँ उन्होंने दी। 'झरना' छायावादी कविता का प्रथम ग्रन्थ है।

प्रसाद जी की कविता के मुख्य विषय हैं— प्रेम प्रकृति और अतीत गौरव। प्रेम में ईश्वरीय और व्यक्तिगत दोनों प्रकार के प्रेम का समावेश होता है। दोनों प्रकार के प्रेम की व्यंजना उनके प्रसिद्ध विरह काव्य 'आँसू' में हुई है। वे आँसू यद्यपि एक विरही कवि के हैं, तथापि उनमें विश्व कल्याण की भावना भी छिपी हुई है। उनका कहना है—

सब का निचोड़ लेकर तुम, सुख से सूने जीवन में।
बरसो भारत हिम-कण-सा, आँसू इस विश्व सदन में।।

'कामायनी' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति ही नहीं, अपने युग की महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, आदि वृत्तियों के चित्रों के साथ मानव-जीवन में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा का मार्ग बताया गया है। 'कामायनी' के पात्रों में मनु मन के प्रतीक हैं, श्रद्धा हृदय की और इड़ा बुद्धि की। श्रद्धा आनन्दलोक की ओर जाती है। लेकिन बिना इड़ा के उसकी सार्थकता नहीं। हृदय और बुद्धि के संयोग, भोग और योग, ग्रहण और त्याग, संसार और स्वर्ग का एकीकरण 'कामायनी' का लक्ष्य है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (1896-1961) हिंदी के अनुपम विभूति थे, जिन्होंने छायावादी कविता में विद्रोह, पौरुष और संघर्ष का स्वर भरा। इनकी शिक्षा बंगला में हुई। खड़ी बोली इन्होंने अपनी पत्नी की प्रेरणा से सीखी और सभी प्रकार की रचनाएँ लिखीं। इनकी सबसे पहली रचना 'जूही की कली' थी, जो 'सरस्वती' में नहीं छप सकी थी। मुक्तछन्द के प्रवर्तक निराला जी का हिंदी में विरोध भी बहुत

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हुआ, पर वे बढ़ते चले गये। 'परिमल', 'अनामिका', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'अणिमा', 'बेला' 'नये पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत गुँज' आदि उनके काव्य ग्रन्थ हैं।

निराला जी की रचनाओं में वेदान्त का तत्त्व प्रमुख है। इसका कारण राम कृष्ण मिशन का सम्पर्क और स्वामी विवेकानन्द का आदर्श मानकर चलना है। उनकी 'तुम और मैं' कविता इस दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध है। निराला जी के काव्य में आरम्भ से ही प्रगतिशीलता के तत्त्व रहे हैं। 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' आदि रचनाएँ उनकी प्रगतिशील दृष्टि की परिचायक हैं। 'यमुना के प्रति' में अतीत गौरव की झांकी है तो 'गीतिका', 'परिमल' में भारत की कीर्ति का गान और बलिदान की गाथा है।

वे मुक्तछन्द के सिद्धहस्त कलाकार और संगीत के पण्डित थे। 'गीतिका' में भारतीय संगीत के आधर पर लिखे गीत अद्वितीय हैं। शब्द-चित्र अंकित करने में तो वे बड़े ही निपुण थे। उन्होंने पुराने उपमानों का नए ढंग से प्रयोग किया।

सुमित्रानन्दन पन्त (1900-77) प्रकृति के सुकुमार कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। छायावादी काव्य की भाषा को संवारने में आपके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। प्रकृति के क्रीड़ा-क्षेत्र अलमोड़ा जिले के कौसानी में जन्म, व्यक्तित्व में कलाकार–सुलभ कोमलता और आकर्षण, संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी का गम्भीर अध्ययन–इन सबके कारण उनकी कविता कोमलकान्त पदावली से पूर्ण है। 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव, 'गुन्जन', 'युगान्त', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूल', 'उत्तरा', 'अणिमा', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'लोकायतन', 'चिदम्बरा' आपके ग्रन्थ हैं। 'लोकायतन' महाकाव्य है।

पहले प्रकृति, फिर नारी, फिर मानव, फिर अरविन्द दर्शन और अन्त में सबके समन्वय से अभिनव जीवन-दर्शन की सृष्टि–यह पन्त जी की कविता का क्रमिक विकास रहा। छायावादी कवियों में पन्त जी विकासोन्मुख कवि हैं। अपने युग की विचारधारा को इन्होंने अपनाया है। प्रकृति के सुमधुर चित्र और प्रेम की किशोरावस्था–सुलभ अनुभूति प्रारम्भिक कविताओं में है, तो दार्शनिकता 'गुंजन' में है। मार्क्सवादी जीवन दृष्टि 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में है, तो अरविन्द दर्शन की छाया 'स्वर्णकिरण' ओर 'स्वर्णधूलि' में। इन सबका समन्वित रूप मिलेगा 'लोकायतन' में। पन्त जी धीरे-धीरे जीवन की मूल धारा से कटकर एकान्त चिन्तक बनते गये हैं।

महादेवी वर्मा (जन्म 1917-1987) छायावादियों में रहस्यवाद की एक मात्र कवयित्री हैं इन्हें लोग 'आधुनिक मीरा' कहकर सम्बोधित करते हैं। 'नीहर', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' इनकी काव्य कृतियाँ हैं, जो 'यामा' नाम से संगृहीत हैं।

महादेवी जी की रचनाओं में विरह-वेदना की अधिकता है। 'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ' उनकी कविता का केन्द्रीय भाव है। वे पीड़ा और वेदना को जीवन का सर्वस्व मानती हैं, इसलिए वे अमरत्व से अधिक नश्वरता को प्यार करती हैं। उस अज्ञात प्रियतम से पृथक् रहकर वे अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहती हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

आप प्रश्न कर सकते हैं कि क्या केवल ये ही कवि हैं जो छायावादी युग में काव्य-साधना करते रहे हैं? नहीं, ऐसा नहीं। इसके अतिरिक्त अन्य भी हैं, जिन्होंने छायावाद से प्रेरणा ली है। पर उनका क्षेत्र अलग है। उदाहरण के लिए सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ओर रामधारी सिंह 'दिनकर' को ले सकते हैं। जिनमें राष्ट्रीयता की भावना सर्वोपरि रही, यद्यपि शैली छायावादी ही थी। सर्वश्री भगवती चरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, हरिवंश राय बच्चन आदि स्वच्छन्द मार्ग पर चलने वाले कवि भी हैं, जिन्हें हम किसी वाद में नहीं बाँध सकते। हाँ, बच्चन को छोड़कर शैली उनकी भी छायावादी ही कही जाएगी।

1.6.1 बोध प्रश्न

(1) **इनमें से कौन छायावादी कवि नहीं है?**

(क) जयशंकर प्रसाद (ख) महादेवी वर्मा (ग) अरुण कमल (घ) सुमित्रानंदन पंत

(2) **महादेवी की रचनाओं के नाम बताएं।**

(3) **'परिमल' किसकी रचना है?**

1.7 प्रगतिवादी काव्यधारा

वह युग मार्क्सवादी और समाजवादी धारा से प्रभावित रहा है। इस युग में यद्यपि गाँधीवादी अहिंसक राजनीतिक ही भारत के क्षितिज पर छायी रही, तथापि जनक्रान्ति और किसान-मजदूर राज्य की स्थापना का नारा बराबर गूँजता रहा। समाज की पुरानी मान्यताओं का विरोध बड़ी तीव्रता से हुआ और नारी-स्वतन्त्रता तथा समानाधिकार का प्रश्न सर्वोपरि रहा।

प्रगतिवाद के विषय में दो प्रकार की विचारधाराएँ प्रमुख रूप में प्रकाश में आयी हैं एक तो ऐसे लोग हैं, जो यह कहते हैं कि प्रगतिशीलता साहित्य गुण है और समाज के साथ ही साहित्य भी आगे बढ़ता है। इस दृष्टि से साहित्य में प्रगतिशीलता कोई नई वस्तु नहीं है। तुलसीदास से लेकर भारतेन्दु तक गरीबी, भुखमरी, बीमारी, अकाल अदि के चित्रण होते आये हैं। आज के युग में भी बालकृष्ण शर्मा 'नवीम' की 'झूठे पत्ते' और भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' ऐसी ही रचनाएँ हैं। दूसरे प्रकार के लोग यह कहते हैं कि प्रगतिशीलता केवल गरीबी अथवा भुखमारी के चित्रण का नाम नहीं है, वह सर्वहारा के अधिकारों के समर्थन का नाम है। पहले से जो निम्न वर्ग की दयनीय दशा का चित्रण होता आया है, वह केवल करुणा उत्पन्न करने के लिए है, जबकि प्रगतिवाद में गरीबों और मजदूरों को उनके अधिकार के लिए जागृत करके उन्हें विद्रोही बनाने का प्रयत्न है ओर इस प्रकार सर्वहारा की तानाशाही और वर्गहीन समाज की स्थापना करना लक्ष्य है। सारांश यह है कि प्रगतिवाद साहित्य में मार्क्सवाद की विचारधारा का पोषक है।

हिंदी प्रगतिवाद का आन्दोलन सन् 1935-36 में आरम्भ हुआ और 1951-52 तक अपने उत्कर्ष पर पहुँचा। प्रगतिवाद का नेतृत्व किया महाकवि **सुमित्रानन्द पन्त** ने अपनी 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' नामक

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

काव्य-कृतियों से। उन्होंने **'रूपाभ'** नामक मासिक पत्र भी निकाला था, जिसमें यथार्थवाद का समर्थन किया गया था और कल्पना लोक से मुक्ति पाने का सुझाव दिया गया था। महाकवि निराला ने 'बेला' और 'नये पत्ते' में इसी विचारधारा की रचनाएँ की हैं। अन्य प्रगतिवादी कवियों में सर्वश्री नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', त्रिलोचन और नागार्जुन प्रमुख हैं। इनमें भी केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन ने ही बाद के रूप में प्रगतिवाद को अपनाया है। यदि प्रगतिवादी युग की कविता पर दृष्टिपात किया जाये तो निम्नलिखित विशेषताएँ दिखायी देती हैं–

1. कविता का जनक्रान्ति के लिए अस्त्र के रूप में प्रयोग करना और किसान-मजदूरों को शोषक स्वार्थी तत्त्वों के विरुद्ध संगठित होने का संदेश देना।
2. निम्न वर्ग की समस्याओं का चित्रण ओर उच्च वर्ग की शोषक नीति का भण्डाफोड़ करना।
3. यथार्थ का चित्रण और कल्पना का बहिष्कार करना।
4. आर्थिक दृष्टि से शोषित मानव को भाग्यवादी होने से बचाने और उसे अपनी शक्ति में विश्वास रखने की प्रेरणा देने के लिए समाज की सड़ी-गली मान्यताओं का विरोध करना और ईश्वर तथा धर्म की व्यर्थता सिद्ध करना।
5. नारी की स्वतन्त्रता और समानता का समर्थन करके से मात्र भोग की वस्तु अथवा दासी न मानकर माँ, भगिनी और सहचारी आदि अनेक रूपों में देखना और श्रद्धा तथा सम्मान की पात्री मानना, वर्ग-संघर्ष में उसे पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली सहयोगिनी समझना।
6. साहित्य का ध्येय जनता को जगाना होने के कारण भाषा का अत्यन्त सरल ओर प्रसाद गुणपूर्ण होना और अलंकरण की प्रवृत्ति से बचना।
7. चलते हुए छन्दों का प्रयोग करना या छन्दों को आवश्यक न पाकर उन्हें त्याग देना।

प्रगतिवादी कविता ने जनता को जगाने का कार्य किया, पर प्रगतिशीलता को मात्र एक साहित्यिक फैशन के रूप में अपनाये जाने से प्रगतिवादी आन्दोलन को धक्का लगा।

1.7.1 बोध प्रश्न

(1) प्रगतिवादी आंदोलन कब आरंभ हुआ था?

(2) प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख कवि के नाम बताइए।

1.8 प्रयोगवादी काव्यधारा

प्रगतिवाद के आरम्भ में कुछ ही समय बाद व्यक्तिवाद के समर्थकों द्वारा प्रवर्तित एक नया वाद कवियों को लुभाने लग गया। उस वाद का नाम प्रयोगवाद पड़ा। जैसे प्रगतिवाद के विषय में दो मत थे, वैसे ही प्रयोगवाद के विषय में दो मत रहे। एक मत के अनुसार साहित्य में प्रयोग बराबर होते रहे हैं और

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

साहित्य का स्वभाव ही प्रयोग करना है। दूसरे मत के अनुसार जान-बूझकर प्रयोग करने वाले कवि ही प्रयोगवादी हैं। प्रयोगवादियों ने एक ही प्रगतिवाद का विरोध किया तो दूसरी ओर छायावाद का। प्रगतिवाद का तो इसलिए कि उसमें सामाजिकता पर जोर था और छायावाद का इसलिए कि उसमें कल्पना की प्रधानता थी।

प्रयोगवाद का आरम्भ सन् 1943 में अज्ञेयजी द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' से माना जाता है। इसमें अज्ञेय जी के अतिरिक्त सर्वश्री गजानन माधव 'मुक्तिबोध', नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा की कविताओं की संकलन था। इस कवियों में कुछ कवि पुराने प्रगतिवादी थे, तो कुछ अब भी हैं। इस संकलन की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा कि पुरानी साहित्यिक प्रणाली अथवा कलात्मक दृष्टिकोण से वैज्ञानिक युग के मनुष्य के भावों को व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए नई उपमाएँ, नयी उत्प्रेक्षाएँ और नये प्रतीक चाहिए। दूसरी बात थी वैयक्तिकता की। प्रगतिवाद में समाज की हित-चिन्तन थी। प्रयोगवाद ने व्यक्ति के सुख-दुःख को महत्त्व दिया। प्रयोगवाद को हम प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया कह सकते हैं।

प्रयोगवादी कवि अपने को वैज्ञानिक युग की उपज मानता है। उसका कहना है कि उसका युग सन्देह, असिथरता और अनास्था का युग है। उसके युग में प्रत्येक व्यक्ति की समस्या अलग है और उसे जो जीवन में कष्ट झेलना पड़ता है, वह भी दूसरों से अलग ही होता है। अतः हर एक की अनुभूति और अभिव्यक्ति भिन्न होगी और उसमें खंडित व्यक्ति ही झलकेगा। इन सब कारणों से प्रयोगवादी कविता में पुरानी कविता से भिन्नता है। दूसरी बात यह है कि उसमें बौद्धिकता का आग्रह है और रस का तिरस्कार। इसी कारण वह चौंकाती या झकझोरती अधिक है, प्रभावित कम करती है। उसमें ऐसे प्रतीत ओर उपमान अधिक लिए जाते हैं, जो हमारे राग तत्त्व के अंग-संग नहीं बने हैं, और अभी बिल्कुल नये हैं। उनसे हमारा तादात्म नहीं हो पाता। छन्द की दृष्टि से उसमें मुक्त छन्दों का ही प्रयोग अधिक हुआ है। मुक्त छन्द में निराला जी ने लय की उपस्थिति मानी थी पर ये प्रयोगवादी कवि इसे आवश्यक नहीं मानते। मतलब यह है कि वह गद्य के अधिक निकट हैं। भाषा में भी एकरूपता नहीं है। यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति करने के लिए कारण नये कवि सभी प्रकार के शब्दों और मुहावरों को अपनाते हैं। इनकी कविता शिक्षित बुद्धिजीवियों के मस्तिष्क की उपज होने के बोधगम्य कम होती है। यदि ध्यान से देखा जाये, तो इसकी प्रेरणा विदेशी कवियों से ली गई जान पड़ेगी। इस कविता में व्यंग्य और प्रकृति के खंडचित्र अत्युत्तम है। यह इसका उज्जवल पक्ष है। समग्रतः उसकी विशेषताएँ हैं–

(1) प्रयोगवादी प्रगतिवाद की सामाजिकता के विरोध में व्यक्ति की निजी भावनाओं को व्यक्त करने वाला है।

(2) उसमें हृदय की उपेक्षा और बुद्धि का प्राधान्य है।

(3) मनुष्य की क्षण-क्षण बदलती मनोदशा को यथातथ्य में चित्रित करने का आग्रह होने से उसमें नयापन दिखाई देता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(4) नये-नये एवं अछूते प्रतीकों और उपमानों द्वारा अवचेतन मन की भावनाओं के प्रकाशन के कारण कविता अस्पष्ट रहती है।

(5) छन्द अतुकान्त होते हैं।

(6) भाषा का रूप स्थिर नहीं है।

(7) यह मध्यवर्ग के ऐसे बुद्धिजीवी लोगों की कविता है, जो भारतीय परम्परा से विच्छिन्न होकर अन्तर्राष्ट्रीय रहन-सहन और जीवन-पद्धति के हामी हैं, अतः इसमें भारतीय जनता का सुख-दुःख कम, आधुनिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति की घुटन, अनास्था और सन्देह अधिक अभिव्यक्त होते हैं।

(8) इसमें व्यंग्य और प्रकृति के खंडचित्र बहुत ही सुन्दर हैं।

1.8.1 बोध प्रश्न

(1) 'तारसप्तक' किसकी संपादित कृति है?

(2) प्रयोगवाद का आरंभ कब से माना जाता है?

1.9 नयी कविता की काव्यधारा

'नयी कविता' नाम ही भ्रामक है, क्योंकि यदि यह 'नयी कविता' है तो दस वर्ष बाद की कविता का नाम क्या होगा? इसलिए यदि नाम का आग्रह हो, तो इसे 'बुद्धिवादी कविता' कहा जा सकता है। कोई और नाम भी दिया जा सकता है। दूसरे, यह प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है, जिसमें सामाजिकता के प्रति लगाव बढ़ रहा है। यह शुभ लक्षण है, लेकिन एक बात निश्चित है कि कविता के हित नये आन्दोलन कवि को पाठक से दूर कर रहे हैं। कविता बुद्धिविलास मात्र बनकर अनबूझ पहेली बन गयी है। अब एक नया काव्यान्दोलन 'विचार कविता' के नाम से प्रारम्भ हुआ है। देखें इस वाद-विवाद का कब अन्त होता है।

प्रयोगवाद और नयी कविता के कवियों में सर्वश्री अज्ञेय, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, कुंवरनारायण, जगदीश गुप्त, दुष्यन्त कुमार, केदारनाथ सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस वादग्रस्त कविता के अतिरिक्त हिंदी में गीतों की धारा बह रही है। उसे भी नहीं भुलाना चाहिए। सर्वश्री बलवीर सिंह रंग, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, हंसकुमार तिवारी, आरसी प्रसाद सिंह, सम्भुनाथ सिंह, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप 'राही', देवराज 'दिनेश', रामनाथ अवस्थी, सोम ठाकुर आदि अनेक कवि गीत के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग कर रहे हैं। प्रयोगवादियों और नयी कविता के प्रस्तोताओं की तुलना में गीतकार जनसामान्य के अधिक निकट है और उनसे अधिक पढ़े-सुने जाते हैं।

आधुनिक हिंदी कविता में हास्यरस की कविता का भी अपना स्थान है। लोक-मनोरंजन के लिए इसकी उपादेयता है। सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य भी इस प्रकार की कविता के माध्यम से उभरे

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE COL, SOL University of Delhi

हैं। हास्यरस के प्रमुख कवियों में बेढव बनारसी, बेधड़क बनारसी, चोंच, गोपालप्रसाद व्यास, काका हाथरसी, सुरेन्द्र शर्मा, जेमिनी हरियाणवी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

1.9.1 बोध प्रश्न

(1) नयी कविता के प्रमुख कवि के नाम बताइए।

(2) नयी कविता की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

1.10 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार से आधुनिक कविता का विभिन्न चरणों में क्रमबद्ध विकास होता है। इन काव्यधाराओं में निश्चित रेखा खींचना संभव नहीं है कि इनका आरंभ और अंत किस निश्चित समय पर हुआ। फिर भी प्रवृत्तियाँ अथवा प्रेरकों के आधार पर इनकी पहचान की जा सकती है। आधुनिक काल में हिंदी कविता समयानुसार परिवर्तित-संवर्धित होती रही है। उसमें भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से नए-नए परिवर्तन और विशिष्टताओं का समावेश बढ़ता जा रहा है। आज, यह काव्य इतना विपुल और वैविध्यपूर्ण बन चुका है कि इसका सम्यक् आकलन न तो संभव है और न ही उचित प्रतीत होती है। अनेक वाद-प्रतिवाद के किनारे करते हुए आधुनिक कविता निरंतर अग्रसर हो रही है और निःसंदेह कहा जा सकता है कि नई-नई संभावनाओं से परिपूर्ण होते हुए अग्रसर होती रहेगी।

1.11 अभ्यास प्रश्न

(1) आधुनिक काव्यधारा के विकास का सामान्य परिचय दीजिए।

(2) आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

(3) भारतेन्दु युगीन कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

(4) प्रगतिवाद का सामान्य परिचय दीजिए।

(5) टिप्पणी लिखें -

(क) द्विवेदी युग

(ख) छायावाद और सुमित्रानंदन पंत

(ग) प्रयोगवाद

(घ) नयी कविता

© DDCE, COL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.12 संदर्भ-ग्रंथ

1. '*हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*' - विश्वनाथ त्रिपाठी
2. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. '*हिंदी साहित्य का इतिहास*' - सं.-डॉ. नगेन्द्र
4. '*हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*' - बच्चन सिंह
5. '*हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*' - रामस्वरूप चतुर्वेदी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हिंदी साहित्य का इतिहास : आधुनिककाल

2. गद्य विधाएँ : सामान्य परिचय

लेखिका–डॉ. रमेश खनेजा
हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 उपन्यास का विकास
    2.2.1 भारतेन्दु युग
    2.2.2 द्विवेदी युग
    2.2.3 प्रेमचंद युग
    2.2.4 प्रेमचन्दोत्तर युग
    2.2.5 बोध प्रश्न
2.3 कहानी का विकास
    2.3.1 प्रारंभिक रूप : अनुवाद युग
    2.3.2 प्रसाद-प्रेमचंद युग
    2.3.3 वर्तमान युग : तीन पीढियाँ
    2.3.4 बोध प्रश्न
2.4 हिंदी निबंध का विकास
    2.4.1 बोध प्रश्न
2.5 हिंदी नाटक : उद्भव और विकास
    2.5.1 प्राचीन हिंदी नाटक
    2.5.2 आधुनिक हिंदी नाटक
    2.5.3 भारतेंदु युगीन नाटक
    2.5.4 द्विवेदी युगीन नाटक
    2.5.5 प्रसाद युगीन नाटक

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.5.6 प्रसादोत्तर युगीन नाटक
2.5.7 बोध प्रश्न
2.6 सारांश
2.7 अभ्यास प्रश्न
2.8 संदर्भ-ग्रंथ

2.0 अधिगम का उद्देश्य

आधुनिकता के आगमन के साथ ही गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ। उपन्यास, कहानी, नाटक तथा निबंध उनमें प्रमुख हैं। इस इकाई में हिंदी में इन विधाओं के विकास के बारे में जानकारी दी गई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- हिंदी की प्रमुख गद्य विधाओं के बारे में विस्तार से जान सकेंगे।
- हिंदी उपन्यास के विकास की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- हिंदी की प्रारंभिक कहानियों के बारे में बता पाएंगे।
- हिंदी कहानी की सतत् विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- हिंदी नाटक का उद्भव और उसके विकास-क्रम के बारे में समझ सकेंगे।
- हिंदी निबंध के विकास के विभिन्न चरणों की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- विधा के रूप में हिंदी कहानी, उपन्यास, नाटक और निबंध की विशिष्टताओं को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक युगीन हिंदी साहित्य में स्पष्ट परिवर्तनों को देख सकते हैं। पहली बार साहित्य में गद्य में रचना होने लगती है और उसे केन्द्रीय महत्व प्राप्त होने लगता है। यही वजह है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसे गद्यकाल नाम देते हैं। ब्रज का स्थान खड़ी बोली ले लेती है और इस खड़ी बोली के दो रूपों को हम दो भिन्न भाषाओं - हिंदी और उर्दू और उनकी अलग-अलग साहित्य परंपराओं के रूप में उभरता और विकसित होता हुआ देखते हैं। साहित्य में पहली बार वीर, भक्ति और शृंगार से इतर विषयों पर रचनाएँ होती हैं। कविता के साथ-साथ गद्य की नई विधाएँ हमारे सामने प्रकट होने लगती हैं। निबंध, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि से पहली बार हिंदी पाठकों का साक्षात्कार होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

2.2 उपन्यास का विकास

2.2.1 भारतेंदु युग

हिंदी में भारतेंदु से पूर्व जो कथात्मक पुस्तकें लिखी गयी, वे आधुनिक उपन्यास और कहानी से मिलती-जुलती होने पर भी उनसे भिन्न थीं। वास्तव में उपन्यास और कहानी पश्चिमी साहित्य की देन हैं। भारतेंदु-युग में जो उपन्यास लिखे गये, उनमें उपन्यास कथा का उचित निर्वाह न होने के कारण उन्हें सच्चा उपन्यास नहीं का जा सकता है। सच तो यह है कि हिंदी में वास्तविक उपन्यास की रचना सर्वप्रथम प्रेमचंद ने ही की। यों, ऐतिहासिक दृष्टि से लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा-गुरु' (1882 ई.) ही हिंदी का पहला उपन्यास माना जाता है। यह पश्चिमी उपन्यास की शैली पर आधारित है और यथार्थ जीवन का चित्र भी प्रस्तुत करता है, परन्तु कला की दृष्टि से बहुत अपरिपक्व है। इसमें उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान है।

'परीक्षा-गुरु' के पूर्व भी 'देवरानी-जेठानी' (1872 ई.) 'रीति-रत्नाकर', 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती' आदि कुछ उपन्यास जैसी कथा-पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं परन्तु वे भी मुख्यतः शिक्षात्मक तथा अपरिपक्व हैं। भारतेंदु ने भी 1866 ई. में कहानी 'कुछ आप पीती कुछ जग बीती' लिखने का यत्न किया था और 'चन्द्र प्रभा और पूर्ण प्रकाश' शीर्षक मराठी उपन्यास का अनुवाद व संशोधन भी किया था। उनकी प्रेरणा से राधा चरण गोस्वामी, गदाधर सिंह, राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने बंगाल के बहुत से उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया और मौलिक उपन्यास भी लिखे। इन लेखकों के अतिरिक्त बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा आदि और भी कई लेखकों ने बंगला उपन्यासों का अनुवाद किया। अंग्रेजी से भी कुछ उपन्यासों का अनुवाद हुआ।

भारतेंदु काल के मौलिक कथा-ग्रंथों और उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण हैं– ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्याम स्वप्न' (काव्यात्मक गद्य-कथा), पं. बालकृष्ण भट्ट रचित 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' किशोरी लाल गोस्वामी का 'स्वर्गीय कुसुम', राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा-विपत्ति', राधाकृष्ण का 'निस्सहाय हिंदू', अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'प्रेमकांता' और रत्नचंद प्रणीत 'नूतन चरित्र'। ये सभी उपन्यास प्रायः सोद्देश्य तथा शिक्षाप्रद हैं, पर कला की दृष्टि से दुर्बल हैं। इनमें परिवार और समाज का साधारणतः अच्छा अंकन हुआ है। उच्च चरित्र, वीरता तथा प्रेम की कथा प्रस्तुत करने वाले कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये, परन्तु उनमें इतिहास के तथ्यों का ठीक निर्वाह नहीं हुआ है।

2.2.2 द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में भी मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। लोगों की रुचि उस समय परिष्कृत नहीं थी। इसलिए अधिक तिलस्म, ऐयारी, जासूसी और रोमांस के कथानक प्रस्तुत किए गए। उपन्यास घटना-प्रधान बना रहा है। अंग्रेजी से भी साहसिक, जासूसी तथा प्रेमचर्या-प्रधान उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इस युग के तीन उपन्यासकार बहुत प्रसिद्ध हैं– देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी। खत्री जी ने 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता-संतति' तथा 'भूतनाथ'

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© *Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*

नामक तिलस्म और ऐयारी के रोचक उपन्यास कई भागों में प्रकाशित किए। इन उपन्यासों के पहले भी भारतेंदु काल में उन्होंने 'नरेंद्रमोहनी', 'वीरेंद्र वीर', 'सुकुमारी' आदि उपन्यास लिखे थे। हरिकृष्ण जौहरी आदि कई लेखकों ने उनके अनुकरण पर तिलस्मी उपन्यास लिखे। बहुत लोगों ने उनके मनोरंजक उपन्यास पढ़ने के लिए ही हिंदी सीखी।

किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यास वस्तुतः नाम के ही सामाजिक हैं। उनमें समाज की बहुत ही स्थूल और ऊपरी झलक है, यथार्थ चित्रण नहीं। उनके ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास के तथ्यों का उचित निर्वाह नहीं हुआ। देशकाल का भी ध्यान उन्होंने कहीं-कहीं नहीं रखा। कुछ उपन्यासों में समाज की कुरीतियों पर प्रहार करने का यत्न किया गया और यत्र-तत्र राष्ट्र-प्रेम की भावना भी है। परंतु गोस्वामी जी के अधिकांश उपन्यास उत्तेजक श्रृंगार से युक्त हल्के मनोरंजन के साधन है। गोस्वामी जी ने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे हैं। उनमें कुछ उपन्यासों के नाम हैं– 'कुसुमकुमारी', 'हृदयहारिणी', 'लबंगलता', 'रजिया बेगम', 'तारा', 'कनक कुसुम', 'मल्लिका देवी', 'राजकुमारी', 'लखनऊ की कब्र', 'चपला', 'प्रेममयी'। जैसा कि नामों में प्रकट है ये उपन्यास नारी-प्रधान और श्रृंगारिक हैं। वास्तव में उनमें समाज और इतिहास के संदर्भ में कामुकता तथा विलासिता का अंकन हुआ है। उन्होंने 'उपन्यास' नामक पत्रिका भी निकाली थी जिसमें उनके पैंसठ छोटे-बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए थे। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी जी के संबंध में लिखा है कि 'इस द्वितीय उत्थानकाल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं, परंतु वस्तुतः उपन्यासकार की सच्ची प्रतिभा इनमें भी नहीं हैं।'

गोपालदास गहमरी 'जासूस' नामक पत्रिका प्रकाशित करते थे, जिसमें उनके साठ के लगभग उपन्यास छपे। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों के अनुकरण पर उन्होंने 'जासूस की भूल', 'घर का भेदी', 'अद्भुत खून', 'भोजपुर की ठगी' आदि रहस्यपूर्ण, साहसिक और डकैती तथा ठगी की कथाएँ निर्मित कीं। वैसे उन्होंने जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में भी आदर्श के निर्वाह और लोकोपकार की भावना के समावेश का यत्न किया और आदर्श जासूसों की सृष्टि की। गहमरी जी ने बंगला से गृहस्थ जीवन-संबंधी कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी किया था।

दूसरी ओर द्विवेदी युग में कुछ ऐसे उपन्यासकार भी हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नैतिकता का ध्यान रखते हुए स्वच्छ-स्वस्थ सामग्री प्रस्तुत की। इस तरह की उपन्यासकारों में उल्लेखनीय हैं– **हरिऔध, लज्जाराम मेहता** और **ब्रजनंदन सहाय**। हरिऔध जी ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' लिखकर इनमें मुहावरेदार ठेठ भाषा का नमूना भी पेश किया। मेहता जी ने सुधारवादी दृष्टिकोण से 'आदर्श हिंद', 'आदर्श दंपत्ति' और 'हिंदू गृहस्त' आदि उपन्यास लिखे। ब्रजनंदन सहाय के 'सौंदर्योपासक' और रमाकांत के काव्य का आनंद मिलता है। स्पष्ट है कि गोस्वामी जी, गहमरी जी और खत्री जी के उपन्यास जहाँ स्थूल सौंदर्य और उत्तेजत श्रृंगारिकता प्रस्तुत है वहाँ इन उपन्यासकारों के ग्रंथ 'उपदेशात्मक' भावना की छटा दिखाने वाले या काव्यात्मक है। मानव चरित्र और मानव जीवन के सच्चे चित्रण और उपन्यास-काल की पूर्णता की ओर इस समय तक किसी का भी यथोचित ध्यान नहीं

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

गया था। इस काल में **किशोरीलाल गोस्वामी** के अतिरिक्त कुछ और लेखकों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखें। इनमें उल्लेखनीय हैं—गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर पत्नी' और 'मिश्रबंधुओं के विक्रमादित्य', 'चंद्रगुप्त मौर्य तथा 'पुष्य मित्र'।

द्विवेदी युग में भी अधिकतर साधारण जनता के मनोरंजन और मनोविनोद के लिए घटना प्रधान उपन्यास ही लिखे गये। उनमें कथा का रस तो है, किंतु चरित्र-चित्रण का सौंदर्य, समाज का सही अंकन और उपन्यास का परिपक्व शिल्प नहीं। इस समय के उपन्यासकारों को न तो मानव-जीवन का और न मानव-स्वभाव का सूक्ष्म एवं व्यापक ज्ञान था और न उपन्यास की कला से ही उनका अच्छा परिचय था। इस काल में अधिकतर प्रेमप्रधान, साहसिक तथा विस्मयकारक (तिलस्मी-जासूसी उपन्यास ही लिखे गये। ऐतिहासिक, शिक्षात्मक और काव्यात्मक उपन्यास भी लिखे गये, परंतु कम। पात्र अधिकतर सौंदर्य के प्रति आकर्षित होने वाली विलासी प्रेमी-प्रेमिका और राजकुमार-राजकुमारी हैं या फिर ऐयार तथा जासूस। इस काल के उपन्यास भारतेंदु काल के उपन्यासों की अपेक्षा रोचक और मनोरंजक अधिक हैं। शिक्षा देने की प्रवृत्ति भी कम है। प्रतापनारायण मिश्र, गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिऔध, कार्तिकप्रसाद खत्री, रूपनारायण पांडेय, रामकृष्ण वर्मा आदि साहित्यकारों ने बंगला, अंग्रेजी और उर्दू आदि भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद किया। आचार्य शुक्ल का कथन है कि हिंदी के मौलिक उपन्यास-सृजन पर इन अनुवाद कार्यों का अच्छा प्रभाव पड़ा और इसके कारण हिंदी उपन्यास का आदर्श काफी ऊँचा हुआ।

2.2.3 प्रेमचंद युग

द्विवेदी युग के अंत तक (1917 ई. तक) हिंदी के मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यास काफी संख्या में लिखे जा चुके थे। मौलिक उपन्यास अनेक प्रकार के और अनेक विषयों पर थे। उपन्यास क्रमशः जीवन और समाज के निकट आ रहा था, परंतु अब भी उसमें बहुत-सी त्रुटियाँ थीं। प्रेमचंद के समय से विशेष कर उनके 'सेवासदन' के प्रकाशन काल (सन् 1918 ई.) से हिंदी-कथा साहित्य में एक नये युग का आरंभ होता है। **प्रेमचंद** ने ही उपन्यास में मानव मन का स्वाभाविक एवं सजीव अंकन आरम्भ किया। उन्होंने ही पहली बार हिंदी उपन्यास में घटना और चरित्र का संतुलन स्थापित कर मनोविज्ञान का उचित समोवश किया। उन्होंने ही पहली समाज की समस्याओं को सर्वप्रथम कथा-साहित्य में स्थापित किया। उन्होंने जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों का, समाज के विभिन्न वर्गों का ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों की बहुत-सी दशाओं तथा परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर व्यापक अनुभव प्राप्त किया था। मनोविज्ञान के वे पंडित थे। मानव-स्वभाव के विविध पक्षों से भली-भाँति परिचित थे। उपन्यास-कला का भी उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। पश्चिम के ताल्सताय, दोस्तोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, अनातोले फ्रांस आदि महान उपन्यासकारों की रचनाओं का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था।

प्रेमचंद प्रारंभ में उर्दू के लेखक थे और कहानियाँ लिखते थे। उर्दू में अनेक कुछ उपन्यास भी प्रकाशित हुए थे। बाद में उन्होंने हिंदी में लिखना प्रारंभ किया। उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं— सेवासदन, प्रेमाश्रय, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचंद

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते थे। वे अपने उपन्यासों द्वारा भारतीय जनता के जागरण और सुधार तथा निर्माण की भावना का प्रसार करना चाहते थे। प्रेमचंद मानवतावादी सहृदय व्यक्ति थे। वे गरीबी में पले थे, गरीबों के दु:ख-दर्द को समझते थे। समाज के निम्न वर्ग से उन्हें सहानुभूति थी। जीवन के अंतिम समय में, जैसा कि उनके अंतिम उपन्यासों ('गोदान' और 'मंगलसूत्र') से प्रकट है, उनका झुकाव साम्यवाद की ओर हो गया था और वे सच्चे अर्थ में यथार्थवादी और प्रगतिशील हो गये थे। अपनी पुस्तकों में प्रेमचंद ने किसानों की आर्थिक दशा, जमींदारों और पुलिस के अत्याचारों, ग्रामीण जीवन की कमजोरियों, समाज की कुरीतियों, शहरी समाज की कमियों, विधवाओं और वेश्याओं की समस्याओं, नारी की आभूषणप्रियता, मध्यवर्ग की झूठी शान और दिखावे की प्रवृत्ति, सम्मिलित हिंदू-परिवार में नारी की दयनीय स्थिति आदि प्रश्नों और पक्षों पर प्रकाश डाला। उन्होंने अपने कई उपन्यासों में गाँव और शहर की कहानी, ग्रामीण और नागरिक जीवन की झांकी साथ-साथ प्रस्तुत की है। उनके उपन्यासों में कथानक सुगठित है चरित्र-चित्रण प्राय: मनोविज्ञान के अनुकूल सजीव और स्वाभाविक है। संवाद पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार हैं और भाषा सरल एवं व्यावहारिक है।

प्रेमचंद की उपन्यास-कला की मुख्य विशेषताएँ हैं– व्यापक सहानुभूति-विशेषकर शोषित किसान, मजदूर और नारी का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण, यथार्थवाद अर्थात् उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण, मानव-जीवन और मानव-स्वभाव की अच्छी जानकारी होने से सजीव पात्रों और सजीव वातावरण का निर्माण, चरित्र-चित्रण में नाटकीय कथोपकथनात्मक तथा घटनापरक पद्धतियों का उपयोग, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि सामान्य पात्रों की सृष्टि, अपने व्यक्तित्व को पात्रों से पृथक् रखकर उन्हें प्राय: अपनी सहज-स्वच्छंद गति से चलने देना, अनेकानेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का चित्रण, समाज के साथ पारिवारिक जीवन की सुंदर अभिव्यक्ति, मानव-कल्याण की ओर संकेत करने वाले नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा और सरल व्यावहारिक भाषा का संग्रह।

प्रेमचंद युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं– विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रसाद, निराला, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, वृंदावन लाल वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, सियारामशरण गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, भगवती प्रसाद वाजपेयी, गोविंदवल्लभ पंत, राहुल सांकृत्यान और जैनेंद्र, कौशिक जी के उपन्यास 'माँ' और भिखारिणी नारी-हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। आचार्य चतुरसेन ने नारी की समस्या पर 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा' आदि उपन्यास प्रारंभ में लिखे थे। बाद में उनके बहुत से सामाजिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं– 'गोली', 'वैशाली की नगर वधू', 'वयं रक्षाम:', 'सोमनाथ महालय', 'सोना और खून' तथा 'खग्रास'।

वृंदावनलाल वर्मा ने इतिहास के तथ्यों की पूर्णत: रक्षा करते हुए कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। उन्होने 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'माधवजी सिंधिया' आदि उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। हिंदी के कुछ अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास हैं। जयशंकर प्रसाद का 'इरावती' (अधूरा), हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'वाणभट्ट की

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

आत्मकथा' और 'चारु चंद्रलेख', चतुरसेन का 'वैशाली की नगरवधू', 'राजसिंह', 'सोमनाथ', 'सह्याद्रि की चट्टानें', सेठ गोविंददास का 'इंदुमती', राहुल सांकृत्यान के 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', सत्यकेतु विद्यालंकार का 'आचार्य चाणक्य', रांगेय राघव का 'अंधा रास्ता', उमाशंकर का 'नाना फड़नवीस' तथा 'पेशवा की कंचना'।

प्रसाद जी ने 'इरावती' के पहले 'कंकाल' और 'तितली' नामक दो उपन्यास और लिखे थे, 'कंकाल' में हिंदू नारी की असहाय स्थिति और धार्मिक पाखंड पर प्रकाश डाला गया है। 'तितली' में नारी-हृदय की महत्ता के उद्घाटन के साथ-साथ ग्राम-सुधार और यथास्थिति के विरुद्ध आंदोलन की भावना है। प्रसाद जी मूलतः कवि हैं। उनके उपन्यासों में भी प्रायः जीवन की काव्यात्मक और भावपूर्ण व्याख्या मिलती है। निराला जी ने भी 'अप्सरा', 'अल्का', 'निरूपमा' आदि उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में भी प्रसाद की भाँति रोमांटिक वातावरण है नारी को निराला जी ने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के प्रारंभिक उपन्यासों में 'विदा', 'विसर्जन' और 'विजय' उल्लेखनीय है।

सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अंतिम आकांक्षा' और 'नारी' उपन्यासों में नारी-जीवन और उसकी सामाजिक स्थिति का मार्मिक अंकन हुआ है। साधारण मनुष्य में भी उच्च गुण दिखाने में गुप्त जी निपुण हैं। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के प्रारंभिक उपन्यासों में पत्रात्मक शैली में लिखे 'चंद हसीनों के खतूत' का विशिष्ट इसमें हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रश्न उपस्थित करते हुए प्रेम का महत्त्व दिखाया गया है। उनके 'दिल्ली का दलाल', 'बधुआ की बेटी', 'जीजा जी' आदि उपन्यासों में दुष्टों द्वारा भोली युवतियों को फँसाएँ जाने की कथाएँ हैं। सभ्य समाज की भीतरी दुर्बलताओं और दुष्प्रवृत्तियों का उन्होंने अच्छा उद्घाटन किया है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी के 'प्रेममयी', 'अनाथ स्त्री', 'त्यागमयी', 'पतिता की साधना' आदि शुरू के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के रूपाकर्षण और प्रेम के चित्र हैं। उनके 'गुप्त धन', 'चलते-चलते', 'पतवार', 'उनसे न कहना', 'रात और प्रभाव', 'टूटते बंधन' आदि कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

गोविंदवल्लभ पंत के 'सूर्यास्त', 'प्रतिमा' आदि उपन्यास काफी पहले प्रकाशित हुए थे। इधर भी उनके 'जल समाधि', 'नारी के सपने', 'मैत्रेय' आदि उपन्यास निकले हैं।

जैनेंद्र के परख (सन् 1929 ई.) से हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में एक नई प्रवृत्ति का आरंभ होता है। वस्तुतः यह उपन्यास एक लंबी कहानी है जिसमें कट्टो नाम की देहातिन बालविधवा के भावुकतापूर्ण आत्मसमर्पण का चित्रण किया गया है। जैनेंद्र ने आगे चलकर कई महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'सुनीता', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', 'विवर्त्त' आदि लिखे, जिनमें प्रायः स्त्री का पर-पुरुष की ओर झुकाव दिखाकर आधुनिक नारी के कुंठाग्रस्त मन पर प्रकाश डाला गया है। मनोविश्लेषण की इस प्रवृत्ति का विकास किया **इलाचंद्र जोशी** और **अज्ञेय** ने। प्रेमचंद काल के उत्तरार्ध में इस क्षेत्र में आने वाले अन्य प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं– **ऋषभचरण जैन** (कैदी गदर, भाई, भाग्य, रहस्यमयी, तपोभूमि, बादशाह की बेटी, सत्याग्रह, दिल्ली का व्यभिचार आदि) **भगवतीचरण वर्मा** (पतन, तीन वर्ष चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

रास्ते, सबहिं नचावत राम गुसाईं) **राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह** (राम-रहीम, पुरुष और नारी, टूटा तारा, सूरदास, संस्कार आदि)।

इस काल में जो उपन्यास लिखे गए, उन्हें चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, स्वच्छन्दतापरक उपन्यास और मनोवैज्ञानिक उपन्यास। उपन्यास-लेखन की बहुत-सी शैलियों (ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक आदि) का प्रयोग हुआ है। इस काल में यूरोप की अनेक समृद्ध भाषाओं (रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीस आदि) से उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ। आजकल अनुवाद-कार्य अधिक तत्परता से और विशाल परिणाम में हो रहा है।

2.2.4 प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है। सन् '40 से '50 तक की कालावधि के उपन्यास मुख्यत: फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से, सन् '50 से '60 तक के उपन्यास प्रयोगात्मक विशेषताओं से और सन् '60 से अब तक के उपन्यास आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित है। प्रेमचंद समाज की स्वीकृत मान्यताओं के भीतर संघर्ष करते रहे। किंतु प्रथम महायुद्ध के बाद पश्चिम के पुराने मूल्यों का तेजी के साथ विघटन हुआ। फ्रायड ने काम-संबंधी मान्यताओं को नैतिकता-अनैतिकता से परे बताकर सामाजिक नैतिकता के आगे प्रश्नचिह्न लगा दिया। पूँजीवादी समाज में व्यक्ति-चेतना उभर कर सामने आई। मार्क्स ने समष्टि चेतना पर विशेष बल दिया। हिंदी उपन्यास इन विचारधाराओं से प्रभावित हुए बिना न रहा। फलस्वरूप सन् '50 के बाद उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति और समाज की मुक्ति की ओर गया। किंतु स्वतंत्रता के बीस वर्षों बाद भी मानव जीवन में एक विशेष प्रकार की कुंठा, निराशा, त्रास, अर्थहीनता आदि की अनुभूति, होने के कारण सन् '60 के बाद के उपन्यासों में इन्हीं मनोदशाओं का चित्रण किया गया।

प्रेमचंद-युग में ही जैनेंद्र ने फ्रायड से प्रभावित होकर मानव-चरित्र के स्थान पर व्यक्ति-चरित्र की सृष्टि की थी। किंतु सन '51 में अजेय के 'शेखर : एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ ही हम उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ पाते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए है– 'शेखर : एक जीवन' (दो भाग), 'नदी के द्विप' और 'अपने-अपने अजनबी'। पहले दो उपन्यासों में व्यक्ति पात्रों के नये विश्लेषण की प्रवृत्ति है। तीसरी रचना कोई संबंध कथानक नहीं है। अज्ञेय ने उपन्यास को पात्र-प्रधान बनाया और सामाजिक मानव के स्थान पर व्यक्ति-मानव के अंतर्मन का विश्लेषण करने का यत्न किया।

जैनेंद्र और **अज्ञेय** फ्रायड के अचेतन मनाविज्ञान से प्रभावित है तो **इलाचंद्र जोशी** उसके मनोविश्लेषण से उपन्यासकार के रूप में उनको प्रतिष्ठा 'संन्यासी' (1914) उपन्यास-प्रकाशन के द्वारा मिली। इन उपन्यासों में ही मार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विकृति देखी जा सकती है। संन्यासी के अतिरिक्त 'पर्दे की रानी' (1941), 'प्रेत और छाया', 'निर्वासित', 'मक्तिपथ' (1950) 'सुबह की भूले' (1957), 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' (1955) और 'ऋतुचक्र' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों की विकास यात्रा में 'मुक्तिपथ' एक नए मोड़ की सूचना देता है। 'मुक्तिपथ' के पूर्ववती उपन्यास ग्रंथियों के विश्लेषण पर आधारित है। उनकी भाव-भूमियाँ एकांकी, संकुचित और छोटी हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

'मुक्तिपथ' तथा उसके बाद जो उपन्यास लिखे गये, उनमें परिदृश्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखाई पड़ता है।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्टि विचारधारा, ईमानदारी और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्व बना लिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यशपाल को प्रेमचंद उपन्यास-परंपरा की अगली कड़ी के रूप में माना जा सकता है। यशपाल का प्रारंभिक जीवन क्रांतिकारी दल से संबंध था। वे इसके सक्रिय सदस्य थे, इसके लिए उन्हें चौदह वर्ष का कारावास भी मिला। कारावास काल में उनका सारा समय अध्ययन-मनन में व्यतीत हुआ। इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में उतरने पर उन्होंने इसी विचारधारा को आगे बढ़ाया। 'अमिता' और 'दिव्या' को छोड़कर उनके शेष उपन्यास समाजवादी यथार्थवाद का चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनके शेष उपन्यास है– 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'मनुष्य के रूप में (1949), 'झूठा सच' प्रथम भाग 'वतन और देश' (1958), दूसरा भाग 'देश का भविष्य' (1960)।

रामेश्वर शुक्ल 'अचल' यशपाल की परम्परा में आते हैं। चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का और मरुप्रदीप उनके प्रसिद्ध उपन्यास है। पर इनमें द्वन्द्वात्मक चेतना पूरे तौर पर नहीं उभरती।

भगवतीचरण वर्मा प्रेमचंद-परंपरा के उपन्यासकार हैं। सन् '50 तक यह परंपरा चलती रही प्रेमचंद ने अपने में समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया और वर्मा जी परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यमवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं– मुख्यतः '40 के बाद लिखे गये उपन्यासों में। इनमें 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दांव' 'भूले-बिसरे-चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गुसाई' मुख्य हैं।

उपेंद्रनाथ अश्क को प्रेमचंद-परंपरा का उपन्यासकार कहा जाता है। पर वे समग्र रूप से प्रेमचंदीय परंपरा से नहीं जुड़ पाते। जहाँ तक मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों की परिस्थितियों, समस्याओं और परिवेश का संबंध है, वहाँ तक वे प्रेमचंदीय परंपरा के उपन्यासकार हैं प्रेमचंद की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी, इसलिए प्रमाणिक भी। प्रेमचंद के वैविध्य और जीवन-चेतना का इनमें अभाव है। 'सितारों के खेल' के बाद इनके कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं– 'गिरती दीवारें, 'गर्म राख' 'बड़ी-बड़ी आँखे', 'पत्थर अल पत्थर', 'शहर में घूमता आईना' और 'एक नन्हीं किंदील'। 'गिरती दीवारें इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखें, पत्थर अल पत्थर सुगठित उपन्यासों की श्रेणी में रखे जायेंगे। अंतिम दोनों उपन्यास 'गिरती दीवारें' का विस्तार है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के आवर्त्त में पड़ा व्यक्ति कभी अपने को उनके अनुरूप ढालता है कभी उनसे आहत होता है, कभी छोटे-मोटे सुधारों के द्वारा समाज का परिष्कार करता है। वहाँ समाज प्रधान है, व्यक्ति गौण। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सनकों, अंतर्द्वंद्वों को समाज से अधिक महत्त्व दिया है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक संबंधों को चित्रित किया गया है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बांकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर',

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुद्र' विशेष महत्त्वपूर्ण वन पड़ा है।

'50 के बाद के दशक को भ्रमवश आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है। वस्तुतः इस समय के उपन्यास एक नए प्रकार के मुक्ति-आंदोलन वैयक्तिक और सामाजिक दोनों हैं। वैयक्तिक इसलिए कि वह पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले वातावरण में साँस लेना चाहता है, सामाजिक इसलिए कि अभी समाज को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने में लंबी मंजिल तय करनी थी। देश विभाजन के कारण जो नई समस्याएँ उत्पन्न हुई, उन्हें भी औपन्यासिक रूप दिया गया। प्रवृत्तिक दृष्टि से इस दशक के उपन्यासों को तीन प्रवृत्तियों में बाँटा जा सकता है।–ग्रामांचल के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और प्रयोगशील उपन्यास।

ग्रामांचल की श्रेणी में आने वाले उपन्यासों को आंचलिक कहकर उन्हें सीमित कर दिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) में प्रकाशित हो चुका था। पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया। यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा-पूर्णिया जिले का राजनीतिक-सांस्कृतिक साक्षात्कार होता है। इनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण गाँव की कहानी पर आरोपित प्रतीत होता है। कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार चलता है। इसके फलस्वरूप उपन्यासों की सर्जनात्मकता शिथिल और अवरुद्ध हो जाती हैं। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दखमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि उनके प्रकाशित उपन्यास हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों को ही आंचलिक की संज्ञा दी जा सकती है। और स्वयं रेणु ने ही 'मैला आंचल' को आंचलिक उपन्यास कहा है। 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद ही आंचलिक उपन्यासों की खोज शुरू हुई और ढेर के ढेर उपन्यासों को इस श्रेणी में डाल दिया गया। पर 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' की तरह किसी भी तथाकथित आंचलिक उपन्यास में ग्रामांचलों का इतना विशद चित्र नहीं मिलता।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरे और मनुष्य' (1955) में बंबई के पश्चिमी तट पर बसे हुए बरसोबा गांव के मछुओं की जीवन-गाथा वर्णित है। **रांगेय राघव** का 'कब तक पुकारूँ' में जरायमपेशा नटों की जिंदगी को उजागर किया गया है। नट-जीवन और आधुनिक जीवन की असंगतियों को चित्रित करते हुए लेखक ने उज्ज्वल भविष्य का संकेत किया है कि शोषण की घुटन सदैव नहीं रहेगी। भैरवप्रसाद गुप्त का 'सत्ती मेया का चौरा' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा गया ग्रामांचल का ही उपन्यास है।

सातवें दशक में भी ग्रामांचल को आधार बनाकर **राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र** आदि ने उपन्यास लिखे। राही का 'आधा गाँव' शिया मुसलमानों की जिंदगी पर लिखा गया है और शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध को सन्निविष्ट करने का प्रयास किया गया है। किंतु इनके मूल स्वर त्रासद (ट्रेजिक) हैं क्योंकि अब छठे दशक की सभी सम्भावनाएँ समाप्त हो चुकी थीं फिर भी इसमे रुमानियत की कमी नहीं है। रामदरश मिश्र 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हुआ तालाब' और हिमांशु श्रीवास्तव का 'रथ के पहिये' ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' परंपरायुक्त अर्थ में उपन्यास नहीं है। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से संबद्ध है। फिर भी यह आंचलिक नहीं है। रिपोर्ताज शैली में लिखे गये इस उपन्यास में स्वतंत्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का तारों के रूप में ही जीवंत गहरा मखौल उड़ाया गया है।

छठे दशक में देवराज मुख्यतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की श्रेणी में आते हैं। धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास है, यद्यपि पाँचवें दशक में प्रकाशित हुआ। भारती और देवराज दोनों के उपन्यासों का वातावरण महाविद्यालयीय है। 'गुनाहों का देवता' अपनी कैशोर भावुकता तथा रुमानियत के कारण काफी लोकप्रिय हुआ। 'पथ को खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' और 'में, वे और आप' देवराज के उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों की मूलवर्तिनी धारा है–विवाह के बारह का प्रेम।

मंमथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेंद्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल', 'गंगा मेया', 'सती मैया का चोरा', अमृतराय के 'बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दाँत' संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के 'धरती की आँखें', 'काले फलों का पौधा', 'रूपाजीवा' में उपर्युक्त स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश है। 'काले फलों का पौधा' चरित्र-चित्रण, संस्कृति-संघर्ष और नव्यतर तकनीक के कारण विशिष्ट बन पड़ा है।

'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग' और 'एक इंच मुस्कान' राजेंद्र यादव के उपन्यास हैं। 'एक इंच मुस्कान' यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी लेखन है। इसमें खंडित व्यक्तित्व वाले आधुनिक व्यक्तियों की प्रेम-त्रासदी (ट्रेजिडी) है। आधुनिक जीवन की इस त्रासदी को अंकित करने के कारण यह उपन्यास यादव के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कहीं अधिक समकालीन और महत्त्वपूर्ण है।

कविता में नए प्रयोगों के साथ-साथ कहानी-उपन्यास आदि में भी नये प्रयोग हुए हैं। अब कहानी का तत्त्व क्षीण हो गया है, कथानक का पुराना रूप विघटित होकर नया हो गया है। अब जिंदगी पूरे तौर पर विश्लेषित न होकर चेतना प्रवाह, स्वप्न सृष्टि के साथ जुड़ गई है, प्रतीक, कालांतर आदि के द्वारा उपन्यासों में नए शिल्प के दर्शन हुए हैं। इस प्रयोग-संपर्क में प्रभाकर माचवे के 'परंतु', 'साँचा और आभा', भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', गिरधर गोपाल का 'चाँदनी रात के खंडहर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' आदि अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरे हुए प्रयोगशील उपन्यास हैं।

उद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक परिवेश और भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति यांत्रिक, अजनबी, अकेला या विद्रोही हो गया है। इसकी अभिव्यक्ति मुख्यतः साठोत्तरी साहित्य में होती है, भले ही उपन्यास, नाटक की अपेक्षा इसका तवेर कविता और कहानी में ही अधिक तेजस्वितापूर्ण दिखाई देता है। इस प्रकार के उपन्यासों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

(1) **यौन विच्युतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास– मोहन राकेश** के 'अंधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अंतराल', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', महेंद्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स' राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' और 'शहर था शहर नहीं था', श्री कांत वर्मा का 'दूसरी बार', ममता कालिया का 'बेघर' गिरिराज किशोर की 'यात्राएँ' मणिमधुकर का 'सफेद मेमने', कृष्ण सोबती का 'सूरजमुखी अंधेरे के' आदि उपन्यास इसी कोटि के हैं। इन उपन्यासों के प्रायः सभी नायक मानसिक दृष्टि अनिर्णयात्मक, आत्म-निर्वासित और नपुंसक हैं। वे मुक्त होने की प्रक्रिया में ऐसी उलझन में फंस जाते हैं, जहाँ से उन्हें विष्कृति नहीं मिलती। इन उपन्यासों से आधुनिकता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें स्त्री-शरीर 'नशे' या 'ड्रग' का काम करता है। राकेश को छोड़कर शेष उपन्यासों में प्रमाणिकता की भी कमी है।

(2) **दी हुई मानवीय स्थितियों में बेमेल व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास**– इस श्रेणी में **उषा प्रियवंदा** का **'रुकोगी नहीं राधिका'** और **मन्नू भंडारी** के **'उसका बंटी'** की गणना की जायगी। इन उपन्यासों की आधारभूतियाँ ठोस और प्रामाणिक हैं।

(3) व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उसके विरुद्ध युद्ध करने वाले उपन्यास– नरेश मेहता का **'वह पथ बंधु था'**, गोविंद मिश्र का वह **'अपना चेहरा'**, **बदी उज्जमा का 'एक चूहे की मौत', काशीनाथ सिंह** का **'अपना मोर्चा'**, नरेंद्र कोहली का **'आश्रितों का विद्रोह'** आदि उपन्यास इस कोटि के अंतर्गत आते हैं। लक्ष्मीकांत वर्मा ने भी कई प्रयोगशील और प्रतिबद्ध उपन्यास लिखे हैं।

इनके अतिरिक्त गिरिराज किशोर का 'जुगुलबंदी' और **'ढाई आखर'** लेख बख्शी का **'बैषाखियों वाली इमारत', देवराज उपाध्याय का 'दूसरा सूत्र'** और 'अजय की डायरी' कमलेश्वर का 'डाक बंगाल' और 'काली आंधी' और मनु भंडारी का 'महाभोज' श्री लाल शुक्ल का 'मकान' शिवप्रसाद सिंह का 'नीला चाँद' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। रमेश चौधरी आरिगमूडि, ओंकार शरद, मार्कण्डेय, मुद्राराक्षस, आनन्द प्रकाश चौबे, श्रीलाल शुक्ल, मोहन सिंह सेंगर, सत्येंद्र गुप्त, राजेंद्र अवस्थी, हंसराज रहबर, रामदरश मिश्र, मनहर चौहान, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा शिवानी आदि उपन्यास के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं। यूरोप के पुराने और नये उपन्यासों के अनुवाद का कार्य भी हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिंदी उपन्यास का युग प्रयोग का युग रहा। जीवन-मरण संबंधी पुराने सभी मत मतांतरों को चुनौती दी गई है। महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबी पन, विसंगति, संत्रास यांत्रिक तटस्थता आदि का चित्रण किया गया है। बाह्य यथार्थ की अपेक्षा आंतरिक यथार्थ को अधिक महत्ता दी गई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ लाल', लक्ष्मी नारायण का 'हरा समुंदर गोपी चंदर' जैसे आधुनिक उपन्यासों में कथा का ह्रास हुआ है कथानक का नहीं। उपन्यासों में पीढ़ियों का वैचारिक मतभेद, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बाप के संबंध में दोहरा व्यक्तित्व, अंतःबाह्य संघर्ष, मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष, कृषकों का जागरूक होना पुलिस की धांधलियाँ, महाजनों के धन शोषण के तरीके महानगर, कस्बे और गाँवों के परिवर्तन को समग्रता में

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

रेखांकित किया गया है। उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली, आत्म कथानक शैली, संकेत शैली, प्रतीक शैली द्वारा मानवीय संवेदना को उभारा गया है। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से उपन्यास में आज विविधित समृद्धि दिखाई देती है।

2.2.5 बोध प्रश्न

1. हिंदी उपन्यास के विकास के चरण बताइए।
2. प्रेमचंद तथा जैनेंद्र के दो-दो उपन्यासों के नाम बताइए।

2.3 कहानी का विकास

2.3.1 प्रारंभिक रूप : अनुवाद युग

हिंदी में कहानी वस्तुतः द्विवेदी-युग से प्रारंभ होती है। भारतेंदु-काल में और उनके पूर्व जो कहानियाँ लिखी गयीं, वे पश्चिमी ढंग की आधुनिक कहानी से काफी भिन्न हैं। वैसे तो ब्रजभाषा की वैष्णव वार्ताओं तथा दृष्टांतों, राजस्थानी वातों' गिलक्राइस्ट या लल्लूलाल द्वारा संपादित 'लतायफ' आदि की लघु कहानियों में कहानी के बहुत से तत्त्व हैं। राजस्थानी 'बातें' तो कहानियाँ ही हैं, परंतु आधुनिक कहानी से विषयवस्तु और शैली दोनों दृष्टि से पृथक् है। इंशा अल्लाह की 'रानी केतकी की कहानी' (1805 ई. के लगभग) भी दास्तान शैली की लंबी कहानी ही है। वास्तविक मानव-जीवन से दूर, अतिमानव प्रसंगों से युक्त कथाकृति से हिंदी कहानी-परंपरा का प्रारंभ नहीं माना जा सकता। इसकी रचना शुद्ध हिंदी की छटा दिखाने के लिए की गयी थी। 1860 ई. के आस-पास उस समय के शिक्षा-संचालकों की प्रेरणा से 'वुद्धिफलोदय,' 'सूरजपुर की कहानी', 'धरमसिंह का वृत्तांत' 'तीन देवी की कहानी' आदि शिक्षात्मक कहानियाँ लिखी गयी थीं, जो प्रायः अंग्रेजी या उर्दू से अनूदित हैं। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की लिखी और लिखवायी हुई 'गुलाब और चमेली का किस्सा', 'वीर सिंह वृत्तांत' आदि रचनाएँ भी प्रायः अनूदित या रूपांतरित हैं।

हिंदी की प्रारंभिक कहानियाँ आख्यायिका शैली की हैं। इनमें उल्लेखनीय है– पं. माधव प्रसाद मिश्र रचित 'मन की चंचलता' (1900 ई. के लगभग), किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती' (1900 ई. के लगभग), शेक्सपीयर के 'द टैम्पेस्ट' के आधार पर रचित 'गुलबहार', मास्टर भगवानदास कृत 'प्लेग की चुड़ैल', आचार्य रामचंद्र शुक्ल प्रणीत 'ग्यारह वर्ष का समय' गिरजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी' और 'पति का पवित्र प्रेम' बंगमहिला की 'दुलाई वाली' तथा 'कुंभी की छेटी बही', पार्वती नंदन की 'मेरा पुनर्जन्म' और वृंदावनलाल वर्मा द्वारा लिखित 'राखीबंद भाई'। इनमें कई कहानियाँ बंगला और अंग्रेजी की कहानियों में से प्रथम द्विवेदी-युग के प्रारंभ में 'सुदर्शन' में तथा शेष कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। डॉ. श्रीकृष्णलाल किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' को हिंदी की प्रथम कहानी मानते हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का कहना है कि शुक्ल जी की 'ग्यारह वर्ष का समय' नामक कहानी ही हिंदी की पहली कहानी है। लगभग इसी समय 1909 ई. से प्रसाद जी की प्रेरणा से

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

'इंदु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसमें प्रकाशित प्रसाद जी की 'ग्राम' शीर्षक कहानी हिंदी जगत में नये युग का प्रारंभ करती है।

भारतेंदु युग में लेखकों का ध्यान नाटक, निबंध और उपन्यास की ओर अधिक था। कहानी को उन्होंने अधिक महत्त्व नहीं दिया। द्विवेदी युग के प्रारंभ में भी इस ओर कम ध्यान दिया गया। अनुवाद-कार्य, भाषा के परिष्कार और गद्य के अन्य रूपों पर साहित्यकारों ने अधिक बल दिया। इन सब कारणों से प्रसाद और प्रेमचंद से पूर्व कहानी साहित्य की रचना बहुत कम हुई। उसमें वास्तविक साधारण जीवन का यथार्थ चित्र न उभर सका। इन्हीं दिनों संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों की कथाओं के आधार पर लंबी आख्यायिकाएँ भी लिखी गयीं। अधिकतर कथानक-प्रधान (घटना-प्रधान), उपदेशात्मक-कल्पनापरक, विस्मयपूर्ण, व्यंग्यविनोदमय कहानियाँ लिखी गयीं। शैली की दृष्टि से प्रेमचंद से पहले की हिंदी कहानियाँ प्रायः तीन प्रकार की हैं– ऐतिहासिक शैली में, आत्मकथात्मक और यात्रा शैली में लिखित। **द्विवेदी-युग** में **पारसनाथ त्रिपाठी**, बंगमहिला और गिरिजाकुमार घोष ने बंगला की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तर हिंद उपन्यास का युग प्रयोग का युग रहा। जीवन कारण संबंधी पुराने सभी मन मतांतरों को चुनौती दी गई है। महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबी पन, विसंगति, संत्रास, यांत्रिक तटस्थता आदि का चित्रण किया गया है। वाहन यथार्थ की अपेक्षा आंतरिक यथार्थ को अधिक महत्ता दी गई है। सर्वेश्वर दयाल का सोया हुआ जल लक्ष्मी नारायण लाल का हरा समुंदर गोपी चंदर कथा का ह्रास कथानक का नहीं जैसे उनके आधुनिक जीवन के लघु प्रसंग कथानक बन गये हैं। उपन्यास पीढ़ियों का वनारिक मतभेद, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बाप के संबंधों में दोहरा व्यक्तित्व, अंत-बाहन संघर्ष मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष, कृषकों का जागरूक होना, पुलिस की धांधलियाँ, महाजनों के रतन शोषण के तरीके महानगर, कस्बे और गांवों के परिवर्तन को समयुग में रेखांकित किया गया है। उपन्यासों में पूर्व दीप्ति शैली, आत्म कथात्मक शैली, संकेत शैली, प्रतीकशैली द्वारा मानवीय संवेदना को उभारा गया है। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से हिंदी उपन्यास आज समृद्ध दिखाई देता है। साथ ही सुंदर कहानियों का हिंदी में अनुवाद भी हुआ। आधुनिक ढंग की अंग्रेजी कहानियों का अनुवाद भी द्विवेदी-युग में प्रारंभ हुआ।

2.3.2 प्रसाद-प्रेमचंद युग

सन् 1916 ई. के आस-पास प्रेमचंद और प्रसाद कहानी के क्षेत्र में आए। इनके बाद हिंदी कहानी पर अंग्रेजी और बंगला कहानीकारों का प्रभाव कम होने लगा। द्विवेदी-युग की 'सरस्वती', 'सुदर्शन', 'इंदु', 'हिंदी गल्प-माला' आदि पत्रिकाओं का हिंदी-कहानी के प्रारंभिक विकास में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन पत्रिकाओं में सैकड़ों मौलिक और अनूदित कहानियाँ प्रकाशित हुईं। जिसमें विविध विषय और शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। कहानी का वास्तविक विकास प्रेमचंद के समय से ही प्रारंभ होता है। उनके समय में ही आख्यायिका के स्थान पर सच्ची कहानी का प्रारंभ हुआ। कहानी घटना-प्रधान के स्थान पर पात्र-प्रधान और भावना-प्रधान हुई। वास्तविक मानव-जीवन और मनोविज्ञान से उनका संबंध स्थापित हुआ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

प्रसाद जी कहानी क्षेत्र में प्रेमचंद से कुछ पहले आए थे। वे मूलतः कवि हैं और बाद में नाटककार। उनकी कहानियों में भी काव्यात्मकता और नाटकीयता है। उनकी कहानियों को लक्ष्य में रखते हुए यथार्थपरक, आदर्शवादी या रोमांटिक आदर्शवादी कहा जा सकता है। प्रसाद की कहानियों के संग्रह हैं– 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इंद्रजाल' तथा 'छाया'। प्रसाद ने अधिकतर भावनाप्रधान, कल्पना परक कहानियाँ लिखी, जो प्रायः सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। उन्होंने चरित्र-प्रधान कहानियाँ भी लिखी नाटकीयता, अर्थ की गमीरता, भावुकतापूर्ण वातावरण, काव्यात्मक भाषा और सांकेतिक व्यंजना उनकी कहानियों की अन्य विशेषताएँ हैं। प्रसाद प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे।

प्रेमचंद का आधुनिक काल के यथार्थवादी जीवन पर अधिक आग्रह था। वे यथार्थवादी हैं। प्रेमचंद ने लगभग तीन सौ कहानियाँ 'मानसरोवर' (6 भाग) तथा 'गुप्त धन' (2 भाग) में संगृहीत हैं। 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम प्रसून', 'प्रतिभा', 'प्रेमाद्वादसी', 'सप्तसुमन' आदि नामों से भी उनकी कहानियों के संग्रह छपे हैं। प्रेमचंद की प्रारंभ की कहानियों में भी घटना की प्रधातना और वर्णन की प्रवृत्ति है। चरित्र-चित्रण और मनोविज्ञान की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया। भाषा अपरिपक्व तथा व्याकरण-संबंधी दोषों से युक्त है। वस्तुतः प्रेमचंद प्रारंभ में उर्दू के लेखक थे और वहाँ से हिंदी में आये थे। उनकी प्रारंभिक राष्ट्रीय कहानियाँ 'सोजे वतन' संग्रह प्रकाशित हुई थी। आगे चलकर प्रेमचंद ने चरित्र-प्रधान, मनोविज्ञान-मूलक, वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक आदि कई प्रकार की कहानियाँ लिखीं और वास्तविक-जीवन तथा मानव-स्वभाव के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए। प्रेमचंद की भाषा सरल, व्यावहारिक है और उनके संवाद स्वाभाविक तथा सजीव हैं। साधारण घटनाओं और बातों को मार्मिक बनाने में वे कुशल हैं। प्रेमचंद नवीन जीवन-रुचि रखने वाले मानवतावादी लेखक थे। प्रारंभ में प्रेमचंद गाँधी और तालस्ताय से प्रभावित रहे। बाद में मार्क्स और लेनिन की विचारधारा की ओर झुक गए थे।

प्रसाद-प्रेमचंद युग के प्रारंभ के कहानीकारों में चंद्रधर धर्मा गुलेरी और पं. ज्वाला दत्त शर्मा के नाम भी उल्लेखनीय हैं। गुलेरी जी की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी हिंदी की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इस कहानी में भावुक वीर तथा कर्त्तव्य-परायण लहनासिंह के पवित्र प्रेम और बलिदान का चित्रण है। सुंदर ढंग से विकसित होने वाला, संगठित, कुतूहलपरक नाटकीय कथानक, सजीव वातावरण, मार्मिक अंत, संवादों तथा घटनाओं की योजना द्वारा पात्रों का स्वाभाविक चरित्र-चित्रण, पात्रानुकूल संवाद, मुहावरेदार सरल-सजीव भाषा और सांकेतिक अभिव्यक्ति इस कहानी की मुख्य विशेषताएँ हैं। गुलेरी ने केवल तीन कहानियाँ लिखी हैं, परंतु तीन कहानियों के बल पर वे हिंदी के इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान बना गए हैं। सुदर्शन, विश्वंभरनाथ 'कौशिक', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' चतुरसेन शास्त्री, रायकृष्णदास, चंडीप्रसाद 'हृदयेश', गोविंद वल्लभ पंत, वृंदावन लाल वर्मा, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', राधिकारमण प्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त और भगवती प्रसाद वाजपेयी, प्रेमचंद-प्रसाद-काल के अन्य उल्लेखनीय कहानीकार हैं।

सुदर्शन और कौशिक प्रेमचंद की शैली के कहानीकार हैं। दोनों ने आदर्शोंमुख यथार्थवाद को अपनाकर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और पारिवारित कहानियाँ लिखी हैं। चरित्र-चित्रण और भाषा की

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

दृष्टि से भी ये दोनों प्रेमचंद के निकट हैं। सुदर्शन ने मानव-जीवन के विविध पक्षों और अनेक सामाजिक सत्यों का चित्रण किया है। कौशिक जी ने अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन के सुंदर चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनकी 'ताई' नामक चरित्र प्रधान कहानी हिंदी जगत् में प्रसिद्ध हैं। चरित्र-परिवर्तन उनकी कहानी में स्वाभाविक रूप से होता है। संवादों द्वारा पात्रों की मन, स्थति पर कहीं-कहीं उन्होंने अच्छा प्रकाश डाला है। सुदर्शन के कहानी संग्रहों के नाम हैं– 'परिवर्तन', 'सुदर्शन-सुधा', 'तीर्थयात्रा', 'सुदर्शन-सुमन', 'पुष्पलता', 'सुप्रभात', 'नगीना', 'फूलवती', 'पनघट'। कौशिक जी की कहानियाँ 'गल्पमन्दिर', 'चित्रशाला', 'प्रेम-प्रतिमा', 'कल्लोल' आदि शीर्षक से प्रकाशित हुई हैं।

उग्र जी ('चाकलेट', 'चिनगारियाँ', 'इंद्रधनुष', 'निर्लज्ज', 'दोजख की आग', 'सनकी अमीर', 'पीली इमारत', 'चित्र-विचित्र', 'यह कंचन सी काया', 'कला का पुरस्कार' आदि के लेखक) उच्चकोटि के कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में समाज और राजनीति का मार्मिक अंकन हुआ है। रूढ़ियों तथा राजनीतिक एवं राष्ट्रीय दुष्प्रवृत्तियों पर उन्होंने तीव्र रोष प्रकट किया है। उनके पात्र सजीव-सबल होते हैं, संवाद प्रायः छोटे तथा स्पष्ट और भाषा वक्र होने पर भी सरल। उग्र जी ने कई तरह की कहानियाँ लिखी हैं– भावुकता तथा कल्पना से पूर्ण प्रतीकात्मक, समस्यामूलक और नाटकीय रेखाचित्र जैसी। चतुरसेन (राजकण अक्षय आदि) ने अधिकतर सामाजिक परिस्थितियों का अंकन किया है। राधाकृष्णदास (सुधांशु आदि) भावप्रधान कहानियों के लेखक हैं। वे प्रसाद-पद्धति के कहानीकार हैं। राधाकृष्णदास ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं। भावुकता, उच्च भावों की व्यंजना, स्वल्प कथानक और अलंकृत भाषा उनकी विशेषताएँ हैं। पं. गोविंदवल्लभ पंत में भी भावुकता, तथा कल्पना की रंगीनी है, साथ ही यथार्थ की कटुता भी प्राप्त होती है। उनकी कहानियों में रोचकता भी काफी है। श्री वृंदावनलाल वर्मा ('कलाकार का बल' आदि) मुख्यतः उपन्यासकार हैं। उनकी कहानियों में कल्पना तथा इतिहास का समन्वय होता है। और सरल, स्वाभाविक भाषा-शैली होती है। प्रायः सभी कहानियाँ वर्णनपरक, बहिर्द्वंद्वपूर्ण तथा आदर्शोंमुख हैं। जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' (किसलय, मृदुदल, मधुमयी आदि) की कहानियाँ भी मार्मिक तथा करुणापूर्ण हैं। राधिकारमण प्रसाद सिंह की शैली भी काव्यात्मक तथा अलंकृत ही हैं। उनकी कहानियों का वातावरण प्रायः भावात्मकता तथा मार्मिकता से पूर्ण होता है। सियारामशरण गुप्त की कहानियों में सरल रोचक शैली में कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुई है। भगवती प्रसाद वाजपेयी (पुष्करिणी, खाली बोतल हिलोर आदि) की कहानियों में प्रायः घटनाओं की सांकेतिक व्यंजना रहती है। उन्होंने असाधारण परिस्थितियों में पड़े हुए नर-नारियों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है। इस समय के अन्य उल्लेखनीय कहानीकार हैं– विनोद शंकर व्यास, मोहनलाल महतो 'वियोगी' तथा शिवपूजन सहाय, समित्रानंदन पंत और निराला जी ने भी कुछ कहानियाँ लिखी हैं।

उपर्युक्त कहानीकारों में कौशिक, सुदर्शन, वाजपेयी आदि प्रेमचंद के आदर्शों से प्रभावित हैं और राधिकारमण प्रसाद, रायकृष्णदास, विनोदशंकर व्यास द्विज आदि प्रसाद के आदर्शों से। कुछ कहानीकार अपना पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व रखते हैं और उन्हें इन दोनों में से किसी वर्ग में नहीं रखा जा सकता।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.3.3 वर्तमान युग : तीन पीढ़ियाँ

वर्तमान समय में हिंदी में कई पीढ़ियाँ एक साथ कहानी लिखने में लगी रही हैं। प्रेमचंद काल के उत्तरार्द्ध में इस क्षेत्र में आने वाले कुछ कहानीकार हैं– जैनेंद्र ('फांसी', 'स्पर्द्धा', 'वातायन', 'पाजेब', 'जयसंधि', 'एक रात', 'दो चिड़ियाँ' आदि), यशपाल ('वो दुनिया', 'ज्ञान दान', 'अभिशप्त', पिंजड़े की उड़ान', 'तर्क का तूफान', 'चित्र का शीर्षक', 'यशपाल : श्रेष्ठ कहानी'), इलाचंद जोशी ('रोमांटिक छाया', 'आहुति', 'दिवाली और होली', 'कंटीले फूल लजीले कांटे'), अज्ञेय ('विपथगा', 'कोठरी की बात', 'परंपरा', 'जयदोल' आदि), भगवती चरण वर्मा ('दो बांके', 'इंस्टालमेंट' आदि), चंद्र गुप्त विद्यालंकार ('चंद्रकला', 'वापसी', 'अमावस', 'तीन दिन')। ये कथाकार जो उस समय नयी पीढ़ी के कहानीकार माने जाते थे अब पुराने हो चुके हैं। इनके बाद इनमें कहानीकारों की दो और पीढ़ियाँ विकसित हो चुकी हैं। इन तीनों पीढ़ियों के कहानीकारों में हिंदी कहानी का विषयवस्तु तथा शिल्प दोनों से पर्याप्त विकास किया है।

जैनेंद्र, इलाचंद जोशी और अज्ञेय ने चरित्र प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। मार्मिक दृश्यों का चयन, एक ही दृश्य या घटना के सहारे कथानक का निर्माण करके देशकाल के संकलन का निर्वाह, असाधारण परिस्थितियों में पड़े मानवों का सूक्ष्म मनोविश्लेषण विचारात्मकता और यत्र-तत्र वक्र-अस्पष्ट भाषा जैनेंद्र की कहानी कला की विशेषताएँ हैं। इलाचन्द जोशी की कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों का मार्मिक उद्घाटन है। साधारण-असाधारण दोनों प्रकार के पात्रों का चित्रण उन्होंने किया। जोशी जी का कहना है कि मनोविश्लेषण करते हुए व्यक्ति के अहं पर प्रहार करना ही मेरा लक्ष्य है। अज्ञेय ने भी मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ अधिक लिखी हैं। अज्ञेय ने मनोवैज्ञानिक तथा सामयिक सत्य की व्यंजना करने वाली कहानियों के साथ समाज के मध्यम-वर्ग के दैनिक जीवन की विशेषताओं और उनकी साधारण तथा कारुणिक स्थितियों के खंडचित्र प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ भी लिखी हैं और राजनीतिक विद्रोह से संबंधित कहानियाँ भी। इनकी कहानियाँ पात्रों के पिछले जीवन की अस्फट चित्र कल्पनाओं के रूप में हैं। कुछ अधूरापन-सा होने पर भी अज्ञेय की कहानियाँ प्रभावपूर्ण होती हैं।

यशपाल प्रगतिशील लेखक थे। जीवन के संघर्षों और विविध परिस्थितियों का उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर सजीव अंकन किया है। उनकी कहानियों में वर्तमान समाज की विशेषताओं पर तीव्र व्यंग्य-प्रहार है। भगवतीचरण वर्मा की शैली बड़ी सरस और आकर्षक है। इनकी कहानियों में पात्र कम होते हैं, परंतु वे पूर्णतः सजीव और विश्वसनीय हैं। आप आधुनिक मानव और उसके जीवन को अच्छी तरह समझते हैं। सामाजिक तथा ऐतिहासिक दोनों प्रकार की कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं। चंद्रगुप्त विद्यालंकार ने दैनिक जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर प्रभावपूर्ण कहानियाँ लिखी। उन्होंने मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए कुछ शाश्वत सत्यों और साथ ही सामयिक सत्यों की सुन्दर व्यंजना की है। उनकी कुछ कहानियों में एक संगठित कथानक न होकर कई संबद्ध कथा-खंड प्रस्तुत किये गये हैं, जिनके द्वारा उन्होंने किसी सत्य की व्यंजना की है। इन कहानीकारों ने चरित्रप्रधान, प्रभाववादी, मनोविश्लेषणपरक, भावना-प्रधान वातावरण-प्रधान, किसी शाश्वत या सामयिक सत्य की व्यंजना करने

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वाली कई प्रकार कहानियाँ लिखी हैं। ऐतिहासिक शैली के अलावा, आत्मकथा, पत्र, डायरी आदि अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है।

आधुनिक काल की इस पहली पीढ़ी के बाद और दूसरी पीढ़ी के कुछ पहले आने वाले उल्लेखनीय कथानक है– उपेंद्र अश्क, नागार्जुन, उषादेवी मित्रा, पहाड़ी, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय, रांगेय राघव। दूसरी पीढ़ी में भी कई अच्छी प्रतिभाएँ हैं। फणीश्वरनाथ रेणु, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, अमरकांत, मोहन राकेश, नरेश मेहता, शिवप्रसाद सिंह, धर्म उल्लेखनीय हैं– निर्मल वर्मा, रामकुमार विजय चौहान, कृष्ण बलदेव वैद, रामकमल चौधरी, उषा, प्रियंवदा आदि। इन दोनों पीढ़ियों की कहानियों के बहुत से सुंदर संग्रह इधर प्रकाशित हुए हैं। इनके कुछ अच्छे संग्रहों के नाम हैं– 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (राजेंद्र यादव), 'चाँद और टूटे हुए लोग' (धर्मवीर भारती), 'धरती अब तक धूम रही है' (विष्णु प्रभाकर), 'जानवर और जानवर', 'नए बादल' (मोहन राकेश), 'गीली मिट्टी' (अमृतराय), 'कुमारी' (रेणु), 'भूदान' (मार्कण्डेय), 'चाय का रंग' (देवेंद्र सत्यार्थी), 'जीने की सजा' (आरिगपूडि), 'नरक का न्याय' (मोहसिंह 'सेंगर', 'प्यार के बन्धन' (रावी), 'मेरी तैंतीस कहानियाँ' (शैलेश मटियानी)। हिंदी की नवीनतम कहानियों में कथा तत्त्व की न्यूनता, कामकुण्ठाओं का विश्लेषण, व्यक्ति की पीड़ा, विवशता की अभिव्यक्ति, किसी मनःस्थिति का अंकन और आलोचना-प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। वर्तमान युग में आंचलिक कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं। भावकथाएँ, गाथाएँ और लंबी कहानियाँ कभी-कभी पत्रिकाओं में दिखाई देती है।

हिंदी में हास्य कहानियाँ भी लिखी गई हैं। इस प्रकार की कहानियाँ जी.पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, अन्नपूर्णानंद, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी आदि ने लिखी हैं। जहूर बख्श आदि ने बाल कहानियाँ लिखी हैं। नारी कहानीकारों में सुभद्रा कुमारी चौहान, सत्यवती मलिक, कमला चौधरी, शिवरानी देवी, कृष्णा सोबती, मनु भंडारी, तारा पाण्डे, उषा प्रियवंदा आदि ने अच्छा कार्य किया है। कहानी के विकास में 'कहानी', 'सारिका', 'नई कहानियाँ', 'कादंबिनी', 'धर्मयुग', 'साप्तहिक हिंदुस्तान' आदि पत्रिकाएँ अच्छा योग दे रही हैं।

आज के प्रयोगवादी युग में हिंदी कहानी सभी रूपों में बढ़ रही हैं। कुछ कहानीकार कथानक रहित कहानी लिखने का यत्न कर रहे हैं। कहानी बहुत अमूर्त (ऐबस्ट्रैक्ट) होती जा रही है। आज कहानी में प्रायः एक मनःस्थिति, क्षण-विशेष की अनुभूति, व्यंग्यचित्र या चिन्तन की झलक प्रस्तुत की जाती है। कहानी में विषयवस्तु क्षीण, पात्र बहुत थोड़े (एक दो ही) और अस्पष्ट होते जा रहे हैं और पुराने ढंग की सरलता समाप्त होती जा रही है। नयी कविता की तरह नयी कहानी भी कहानीपन छोड़कर निबंध के निकट (कथानक निबंध के निकट) पहुँच रही है। भारतेंदुकाल में जो कहानी घटना-प्रधान थी, प्रेमचंद युग में वो चरित्र-प्रधान तथा मनोवैज्ञानिक हुई। जैनेन्द्र-अज्ञेय के उत्कर्ष काल में जो मनोविश्लेषणमय तथा चिंतनपरक बनी, वही अब कथानक परक तो है ही नहीं एवं चरित्र-चित्रणपरक भी नहीं रही। विषयवस्तु और शिल्प दोनों में वह काफी आगे बढ़ गई है, परंतु जैसा कि हम कह चुके हैं, कहानीपन और सरलता उसमें से समाप्त होती जा रही है। किंतु कई अच्छे कहानीकार भी उभरे हैं। जिन्होंने हिंदी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

कहानी की परंपरा को समृद्ध किया है। इनमें काशी नाथ सिंह ज्ञान रंजन, रमेश उपाध्याय, गोविंद मिश्र, निरंजन श्रोत्रीय, नरेंद्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडेय आदि प्रमुख हैं। भविष्य में उसका क्या रूप होगा, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

2.3.4 बोध प्रश्न

1. 'पूस की रात' कहानी के रचनाकार कौन हैं ?
2. वर्तमान युग के तीन कहानीकारों के नाम बताइए।
3. जयशंकर प्रसाद की दो कहानियों के नाम बताइए।

2.4 हिंदी निबंध का विकास

हिंदी निबंध का जन्म भारतेंदु-काल में हुआ। यह नवजागरण का समय था। भारतीयों की दीन-दुःखी दशा की ओर लेखकों का बहुत ध्यान था। पुराने गौरव, मान, ज्ञान, बल-वैभव को फिर लाने का प्रयत्न हो रहा था। लेखक अपनी भाषा को भी हर प्रकार से संपन्न और उन्नत करने में लग गए थे, और सबसे बड़ी बात यह थी कि इस काल के लेखक स्वतंत्र विचार के थे। उनमें अक्खड़पन भी था। ऐसी युग निबंध के बहुत अनुकूल होता है, इसलिए इस युग में जितने अच्छे निबंध लिखे गये उतने अच्छे नाटक, आलोचना, कहानी आदि के ग्रंथ नहीं लिखे गए।

भारतेंदु युग— भारतेंदु काल के वातावरण और परिस्थितियों से तो आप परिचित ही हैं। उस युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', बालमुकुंद गुप्त, राधाचरण गोस्वामी जैसे प्रमुख निबंधकार हुए।

भारतेंदु जी के निबंध भी अनेक विषयों पर हैं। 'काश्मीर कुसुम', 'उदयपुरोदय', 'कालचक्र', 'बादशाह दर्पण', ऐतिहासिक, 'वैद्यनाथ धाम', 'हरिद्वार', 'सरयू पार की यात्रा'—विवरणात्मक, 'कंकण स्तोत्र'—व्यंग्यपूर्ण वर्णनात्मक और 'नाटक', 'वैष्णवता और भारतवर्ष' विचारात्मक निबंध हैं। भारतेंदु सबसे अधिक सफल हुए अपने व्यंग्यात्मक निबंधों में। 'लेवी प्राणलेवी', 'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन', 'पाँचवें पैगंबर', 'अंग्रेज स्तोत्र', 'कंकड़ स्तोत्र' आदि में गजब का हास्य-व्यंग्य है ही 'सरयू पार की यात्रा' में भी भारतेंदु अपने व्यंग्य का बढ़िया नमूना उपस्थिति करते हैं। जैसे— वाह से बस्ती। झक मारने बसती है। अगर बस्ती इसी को कहते हैं, तो उजाड़ किसे कहेंगे?

इनके निबंधों की भाषा स्वच्छ और श्लेषपूर्ण है। कहीं-कहीं तो उर्दू की बढ़िया शैली भी आपने उपस्थित की। भाव और विचार की दृष्टि से युग की वे सभी विशेषताएँ इनमें भी हैं। जो भट्ट जी या प्रतापनारायण मिश्र में है।

बालकृष्ण भट्ट अपने समय के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहला सकते हैं। इन्हें हिंदी का 'मान्तेन' कहा जाता है। भट्ट जी ने सभी प्रकार के निबंध लिखे। 'मेला-ठेला', 'वकील'—वर्णनात्मक, 'आंसू', 'चंद्रोदय',

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

'सहानुभूति', 'आशा माधुर्य', 'खटका'—भावात्मक 'आत्म-निर्भरता', 'कल्पना-शक्ति', 'तर्क' और 'विश्वास'—विचारात्मक निबंध हैं। 'खटका', 'इंगलिस पढ़े तो बाबू होय', 'रोटी तो कमा खाय किसी भांति', 'मुछंदर', 'अकल अजीरन राग' आदि निबन्धों में मस्ती, हास परिहास, विनोद-व्यंग्य सभी कुछ हैं। ऐसे निबंधों की भाषा चलती और दैनिक व्यवहार की है। भट्ट जी की भाषा विषय के अनुकूल और अपने समय में सबसे अधिक मंजी हुई सबल और प्रभावशाली है। समाज, व्यक्ति, जीवन, धर्म, दर्शन, राष्ट्र हिंदी— सभी विषयों पर आपने लिखा।

जन-साहित्य को जन-भाषा में लिखने वालों में प्रतापनारायण मिश्र का नाम सर्वप्रथम आएगा। इनके व्यक्तित्व और निबंधों में निराला आकर्षण हैं। लापरवाही, चुभता व्यंग्य, गुदगुदी भरा विनोद इनकी रचनाओं की विशेषताएँ हैं। इस युग में इतनी चुलबुली भाषा लिखने वाला और कोई नहीं हुआ। यह 'ब्राह्मण' नामक पत्र निकालते थे, जिसमें इनके निबंध छपते थे। छोटे-छोटे विषयों पर इतने बढ़िया, मनोरंजन और उच्च उद्देश्य को लेकर किसी लेखक ने नहीं लिखा। 'नाक', 'भौह', 'वृद्ध', 'मृच्छ' आदि विषयों को लेकर आपने अपने निबन्धों से मनोरंजन का सामान भी जुटाया और देश-प्रेम, समाज-सुधार, हिंदी के प्रति प्रेम, स्वाभिमान, आत्म-गौरव का सन्देश भी दिया। इनकी शैली में घरेलू बोलचाल की शब्दावली तथा पूर्वी बोलियों की कहावतें और महावरों का प्रयोग मिलता है। लापरवाही के कारण भाषा की अशुद्धियाँ रहना साधारण बात है। 'आत्मीयता', 'चिंता', 'मनोयोग' इनके विचारात्मक निबंध हैं।

प्रेमधन जी अपने निरालेपन के लिए याद किए जाते हैं। उनका उद्देश्य यह नहीं था कि उनकी बात साधारण समाज तक पहुँचे, उसका मनोरंजन हो या उसके विचारों में परिवर्तन हो। कलम की करामात दिखाना ही उनका उद्देश्य था। वह स्वाभाविक, प्रवाहमय, सुबोध भाषा नहीं लिखते। बल्कि शब्दों की जड़ाई करते थे। भाषा बनावटी होते हुए भी उसमें कहीं-कहीं विवेचन की शक्ति पायी जाती है। आप 'नागरी नीरद' और 'आनंद कादंबिनी' नामक पत्र निकालते थे। इन्हीं में उनके निबंध छपा करते थे। इनके शीर्षक उनकी भाषा-शैली को प्रकट करते हैं जैसे— संपादकीय, संपत्ति सीर, हास्य, हरितांकुर, विज्ञापन और वीर बधूटियाँ। 'हमारी मसहरी' और 'हमारी दिनचर्या' जैसे मनोरंजक लेख उन्हीं के लिखे हुए हैं। 'फागुन', 'मित्र', 'ऋतु-वर्णन' उनके अच्छे निबंध हैं।

बालमुकुंद गुप्त इस युग के अंतिम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निबंधकार थे। 'शिवशंभू' के नाम से 'भारतमित्र' में वह 'शिवशंभू का चिट्ठा' लिखा करते थे। हास्य-व्यंग्य के बहाने 'शिवशंभू का चिट्ठा' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। उनका व्यंग्य शिष्ट और नागरिक होता था। भाषा मिली-जुली हिंदी-उर्दू। राधाचरण गोस्वामी को भी इस युग के प्रगतिशील लेखकों में गिना जाएगा। 'यमपुर की यात्रा' में उन्होंने धार्मिक अंधविश्वास का बहुत मजाक उड़ाया है। धार्मिक विचारों के लोग गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी पार करते हैं। इसमें कुत्ते की पूँछ पकड़कर वैतरणी पार कराई गई है। पहले ऐसी बात सोचना घोर पाप समझा जा सकता था।

भारतेंदु-काल के निबंधकारों की विशेषताएँ हैं— निबंधों के विषयों की विविधता, व्याकरण-संबंधी लापरवाही और अशुद्धियाँ, देशज या स्थानीय शब्दों का प्रयोग, शैली के विविध रूप और विचार-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

स्वतंत्रता, समाज-सुधार, देश-भक्ति, पराधीनता के प्रति रोष आत्म-पतन पर खेद, देशोत्थान की कामना, हिंदी-सम्मान की रक्षाभावना, हिंदू, पर्व-त्यौहारों के लिए उत्साह और नवीन विचारों का स्वागत। निबंध की एक विशेष शैली भी इस युग की विशेषता है– 'राजा भोज का सपना' (शिवप्रसाद सितारे हिंद), एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न (भारतेंदु) एक अनोखा स्वप्न (बालकृष्ण भट्ट), यमपुर की यात्रा (राधाप्रसाद गोस्वामी)– इन रचनाओं में स्वप्न के बहाने राजनैतिक अधिकार पाने, समाज सुधार तथा धर्म-संस्कार का संदेश दिया गया है।

द्विवेदी-युग– भारतेंदु-युग के बाद द्विवेदी-युग आता है। भारतेंदु-युग गद्य-साहित्य के बचपन का समय था। बचपन में लापरवाही, खिलवाड़, विनोद, मनोरंजन, मुग्धता, चंचलता रहती है। किशोर अवस्था में थोड़ी जिम्मेदारी, समझदारी, शिक्षा, नियम-पालन, साज-संवार, स्थिरता आ जाती है। इसी अवस्था में प्रतिस्पर्धा की भावना भी जगती है। अन्य साथियों की शिष्टता, शील, ज्ञान, आत्म, सम्मान आदि को देखकर उनके समान ही हम भी गुण विकसित करना चाहते हैं। यही बात भारतेंदु युग के संदर्भ में समझनी चाहिए। भारतेंदु-काल में साहित्य को बहुत लिखा गया था, पर भाषा की भूलें साधारण बात थी। निबंध के विषय भी साधारण हुआ करते थे। इस युग में इन अभावों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस काल के निबंधों का आरंभ दो अनुवाद-पुस्तकों से हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अंग्रेज लेखक बेकन के निबंधों का अनुवाद 'बेकन-विचार-रत्नावली' के नाम से, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री ने मराठी लेखक चिपलूणकर के निबंधों का अनुवाद प्रकाशित कराया। लेकिन यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि द्विवेदी-युग का निबंध-साहित्य भारतेंदु-युग के निबंध-साहित्य के समान संपन्न नहीं है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह और चंद्रधर शर्मा गुलेरी इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं। गोविंद नारायण मिश्र, पद्मसिंह शर्मा और श्यामसुंदरदास का नाम दूसरी श्रेणी में लिया जा सकता है।

द्विवेदी-युग में महावीर प्रसाद का नाम सबसे पहले आता है। अपने युग के यह आचार्य थे। आचार्य का काम होता है– शिक्षा देना, ज्ञान-वर्द्धन कराना, समाज पर नया संस्कार डालना और सुधार करना। ये सब काम इन्होंने किये, इसलिए यह आचार्य कहलाए और इनके नाम पर ही इस काल का नाम द्विवेदी-युग रखा गया।

अपने निबंधों और समालोचनाओं के द्वारा सबसे मुख्य काम इन्होंने भाषा-सुधार का किया। 'किंमकर्त्तव्य' नामक निबंध में यह लिखते हैं– 'कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है, अशुद्ध का नहीं होता। जहाँ तक संभव हो, शब्दों का मूल न बिगाड़ना चाहिए। मुहावरे का विचार रखना चाहिए। क्रोध क्षमा कीजिए, इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुँचाते हैं।...' इस अवतरण से इनके भाषा संबंधी विचार स्पष्ट हो जाते हैं।

द्विवेदी जी ने सभी प्रकार के निबंध लिखे। 'कवि और कविता', 'प्रतिभा', 'साहित्य की महत्ता' इनके विचारात्मक निबंध हैं। 'लोभ', 'क्रोध', 'संतोष'– भावात्मक, 'हंस का क्षीरनीर विवेक', 'जापान में पतंगबाजी', 'हजारों वर्ष पुराने खंडहर' और 'प्रताप सुषमा'– वर्णनात्मक है और 'हंस-संदेश' तथा 'नल

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

का दुस्तर दूत-कार्य'– विवरणात्मक। यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि इनके निबंधों में जानकारी अधिक रहती है, गंभीर विवेचन रखते थे। इनकी रचनाओं को पढ़कर का गौरव ऐसा लगता है कि एक आचार्य शिष्य-मण्डली को पढ़ा रहा है।

माधवप्रसाद मिश्र भारतीय संस्कृति, धर्म-दर्शन, साहित्य कला के सच्चे उपासक थे। इनका अपना व्यक्तित्व था। यदि ये किसी को भारतीय और प्राचीन साहित्य को गौरव घटाने का प्रयत्न करते हुए पाते थे, या कोई असंबंध रचना देखते थे, तो उनकी आलोचना करते थे। आचार्य द्विवेदी और श्रीधर पाठक की भी इन्होंने निर्भय आलोचना की थी। इनकी भाषा निर्दोष, साफ-सुथरी, विषयानुकूल, व्यंग्यात्मक और प्रभावशाली है। संस्कृत का प्रभाव उन पर स्पष्ट है। इनके लिखे 'धृति', 'क्षमा', 'श्री वैष्णव संप्रदाय', 'काव्यालोचना', 'बेवर का भ्रम'—विचारात्मक और 'सब मिट्टी हो गया'—भावात्मक निबंध लिखे। भारतेंदु युग की यह परंपरा मिश्र जी के निबंधों के साथ ही समाप्त हो गई।

अध्यापक पूर्णसिंह इस युग के सबसे प्रमुख, प्रभावशाली, भावुक और विचारक निबंधकार हैं। इससे अधिक गौरव की बात और क्या होगी कि इन्होंने केवल छः निबंध लिखे और फिर भी अपने समय के श्रेष्ठ लेखक माने गए। उनमें से प्रमुख है 'मजदूरी और प्रेम', 'आचरण की सभ्यता', और 'सच्ची वीरता'। अध्यापक जी के निबंधों में प्रेरणा देने वाले नए-नए विचार हैं। इनकी भाषा बड़ी ही शक्तिशाली है। उसमें एक खास बाँकपन है जिससे भाव का प्रकाशन भी निराले ढंग से होता है। विषय भी ऐसे नए कि अब तक किसी को सूझे ही नहीं। साथ ही इनमें भावुकता का माधुर्य भरा है। वीरता, आचरण, शारीरिक परिश्रम का जो महत्त्व इन्होंने समझाया, उसको ठीक समझा जाए तो आज धर्म का नया रूप सामने आ जाए। समाज में क्रांति हो जाए, मनुष्य और सारा देश उन्नति के शिखर पर पहुँच जाए। "जब तक जीवन के अरण्य में पादरी, मौलवी, पंडित और साधु-संन्यासी, हल कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं।" 'मजदूरी और प्रेम' का यह उद्धरण कितना महान् संदेश देता है। भाषा की लाक्षणिकता इनकी विशेषता है।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी भी स्वतंत्र विचारों के लिए प्रसिद्ध हैं। निबंध इन्होंने भी थोड़े ही लिखे। इनकी रचनाओं में भी जीवन को उठाने की प्रेरणा और नए विचारों का खजाना मिलता है। संस्कृत के महापंडित होते हुए भी पुरानी लकीर पीटने वाले ये नहीं थे। प्राचीन धार्मिक कथाओं की ये वैज्ञानिक और बुद्धिसम्मत व्याख्या करते थे। 'कछुआ धर्म' नामक निबंध भी गंभीर तर्कपूर्ण, प्रभावशाली, विचार-प्रधान शैली इनकी विद्वता और तर्क-कुशलता का सुंदर उदाहरण है।

गोविंदनारायण मिश्र का नाम केवल उनकी विचित्र अलंकारपूर्ण संस्कृत शब्दावली से लदी काव्यमन और बनावटी शैली के लिए लिया जा सकता है। आपको याद होगा भारतेंदु-काल में 'प्रेमधन' जी भी इसलिए याद किए जाते हैं।

प्रसाद-युग– प्रसाद युग हिंदी साहित्य का स्वर्ण काल है। क्या कविता, क्या गद्य दोनों का विकास इस काल में ऊँचे शिखर पर पहुँचा। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना सभी का खूब विकास हआ। वर्णन और विवरण प्रधान निबंधों की रचना बहुत कम हुई, विचारात्मक और भावात्मक की

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अधिक। इन दोनों प्रकार के सर्वश्रेष्ठ निबंध इसी युग में लिखे गए। विचारात्मक निबंधकारों में आचार्य रामचंद्र शक्ल और भावात्मक निबंधकारों में डॉ. रघुवीर सिंह, सिरमौर हैं। गुलाबराय, वासुदेवशरण अग्रवाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, माखनलाल चतर्वेदी, वियोगी हरि और रायकृष्णदास का नाम भी उल्लेखनीय है।

गुलाबराय जी के सामने द्विवेदी-युग का सारा साहित्य-भंडार था। इनके साहित्य का बहुत कुछ रंग द्विवेदी-युग का रहा। यह निबंधकार पहले है, आलोचक बाद में। 'फिर निराशा क्यों'? 'मेरी असफलताएँ', 'अंधेरी कोठरी' इनके निबंध संग्रह हैं। 'मेरी असफलताएँ' आत्मपरक या वैयक्तिक व्यंग्यात्मक निबंधों का संग्रह है। शेष दोनों संगहों में विचारात्मक निबंध हैं। अंतिम संग्रह मनोवैज्ञानिक निबंधों का है। आपकी भाषा बड़ी सरल और सुबोध होती है। विचारात्मक और मनोवैज्ञानिक निबंधों तक में भाषा या भाव की उलझन नहीं मिलेगी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध-संग्रह 'चिंतामणि' भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। विचारात्मक निबंधों में शुक्ल जी के निबंध सर्वश्रेष्ठ हैं। इनमें विचारों की बारीकी और गंभीरता, भावों की मनोवैज्ञानिकता, भाषा का गठन और उसकी शक्ति आदि आदर्श हैं। 'चिंतामणि' में 'क्रोध', 'ईर्ष्या', 'लोभ और प्रीति', 'उत्साह', 'श्रद्धाभक्ति', 'भय', 'करुणा', 'घृणा', 'लज्जा' और 'ग्लानि' आदि विषयों पर लिखे निबंध मानविक भावों, वृत्तियों और विचारों से संबंध रखते हैं। 'कविता क्या है?' 'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्य' साहित्यिक व्याख्या और विश्लेषण संबंधी हैं और 'तुलसीदास का भक्ति मार्ग', 'मानस की धर्म-भूमि' आदि साहित्य-समीक्षा-संबंधी 'मित्रता' और 'प्राचीन भारतीयों का पहरावा' परिचयात्मक वर्णनात्मक निबंध हैं।

मनोभावों या चित्तवृत्तियों का विवेचन करते हुए वे राजनीति, समाजनीति, धर्म, पारस्परिक व्यवहार आदि पर भी यह अपने मौलिक विचार प्रकट करते चलते हैं। इन निबंधों की शैली में लेखक का गहन ज्ञान और गंभीर व्यक्तित्व प्रकट होता है। थोड़े शब्दों में बड़ी से बड़ी बात करने की शक्ति इनमें है। जो उच्च स्थान इनका आलोचक के रूप में है, वही निबंधकार के रूप में भी है। लोक मंगल की भावना भी इनके निबंधों की प्रमुख विशेषता है।

छायावाद-युग के कवियों ने भी कुछ रेखाचित्र, संस्मरण और ललित निबंधों की सम्मिश्रित विधा में रचनाएँ की हैं। ऐसी रचनाओं में महादेवी वर्मा की ये पुस्तकें उल्लेखनीय मानी जाती हैं– 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र' तथा 'श्रृंखला की कड़ियाँ'। इनके अतिरिक्त गंभीर विचारपूर्ण निबंधों के लेखक सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को भी नहीं भुलाया जा सकता था। उसके तीन निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'पृथिवी पुत्र' में अपने एक स्थान पर कहा है। "विदेशी विचारों को मस्तिष्क में भर कर उन्हें अधपके ही बाहर उंडेल देने से किसी साहित्य का लेखक लोक में चिर जीवन नहीं पा सकता। हिंदी साहित्यकारों को अपनी खुराक भारत की सांस्कृतिक और प्राकृतिक भूमि से प्राप्त करना चाहिए।" ये भारतीयता के पुजारी और पक्ष-पोषक थे। 'कला संस्कृति' में प्राचीन और नवीन भारतीय ऋषियों, दार्शनिकों, कवियों और कलाकारों के विषय में निबंध हैं। इन्होंने 'समुद्र-मंथन', 'कल्पवृक्ष' आदि की व्याख्या नवीन वैज्ञानिक और महोविज्ञानिक ढंग से की है। आपके सभी निबंध विचारात्मक हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

निबंध-लेखकों में शांतिप्रिय द्विवेदी को भी नहीं भुलाया जा सकता। 'संचारिणी', 'सामयिकी', 'पथचिह्न', 'युग और साहित्य', 'परिव्राजक की प्रजा' इनकी पुस्तकें हैं। गाँधीवादी नैतिकता और छायावादी भाषा उनकी रचनाओं की विशेषता है। 'धरातल' में आप अपने को समाजवाद का हिमायती बताते हैं। इस संग्रह में जीव की समस्याओं का भौतिक समाधान खोजा गया है। विचारात्मक और भावात्मक दोनों प्रकार के निबंध उन्होंने लिखे हैं। हिंदी निबंध-साहित्य को इनकी देन है इनके वैयक्तिक निबंध। इस क्षेत्र में यह अद्वितीय हैं। अपने माता-पिता-बहन के जो चित्र इन्होंने खींचे हैं। उनमें करुणा की नमी है और हृदय को स्पर्श करने वाली सच्चाई। इनके ये अनुपम वैयक्तिक निबंध 'पदचिह्न' और 'परिव्राजक की प्रथा' में संगृहीत हैं। आप काव्यमय, कोमल-कांत भाषा का प्रयोग करते हैं।

डॉ. रघुवीर सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, रामकृष्ण दास, वियोगी हरि आदि ने भावात्मक निबंध लिखे। रधुवीर सिंह और माखनलाल जी के निबंध काफी बड़े हैं, शेष दोनों के बहुत छोटे-छोटे एक डेढ़ पृष्ठ के। इनके निबंधों की शैली अन्य निबंधकारों की शैली से भिन्न हैं– छोटे-छोटे वाक्य, कहीं खंडित, कही अपूर्ण। आश्चर्य, शोक, करुणा, प्रेम का आवेश इसमें उमड़ता सा दिखता है, ऐसी रचनाओं को हिंदी गद्यकाव्य का नाम दिया गया है। हम इन्हें निबंध मानते हैं। गद्य-काव्य के भीतर तो कहानी, नाटक, उपन्यास, शब्दचित्र, निबंध, आलोचना, सभी कुछ सम्मिलित हैं।

रघुवीर सिंह इतिहास के विद्वान हैं। मुगलकालीन घटनाओं, इमारतों, चरित्रों को लेकर इन्होंने 'अतीत स्मृति' और 'शेष स्मृतियाँ' दो पुस्तकें लिखी। वैसे तो इन निबंधों में वर्णन और विवरण है, फिर भी ये भावात्मक हैं। क्योंकि लेखक ने इनमें वर्णन को महत्त्व नहीं दिया, इनको देखकर अपने हृदय में उठने वाले भावों को ही प्रकाशित किया है।

माखनलाल जी ने विचार-प्रधान निबंधों को भी भावात्मक शैली में लिखा। 'युग और कला', 'साहित्य देवता', 'रंगों की बोली', 'व्यक्तित्व' आदि निबंध-कला, साहित्य, चित्रकला और व्यक्तित्व विषयों पर हैं, ये विचारात्मक हो सकते हैं। लेकिन विचार भी प्रभावात्मक ढंग से दिये गये हैं। लेखक की मुग्धता, श्रद्धा, करुणा, सहानुभूति ही इसमें प्रकट हुई है।

वियोगी हरि और रायकृष्णदास जी की रचनाओं में भक्ति, प्रेम, विस्मय, पश्चात्ताप, आत्म-निवेदन, मनोमुग्धता, करुणा, संवेदना आदि अनेक भाव और भावना प्रकट हुई हैं। 'भावना' और 'अंतर्नाद' वियोगी हरि की और 'साधना' रायकृष्ण दास की पुस्तक है। इन सभी निबंधकारों ने उर्दू शब्दों का भी यथावसर प्रयोग किया है।

प्रसादोत्तर या प्रगतियुग में निबंध-साहित्य ने सबसे अधिक विकास किया। विषयों की संख्या और विविधता की दृष्टि से तो इस युग का मुकाबला ही नहीं। यह युग की उथल-पुथल का युग है। दूसरा विश्वयुद्ध हुआ, समाजवादी विचारों का आगमन हुआ। भारत स्वतंत्र होकर विभाजित हुआ। प्राचीन साहित्य, संस्कृति और कला की ओर हमारा ध्यान गया। अनेक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएँ भी पैदा हुई। इन सब बातों की छाया निबंधों में भी मिलती है। इस युग के चार निबंधकार विशेष रूप से

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उल्लेखनीय है— आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और जैनेंद्र कुमार के निबंधों का दृष्टिकोण व्यापक है— भवंत आनंद कौशल्यायन तथा यशपाल के निबंधों में प्रगतिवादी दृष्टि प्रमुख हैं।

कौशल्यायन जी बौद्ध भिक्षु थे और समाजवादी विचारों का इन पर बहुत प्रभाव था। निबंध तो इन्होंने बहुत नहीं लिखे, पर पृथक् विषय की दृष्टि से इनका महत्त्व है। 'जो न भूल सका' इनके संस्मरणात्मक निबंधों का संग्रह है, जिनमें सामाजिक विषमता, धार्मिक शोषण, आर्थिक उत्पीड़न के तीखे चित्र हैं। धर्म को यह शोषण का संगठित साधन बताते हैं और अमीरों के भवनों को गरीबों की हड्डियों की ईंटों और खून के चूने से बना मानते हैं। जनवादी लेखक होने से इनकी भाषा सरल है।

प्रगतिवादी निबंध-साहित्य में **यशपाल** बेजोड़ हैं। इनके ये निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं— 'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष', 'गाँधीवाद की शव परीक्षा', 'देखा, सोचा, समझा', 'बात में बात', 'राम-राज्य की कथा' इन सभी पुस्तकों के नामों से भी पता चलता है कि ये समाजवाद के समर्थक ही नहीं, प्रचारक भी हैं। पुरानी परंपराओं, समाज के ढाँचे, धर्म की बुनियादों पर उन्होंने बड़े जोश के साथ वार किए हैं। इनका विश्वास है कि पुराने दर्शन और संस्कृति, मानव की उन्नति में रोड़े हैं। इसलिए इनका विरोध यह निडर होकर करते हैं। वर्तमान समाज में धन के गलत बंटवारे के कारण कोई राजा बन गया और कोई गुलाम। यह कहते हैं कि "मानव की घृणा, मानव से मानव की शत्रुता, मानव द्वारा मानव का शोषण और अपमान तभी दूर हो सकेगा, जब सबको अपने परिश्रम का फल मिले, विकास का अवसर प्राप्त हो।" सभ्यता, संस्कृति, कला, साहित्य, समाज सभी के विषय में इन्होंने अपने मौलिक विचार प्रकट हुए। सामान्य निबंध में भी आपका गहन अध्ययन भरा पड़ा है। विविधता की दृष्टि से इन्होंने हिंदी निबंध-साहित्य को धनी बताया है। इनके निबंधों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

संस्कृति : भारतीय संस्कृति की देन, संस्कृतियों का संगम, तेरी जन्म-भूमि। ज्योतिष संबंधी ब्रह्मांड का विस्तार, केतु-दर्शन, फलित ज्योतिष। **नैतिक** : प्रायश्चित की घड़ी, आंतरिक शुचिता की आवश्यकता। **प्रकृति संबंधी** : अशोक के फूल, बसंत आ गया, आम फिर बौरा गए। **आलोचना संबंधी** : आलोचक की डाक, साहित्य का नया कदम, आलोचना का स्वतंत्र मान, मनुष्य की सर्वोच्च कृति साहित्य, क्या आपने मेरी रचना पढ़ी है। निबंध के सभी प्रकार इनके संग्रहों में मिल जायेंगे। 'अशोक के फूल', 'कल्पना', इनके निबंध संग्रह हैं।

इनका विश्वास है कि भारतीय संस्कृति अनादि काल से बहने वाली धारा है। यह किसी एक धर्म, विश्वास आस्था या जाति की चीज नहीं। 'जिसे हम हिंदू-राजनीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और अनार्य उपादानों का मिश्रण है।' ये गाँधीवाद के समर्थक ही नहीं अपने को गाँधीवाद भी घोषित करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समान ही समाज-निर्माण, लोक-संग्रह, मानवरहित को ही साहित्य का लक्ष्य मानते हैं। यों तो आपके अधिकतर निबंध विचार-प्रधान हैं, पर 'अशोक के फूल', 'वह चला गया', 'क्या आपने मेरी रचना पढ़ी है' अच्छे भावात्मक निबंध हैं। 'नाखून क्यों बढ़े हैं' और 'क्या आपने मेरी रचना पढ़ी' में गजब का हास्य-विनोद है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

जैनेंद्र कुमार शुद्ध रूप से विचारक हैं। धर्म, युद्ध, न्याय, राष्ट्रीयता, दान की बात, दीन की बात, पैसा कमाई और भिखाई, गाँधीवाद का भविष्य, रोटी का मोर्चा, संस्कृति की बात, उपवास और लोकतंत्र, दुःख, सत्यं शिवं सुंदरं, साहित्य की सच्चाई, प्रगतिवाद, जड़चेतन, संपादकीय मैटर– इनके इन निबंधों से विषय की विविधता का तो पता चलता ही है, यह भी पता चलता है कि लेखक समाज, साहित्य, धर्म, राजनीति, जीवन की यथार्थ उलझनों आदि किसी से भी बेखबर नहीं। इनके ये निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं– 'जड़ की बात', 'पूर्वोदय', 'जैनेंद्र के विचार', 'इतस्ततः'। इनके निबंधों की विशेषताएँ हैं– गाँधीवाद, नैतिकता, संस्कृति-प्रेम, मौलिक विचार, स्वतंत्रता और सबल, संक्षिप्त गठी हुई शैली। व्यक्तित्व और शैली को निबंध का प्राण मानें, तो जैनेंद्र जी एक महान लेखक हैं। भाषा सरल, हाट-घाट-बाट की है, लेकिन उसमें अर्थ गजब का मिलेगा। इनकी शैली के लिए कुछ अवतरण देखिए–

> व्यवस्था का दल कागजी है।
> काम उसके दफ्तरी हैं।
> मत पता लगने दो कि नीचे जान है।
> दिलेरी डर से पैदा होती है।
> उस नीयत का मुँह बाहर चाहे न दिखता हो, पेट में छिपी उसकी जड़ है जरूर।

निबंधकारों में राहुल सांकृत्यायन का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। इनके निबन्ध देश-दशा, राजनीति, यात्रा-वृत्तांत तथा इतिहास को लेकर ही होते हैं। देश-दशा और राजनीति से संबंधित निबंधों को एक संग्रह का नाम है– 'तुम्हारा क्षय'। इस संग्रह के सभी निबंधों का निष्कर्ष यह है कि जो रूढ़िवादी हैं, जो रास्ता रोककर खड़े हैं, उनका क्षय हो। इनके कुछ संस्मरणात्मक निबन्धों के संग्रह–ये हैं बचपन की स्मृतियाँ, जिनका में कृतज्ञ, मेरे असहयोग के साथी, राहुल जी का अपराध आदि। राहुल जी के असली व्यक्तित्व और निबंधकार की आत्मा का यदि दर्शन करना हो तो उनका 'घुमक्कड़ शास्त्र' पढ़ना चाहिए।

राहुल जी जैसा मस्ती और जैनेंद्र कुमार जैसी शैली की चुभन कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के निबंधों में मिलती है। इनके निबन्धों के 6 संग्रह है– 'जिंदगी मुस्कराई', 'आकाश के तारे', 'धरती के फूल', 'दीप जले', 'शंख बजे', 'माटी हो गयी सोना', 'महके आंगन, चहके द्वार' तथा 'बूँद-बूँद सागर लहराया'।

आधुनिक निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अधिकतर ललित निबंध लिखे हैं। इन निबंधों में कविता और पांडित्यपूर्ण शास्त्र का एक साथ आनंद मिलता है। इनके तीन निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं– (1) छितवन की छाँह, (2) कदम की फूली डाल तथा (3) तुम चंदा हम पानी।

नये निबंधकारों में **प्रभाकर माचवे, नामवर सिंह, हरिशंकर परसाई, श्रीनिधि सिद्धांतालकार, शरद जोशी, श्री लाल शक्ल** आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। **प्रभाकर माचवे** के निबंधों के संग्रह का नाम है– 'खरगोश के सींग' और **नामवर सिंह** का निबंध-संग्रह है– 'बकलम-खुद'। हरिशंकर परसाई के व्यग्य-विनोदपूर्ण निबंधों में मस्ती और जान है। 'भूत के पाँव', 'सदाचार का ताबीज' और 'निठल्ले की

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

डायरी' में उनके व्यंग्य लेख संग्रहीत हैं। विद्यानिवास मिश्र का 'छितवन की छाह', 'तुम चंदन हम पानी', 'आंगन का पंक्षी' बनजारामन और मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, कबेर नाथ राय का 'प्रिया-नीलकंठी', 'गंध मादन', 'माया बीज', विवेकी राय का 'आम रास्ता नहीं है', देवेंद्र सत्यार्थी का 'एक युग एक प्रतीक' हरिशंकर परसाई का 'शिकायत मुझे भी है', हरीशनवल का 'बागपत के खरबूजे' आदि प्रसिद्ध निबंध हैं।

हिंदी निबंध लेखन की परंपरा अत्यंत समृद्ध है लेकिन इधर कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन बहुत कम हुआ है। ललित भावात्मक विचारात्मक निबन्ध लेखन की प्रवृत्ति कम हुई है और जो लिख भी रहे हैं वे पुराने पीढ़ी के ही लेखक हैं। नये लेखकों का निबंध लेखन की ओर से यह उदासीनता अत्यंत चिन्ताजनक है।

2.4.1 बोध प्रश्न

1. **आचार्य रामचंद्र शुक्ल के दो निबंधों के नाम बताइए।**
2. **भारतेन्दु युगीन निबंधकारों के नाम बताइए।**

2.5 हिंदी नाटक : उद्भव और विकास

2.5.1 प्राचीन हिंदी नाटक

हिंदी साहित्य में नाटक का विकास आधुनिक युग में ही हुआ है। इससे पूर्व हिंदी के जो नाटक हैं, वे या तो नाटकीय काव्य हैं अथवा संस्कृत के अनुवाद मात्र या नाम के ही नाटक हैं, क्योंकि उनमें नाट्यकला के तत्त्वों का सर्वथा अभाव है, जैसे नेवाज का 'शकुंतला', कवि देव का 'देवमायाप्रपंच', हृदयराम का 'हनुमान्नाटक' **राजा जसवंतसिंह** का 'प्रबोधचंद चंद्रोदय' नाटक आदि। रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह का 'आनंद रघुनंदन' नाटक हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। जो लगभग 1700 ई. में लिखा गया था, किंतु एक तो उसमें ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है, दूसरे वह रामलीला की पद्धति पर है। अतः वह भी आधुनिक नाट्यकला से सर्वथा दूर है। हिंदी साहित्य के आदि और मध्य युग में गद्य अत्यंत अविकसित स्थिति में था और अभिनयशालाओं का सर्वथा अभाव है। अस्तु, हिंदी साहित्य के आदि और मध्य युग में गद्य अत्यंत अविकसित स्थिति में था और अभिनयशालाओं का सर्वथा अभाव था। अस्तु, हिंदी साहित्य के आदि और मध्य युग में नाट्यकला का विकास न हो सका, जबकि हिंदी लेखकों के सम्मुख संस्कृति की नाट्यकला अत्यंत विकसित और उन्नत अवस्था में विद्यमान थी। आधुनिक युग में हिंदी नाटक का संपर्क अंग्रेजी से स्थापित हुआ। अंग्रेज लोग नाट्यकला और मनोरंजन में अत्यधिक रुचि रखते थे और साहित्य में नाटकों की रचना भी प्रभूत मात्रा में हो चुकी थी। इसके साथ ही इस युग में हिंदी-गद्य भी स्थिर हो गया और उसमें अभिव्यंजना शक्ति का भी विकास हो गया। इसलिए हिंदी-नाट्यकला को पनपने का समुचित अवसर इसी युग में आकर प्राप्त हुआ।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

2.5.2 आधुनिक हिंदी नाटक

आधुनिक काल की अन्य गद्य-विधाओं के ही समान हिंदी नाटक का भी आरंभ पश्चिम के संपर्क का फल माना जाता है। भारत के कई भागों में अंग्रेजों ने अपने मनोरंजन के लिए नाट्यशालाओं का निर्माण किया जिनमें शेक्सपीयर तथा अन्य अंग्रेजी नाटककारों के नाटकों का अभिनय होता था। उधर सर विलियम जोन्स ने फोर्ट विलियम कॉलेज में संस्कृत के 'अभिज्ञान शाकुंतल' के कई हिंदी अनुवाद हुए जिनमें राजा लक्ष्मण सिंह का अनुवाद आज भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सन् 1859 में भारतेंदु हरिश्चंद्र के पिता बाबू गोपालचंद्र ने 'नहुष' नाटक लिखा और उसको रंगमंच पर प्रस्तुत किया। इधर पारसी नाटक कम्पनियाँ नृत्य-संगीत प्रधान, नाटकों को बड़े धड़ाके से प्रस्तुत कर रही थीं जिससे सुरुचि संपन्न तथा साहित्यिक गुणों के खोजी हिंदी-साहित्यकार क्षुब्ध थे। इस सबसे प्रेरित होकर भारतेंदु बाबू ने जनता की रुचि पर परिष्कार करने के लिए स्वयं अनेक नाटक लिखे और अन्य लेखकों को नाट्य साहित्य की रचना के लिए प्रोत्साहित किया।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हिंदी-नाट्यकला के विकास को चार कालों में बाँटा जा सकता है–

1. भारतेंदु युगीन नाटक– 1850 से 1900 ई.
2. द्विवेदी युगीन नाटक– 1901 से 1920 ई.
3. प्रसाद युगीन नाटक– 1921 से 1936 ई.
4. प्रसादोत्तर युगीन नाटक– 1937 से अब तक

2.5.3 भारतेंदु-युगीन नाटक

हिंदी में नाट्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्त्तन भारतेंदु द्वारा होता है। भारतेंदु युग नवोत्थान का युग था। भारतेंदु देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक दुर्दशा से आहत थे। अतः साहित्य के माध्यम से उन्होंने समाज को जाग्रत करने का संकल्प लिया। समाज को जगाने में नाटक सबसे प्रबल सिद्ध होता है। भारतेंदु ने इस तथ्य को पहचाना और नैराश्य के अंधकार में आशा का दीप जलाने के लिए प्रयत्नशील हुए।

युग-प्रवर्त्तक भारतेंदु ने अनूदित/मौलिक सब मिलाकर सत्रह नाटकों की रचना की, जिनकी सूची इस प्रकार है :– (1) विद्यासुंदर (1868), (2) रत्नावली (1868), (3) पाखण्ड विडंबन (1872), (4) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873), (5) धनंजय विजय (1873), (6) प्रेम जोगिनी (1874), (7) सत्यहरिश्चंद्र (1875), (8) मुद्राराक्षस (1875), (9) कर्पूर मंजरी (1876), (10) विषस्य विषमौषधम् (1876), (11) श्री चंद्रावली (1875), (12) भारत-दुर्दशा (1876), (13) भारत जननी (1877), (14) नीलदेवी (1880), (15) दुर्लभ-बंधु (1880), (16) अंधेर नागरी (1881), (17) सती प्रताप (1884)।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मौलिक नाटक

भारतेंदु जी का मौलिक कृतियों में वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेमयोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, चंद्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी तथा सती प्रताप हैं। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेम योगिनी और पाखंड विडंबन में धार्मिक रूढ़ियों और विडंबनाओं से ग्रस्त समाज के पाखंड, आडंबर, भ्रष्टाचार आदि का नाटकीय आख्यान हुआ है। 'वैदिकी हिंसा हिसा न भवति' में ऊपर से सफेदपोश दिखने वाले धर्मात्माओं के साथ ही तत्कालीन देशी नरेशों और मंत्रियों के व्यभिचार की पोल खोली गयी है। अपने युग का धार्मिक स्थिति के प्रति जो तीव्र आक्रोश नाटककार में है, वही उसकी अपूर्ण नाटिका 'प्रेमयोगिनी' में प्रस्तुत हुआ है। 'पाखंड विडंबन' में हिंदुओं के संत-महंतों की हीन दशा का चित्रण हुआ है। इस प्रकार धार्मिक पाखंडों का खंडन करना ही इन नाटकों का मूल स्वर रहा है।

भारतेंदु-युग में अंग्रेजों ने बहुत से राजाओं से उनका शासन छीन कर उनका राज्य अपने अधीन पर लिया था। अंग्रेजों ने इस नीति की प्रशंसा पर गुलामी के भय के द्वंद्व की परिकल्पना 'विषस्य विषमौषधम्' प्रहसन में साकार हो उठी हैं देशोद्धार की भावना का संघर्ष भारतेंदु जी के कहीं अधिक सफल नाटकों 'भारत जननी' में घोर निराशा के भाव के साथ प्रस्तुत होता है। 'भारत दुर्दशा' में भारत के प्राचीन उत्कर्ष और वर्तमान अधःपतन का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है–

रोअहु सब मिलि, आवहु भरत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

भारतेंदु ने राजनीतिक संघर्ष की पृष्ठभूमि पर नौकरशाही की अच्छी आलोचना करते हुए 'अंधेर नगरी' प्रहसन लिखा है। 'अंधेर नगरी' के चौपट राजा को फाँसी दिलाकर नाटककार कामना करता है कि कभी इस अयोग्य राजा की तरह नौकरशाही भी समाप्त होगी और देश के कुशासन की समाप्ति होगी। अंग्रेजों के शासन से देश मुक्ति की कामना ही 'नील देवी' नाटक में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उभरती है। साथ ही तत्कालीन समाज में तीव्रता से उठ रहे 'नारी स्वातंत्र्य' के पक्ष विपक्ष के द्वंद्व को भी प्रस्तुत किया है।

'चंद्रावली' और 'सती प्रताप' प्रेम की कोमल अभिव्यंजना से अभिभूत नाटक हैं। चंद्रावली में ईश्वरोन्मुख प्रेम का वर्णन है। 'सती प्रताप' में भी पति-प्रेम का अनुकरणीय उज्ज्वल आदर्श है। इस प्रकार भारतेंदु के नाटकों में भी प्रेम धारा तथा श्रृंगारिक मोहकता का वातावरण बना रहा है।

अनूदित और रूपांतरित नाटक

भारतेंदु ने अंग्रेजी, बंगला तथा संस्कृत के हिंदी अनुवाद भी किए, जिनमें रत्नावली नाटिका, पाखंड विडंबन, प्रबोध-चंद्रोदय, धनंजय-विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्रा राक्षस तथा दुर्लभ बंधु आदि हैं। अंग्रेजी से किए गए अनुवादों में भारतेंदु की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने उसमें भारतीय वातावरण एवं पात्रों का समावेश किया है। सभी नाटकों में मानव-हृदय के भावों की अभिव्यक्ति के लिए गीतों की योजना की है। इन नाटकों का अनुवाद केवल हिंदी का भंडार भरने की दृष्टि से नहीं किया गया, बल्कि हिंदी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

नाटकों के तत्त्वों में अपेक्षित परिवर्तन के लिए दिशा-निर्देश करने के उद्देश्य से किया गया। रूपांतरित नाटकों में 'विद्या सुंदर' और 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक आते हैं। 'विद्यासुंदर' में प्रेम विवाह का समर्थन करते हुए भारतेंदु माँ-बाप के आशीर्वाद को अनिवार्य मानते हैं। 'सत्य हरिश्चंद्र' में सामाजिक विकृतियों से ऊपर उठ कर सत्य के आदर्शों से अनुप्राणित होने का आह्वान किया है।

नाट्य-शास्त्र के गम्भीर अध्ययन के उपरान्त भारतेंदु ने 'नाटक' निबंध लेखन कर नाटक का सैद्धांतिक विवेचन भी किया है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना ही नहीं की, अपितु उन्हें रंगमंच पर खेलकर भी दिखाया है। उनके नाटकों में जीवन और कला सुंदर और शिव, मनोरंजन और लोक-सेवा का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता के गुणों से परिपूर्ण है। भारतेंदु अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। सबसे बड़ी बात यह है कि वे अद्भुत नेतृत्व-शक्ति से युक्त थे। वे साहित्य के क्षेत्र में प्रेरणा के स्रोत थे। फलतः अपने युग के साहित्यकारों और नाटक तथा रंगमंच की गतिविधियों को प्रभावित करने में सफल रहे। इसके परिणामस्वरूप प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, लाला श्रीनिवास, देवकी नंदन त्रिपाठी आदि बहुसंख्यक नाटककारों ने उनके प्रभाव में नाट्य रचना की। यह भी विचारणीय है कि भारतेंदु मंडल के नाटककारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, चरित्रप्रधान राजनैतिक और सभी कोटियों के नाटक लिखे। इस युग में लिखे गये नाटक परिमाण और वैविध्य की दृष्टि से विपुल हैं। यहाँ मुख्य धाराओं का परिचय प्रस्तुत है–

(क) पौराणिक धारा– इसकी तीन उपधाराएँ– (1) रामचरित संबंधी, (2) कृष्णचरित संबंधी तथा (3) अन्य पौराणिक आख्यायन संबंधी। रामचरित संबंधी नाटकों में देवकीनंदन खत्री-कृत 'सीताहरण' (1876) और 'रामलीला' (1879), शीतलाप्रसाद त्रिपाठी-कृत 'रामचरित्र नाटक' (1891) उल्लेखनीय हैं। कृष्ण चरित संबंधी नाटकों में अंबिकादत्त व्यास-कृत 'ललिता' (1884), हरिहरदत्त दूबे-कृत 'महारास' (1885) और 'कल्पवृक्ष' तथा सूर्यनारायण सिंह कृत 'श्यामानुराग नाटिका' (1899) उल्लेखनीय हैं। कृष्ण-परिवार के व्यक्तियों के चरित्र से संबंधी नाटकों में चंद्र शर्मा-कृत 'उषाहरण' (1887), कार्तिक प्रसाद खत्री-कृत उषाहरण (1892) और अयोध्यासिंह उपाध्याय-कृत 'प्रद्युम्न-विजय' (1893) तथा 'रुक्मणी परिणय' (1894) हैं। पौराणिक आख्यानकों से संबंधी गजराजसिंह-कृत 'द्रौपदी हरण' (1882), श्रीनिवासदास-कृत 'प्रह्लाद चरि.' (1888), बालकृष्ण भट्ट-कृत 'नल-दमयन्ती-स्वयंवर' (1895) और शालिग्राम लाल-कृत अभिमन्यु (1898) प्रसिद्ध हैं।

(ख) ऐतिहासिक धारा– ऐतिहासिक नाटक-धारा 'नीलदेवी' से प्रारंभ होती है। ऐतिहासिक नाटकों में श्रीनिवासदास-कृत 'संयोगिता स्वयंवर' (1886), राधाचरण गोस्वामी-कृत 'अमर सिंह राठौर' (1895) और राधाकृष्ण दास-कृत 'महाराणा प्रताप' (1896) ने विशेष ख्याति प्राप्त की।

(ग) समस्या-प्रधान धारा– भारतेंदु ने अपने सामाजिक नाटकों और प्रहसनों में नारी समस्या को जिस ढंग से उठाया था, वही उनके मंडल के सभी नाटककारों पर छाया रहा। प्राचीन आदर्शों के अनुरूप उनमें पतिनिष्ठा की प्रतिष्ठा की गयी और नवीन भावनाओं के अनुरूप, बाल-विवाह-निषेध पर्दा-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

प्रथा का विरोध और विधवा-विवाह तथा स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया गया। श्री राधाचरणदास-कृत 'दुःखिनी बाला' (1880), प्रतापनारायण मिश्र-कृत 'कुलाकौतुक' (1886), बालकृष्ण भट्ट-कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम' (1913), कांशी नाथ खत्री-कृत 'विधवा विवाह' (1899), बाबू गोपालराम गहमरी-कृत 'विद्या विनोद' आदि नाटक नारी-समस्याओं को केंद्र-बिंदु मानकर लिखे गये। इन समस्या-प्रधान नाटकों का मूलस्वर समाज-सुधार है। इस युग में जो तीव्र संघर्ष सामाजिक स्तर पर सुधारवाद की भावना से हो रहा था, वैसा इस काल के नाटकों में नहीं दिखाई देता। इनमें नाटक के नाम पर समस्याओं का वर्णन मात्र हुआ है। फिर भी इनमें सामाजिक जागरूकता मुखरित हुई है। इसमें संदेह नहीं कि ये अपने इसी स्वरूप में आगे के नाटकों के लिए कड़ी या आधार रहे।

(घ) प्रेम-प्रधान-धारा– रीतिकाल की शृंगारिक प्रवृत्ति भारतेंदु-युग की कविताओं में नहीं नाटकों में भी देखने को मिल जाती है। प्रेम-प्रधान रोमानी नाटकों में श्रीनिवासदास-कृत 'रणधीर प्रेममोहनी' (1877), किशोरीलाल गोस्वामी-कृत 'मयंक मंजरी' (1891) और 'प्रणयिनी परिचय' (1890), खड्ग बहादुरमल्ल-कृत 'रति कुसुमायुध' (1885) शालिग्राम शुक्ल-कृत 'लावण्यवती' सुदर्शन (1892) तथा गोकुलनाथ शर्मा-कृत 'पुष्पवती' (1899) उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन नाटकों में उपदेशों की भी सर्वत्र भरमार है जिनमें समय का सदुपयोग, वेश्या से घृणा, छोटे-बड़े के भेद की व्यर्थता, भाग्यवाद में विश्वास आदि विषयों पर भी उपदेश दिये गये हैं, फिर भी इन नाटकों की विषयवस्तु तथा अभिप्राय रोमांटिक हैं।

(ङ) राष्ट्रीय प्रहसन धारा– राष्ट्रीय और व्यंग्यात्मक नाटकों की परंपरा 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि द्वारा चलायी गयी थी। उसका मूल कारण सांस्कृतिक और राष्ट्रीय दृष्टि से उपस्थित संक्रांति-काल ही था। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट से नव जागरण का आलोक विकीर्ण हो रहा था। भारतेंदु युगीन नाटककारों ने इस जागरण को अभिव्यक्त करने के लिए प्रहसनों को चुना। इस युग में राष्ट्रीय विचारधारा को उजागर करने वाले, खड्ग बहादुर मल्ल-कृत 'भारत आरत' (1885), अंबिका दास व्यास-कृत 'भारत-सौभाग्य' (1887), गोपाल राम गहमरी-कृत 'देश-दशा' (1892), देवकीनंदन त्रिपाठी-कृत 'भारत हरण' (1899) आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में देश की तत्कालीन दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। आलोच्य युग के अनेक सफल प्रहसनों में से बालकृष्ण भट्ट-कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम' (1877) और 'प्रचार विडंबना' (1899), विजयानंद त्रिपाठी-कृत 'महा अंधेर नगरी' (1893), राधाचरण गोस्वामी-कृत 'बूढ़े मुहसे' (1886), राधाकृष्ण दास-कृत 'देशी कुतिया विलायती बोल' आदि प्रहसनों को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। नवीन वैचारिक आलोक के फलस्वरूप इन प्रहसनों में प्राचीन रूढ़ियों, घिसी हुई परंपराओं और अंध-विश्वासों पर व्यंग्य किया गया है तथा समाज के महंतों और कुटिल जनों पर प्रहार किये गये हैं।

आलोच्य युग के नाटक साहित्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस युग के नाटक विषयवैविध्य में पूर्ण हैं। भारतेंदु युग के नाम से अभिहित इस संक्रांति काल में उत्पन्न अनेक युग प्रश्नों यथा-कर, आलस्य, पारस्परिक फूट, मद्यपान, पाश्चात्य-सभ्यता का अंधानुकरण धार्मिक अंधविश्वास, पाखंड, छुआछूत, आर्थिक शोषण, बाल विवाह, विधवा विवाह, वेश्या गमन आदि नाटकों का विषय बनाया

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

गया। ऐसा नहीं है कि किसी एक नाटक में इनमें से एक या दो बातों को लिया गया हो, पर अवसर पाते ही सभी बातें एक ही नाटक में गुम्फित हुई हैं। इससे कथानक में भले ही शिथिलता आ गई हो किंतु जनजीवन की विसंगति अवश्य स्पष्ट हो जाती हैं। नाटकों में प्रधान रूप से समाज में व्याप्त अशांति और व्यग्रता का चित्रण हुआ है। नाटककार अपने युग के प्रति बड़े सजग दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने भारत का अद्यःपतन अपनी आँखों से देखा था। चारों ओर रूढ़िग्रस्त, निष्क्रिय और मानसिक दासता में जकड़ी हुई जनता, पाश्चात्य सभ्यता से उत्पन्न दूषित प्रभाव, भ्रष्ट राजनीति, हृदयविदारक आर्थिक अवस्था आदि ने उनके हृदय में सुधारवादी और राष्ट्रीय विचारों का उद्रेक किया। फलस्वरूप नाटकों में राष्ट्रीय जीवन को उन्नत बनाने के अनेक उपाय संकेतित हुए हैं। इनकी वाणी में नवोदित भारत की आकांक्षाओं का स्वर प्रतिध्विनित होता है।

शास्त्रीय दृष्टि से भारतेंदु-कालीन नाटक संस्कृत-नाट्यशास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए लिखे गये। साथ ही पाश्चात्य नाट्य शास्त्र का प्रभाव भी इन पर लक्षित होता है। पाश्चात्य ट्रेजडी की पद्धति पर दुःखांत नाटक लिखने की परंपरा भारतेंदु के 'नीलदेवी' नाटक से आरंभ हुई। इस युग के नाटक एक ओर पारसी कंपनियों की अश्लीलता और फूहड़पन की प्रतिक्रिया स्वरूप उठे थे, तो दूसरी ओर पाश्चातय और पूर्व की सभ्यता की टकराहट के परिणाम स्वरूप। इसलिए उनमें अविचारित पुरानापन या अविचारित नयापन कहीं नहीं है। अभिनेयता की दृष्टि से ये नाटक अत्यधिक सफल हैं। भारतेंदु उनके सहयोगी स्वयं नाटकों में भाग लेते थे और हिंदी रंगमंच को स्थापित करने के लिए उत्सुक थे। नाटकों के माध्यम से जनता को वे जागरण का और आने वाले युग का संदेश देना चाहते थे। इसी कारण भारतेंदु-काल में विरचित ये नाटक सुदृढ़ सामाजिक पृष्ठभूमि पर अवस्थित थे।

प्रस्तुत संदर्भ में भारतेंदु युगीन नाटकों पर विचार कर लेना भी समीचीन होगा। इस युग में संस्कृत अनूदित बंगला तथा अंग्रेजी के भी सुप्रसिद्ध नाटकों में हिंदी में अनुवाद किए गए। अनुवाद की परंपरा भी भारतेंदु से ही प्रारंभ हुई थी जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त भी अनेक लेखक संस्कृत, बंगाल और अंग्रेजी के नाटक अनूदित करने में संलग्न रहे। उदाहरण के लिए निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत हैं :

1. संस्कृत

भवभूति : (i) उत्तर रामचरित–देवदत्त तिवारी (1871), नंदलाल, विश्वनाथ दूबे (1891), लाला सीताराम (1891)।

(ii) मालती माधव–लाला शालिग्राम (1881), लाल सीताराम (1898)।

(iii) महावीर चरित–लाला सीतराम (1897)।

कालिदास : (i) अभिज्ञान शकुंतलम्–नंदलाल विश्वनाथ दूबे (1888)।

(ii) मालविकाग्निमित्र–लाला सीताराम (1898)।

कृष्णमित्र : (i) प्रबोध चन्द्रोदय–शीतला प्रसाद (1879), अयोध्याप्रसाद चौधरी (1885)

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

शूद्रक : मृच्छकटिक–गदाधर भट्ट (1880), लाला सीताराम (1899)।

हर्ष : रत्नावली–देवदत्त तिवारी (1872), बालमुकुंद सिंह (1798)।

भट्टनारायण : वेणीसंहार–ज्वालाप्रसाद सिंह (1897)।

2. बंगला

माइकेल मधूसूदन : (i) पद्मावती–बालकृष्ण भट्ट (1878)।

(ii) शर्मिष्ठा–रामचरण शुक्ल (1880)।

(iii) कृष्णमुरारी–रामकृष्ण वर्मा (1899)।

द्वारिकानाथ गांगुली : वीरनारी–रामकृष्ण वर्मा (1899)।

राजकिशोर दे : पद्मावती–रामकृष्ण वर्मा (1888)।

मनमोहन वसु : सती–उदित नारायण लाल (1880)।

3. अंग्रेजी

शेक्सपीयर : (i) मरचेंट ऑफ वेनिस (वेनिस के व्यापारी)–आर्या (1888)।

(ii) द कॉमेडी ऑफ एरर्स (भ्रमजालक)–मुंशी इमदाद अली, भूल भुलैया-लाल सीताराम (1885)।

(iii) एज यू लाइक इट (मनभावन)–पुरोहित गोपीनाथ (1896)।

(iv) रोमियो जूलियट (प्रेमलीला)–पुरोहित गोपीनाथ (1897)।

(v) मैकबैथ (साहसेंद्र साहस)–मथुराप्रसाद उपाध्याय (1893)।

जोजेफ एडीसन : केटो कृतांत–बाबू तोता राम (1879)।

भारतेंदु-युगीन नाटककारों की अनूदित रचनाएँ केवल उनकी अनुवाद वृत्ति का ही दिग्दर्शन नहीं करातीं, वरन् सामाजिक जीवन के उन्नयन के लक्ष्य को भी प्रकट करती हैं। अनुवादक उन रचनाओं के माध्यम से वस्तुतः एक नाट्यादर्श प्रस्तुत करना चाहते थे और उन नैतिक तत्त्वों के प्रति भी जागरूक थे जो नव-जागरण में सहायक थे। इस प्रकार भारतेंदु-युगीन इन नाटकों की विषयवस्तु में वैविध्य मिलता है। एक ओर रामायण और महाभारत के प्रसंगों को लेकर पौराणिक नाटक बहुतायत से लिखे गये। इसी संदर्भ में ऐसे नाटकों की संख्या भी पर्याप्त कही जा सकती है जो नारी से सतीत्व और पतिव्रता के आदर्श से संबंधित है। सामाजिक नाटकों में भी विषयवस्तु का वैविध्य और विस्तार मिलता है। मुख्य रूप से इस काल में अनमेल विवाह, विधवा विवाह, बहु विवाह, मद्यपान, वेश्या गमन, नारी स्वातंत्र्य आदि समस्याओं पर विचार किया है। किंतु युगीन संदर्भ के प्रति इस प्रकार की जागरूकता के बावजूद

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

अनुभूति की तीव्रता और नाट्य शिल्प की विशिष्टता के अभाव में इस युग का नाट्य साहित्य कोई महत्त्वपूर्ण साहित्यिक देन नहीं कर सका। फिर भी नाट्य रचना और रंगमंच के लिए जैसा वातावरण इस युग में बन गया था, वैसा हिंदी साहित्य के किसी काल में संभव नहीं हुआ।

2.5.4 द्विवेदी-युगीन नाटक

भारतेंदु के अनंतर साहित्य का जो दूसरा उत्थान हुआ, उसके प्रमुख प्रेरणा-केंद्र महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। हिंदी नाटकों के ऐतिहासिक विकास-क्रम में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान भारतेंदु की तुलना में इतना नगण्य है कि नाटक के क्षेत्र में द्विवेदी-युग को अलग से स्वीकार करना और महत्त्व प्रदान करना औचित्यपूर्ण प्रतीत नहीं होता। भारतेंदु के अवसान के साथ युग में नाटक के ह्रास के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। अपने युग की समस्याओं को नाट्यरूप प्रदान करने का जो अदम्य साहस भारतेंदु युग के लेखकों में दिखाई पड़ा था उसके दर्शन द्विवेदी-युग में नहीं होते। इसके कई कारण थे। प्रथम तो हिंदी के नाटककारों में नाटक में सूक्ष्म नियमों एवं विधियों की योजना की क्षमता न थी। दूसरे, नाटकों के इस उदयकाल की सामाजिक स्थिति विक्षोभ पैदा करने वाली थी। इस प्रवृत्ति ने कुछ कर बैठने की प्रेरणा तो दी किन्तु भावों और विचारों को घटनाओं के साथ कलात्मक ढंग से नियोजित करने के लिए मानसिक संतुलन नहीं प्रदान किया। तीसरे, आर्य समाज के आंदोलन के लेखकों पर सुधारवादी जीवन दृष्टि और शास्त्रार्थ शैली का प्रभाव पड़ा जो निश्चय ही नाटकों के कलात्मक विकास में बाधक हुआ। चौथे, पाश्चात्य 'कॉमेडी' के अंधानुकरण के कारण भारतेंदु के उपरांत हिंदी साहित्य में ही प्रहसनों की प्रवृत्ति पनप उठी। प्रहसनों की वृद्धि ने साहित्यिक एवं कलात्मक अभिनयपूर्ण नाटकों की रचना में व्याघात उपस्थित किया। पाँचवें, द्विवेदी-युग नैतिकता और सुधार का युग था। नैतिकता और आदर्श के प्रतिस्थापन में उनका दृष्टिकोण संस्कृत के नाटककारों की भाँति अतएव भारतेंदु-युग की नवीनता परवर्ती युग के स्वभाव के अनुकूल न थी। इसके अतिरिक्त युग की आवश्यकताओं के अनुरूप नाटक को ही सही साहित्यिक और मंच कर्म से संबंधित देने वाले नेतृत्व का अभाव था। अतः कठोर नीतिवादी अथवा आदर्शात्मक बुद्धिवाद के फलस्वरूप द्विवेदी-युग, भारतेंदु-युग की परंपरा को अग्रसर नहीं कर सका।

उपर्युक्त सभी कारणों के फलस्वरूप आलोच्य युग में मौलिक नाटकों की संख्या अत्यल्प हैं अनुवाद-कार्य पर अधिक बल रहा है। मौलिक नाटकों में साहित्य की दो धाराएँ प्रमुख हैं– (1) साहित्यिक नाटक (शौकिया रंगमंच), (2) मनोरंजन प्रधान नाटक (व्यावसायिक पारसी रंगमंच) साहित्यिक नाट्यधारा को विकसित करने के उद्देश्य से अनेक नाटक मंडलियों की स्थापना की गई जैसे प्रयाग की 'हिंदी नाटक मंडली', कलकत्ते की 'नागरी नाटक मंडल' मुजफ्फरनगर की 'नवयुवक समिति' आदि। इनमें 'हिंदी नाटक मंडली', 'कलकत्ते की नागरी नाटक मंडल' मुजफ्फरनगर की 'नवयुवक समिति' आदि। इनमें 'हिंदी नाट्य-समिति' सबसे अधिक पुरानी थी। सन् 1893 ई. में यह 'रामलीला नाटक मंडली' के रूप में स्थापित हुई थी। इसके संस्थापकों में प्रमुख थे– पंडित माधव शुक्ल जो स्वयं अच्छे अभिनेता और रंगकर्मी थे और जिन्होंने राष्ट्रीयता चेतना प्रचार-प्रसार के लिए नाटकों को

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सशक्त माध्यम बनया था। किंतु हिंदी रंगमंच साधन और समुचित संरक्षण के अभाव में तथा जनता की सस्ती रुचि के कारण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाया। फलतः नाटक का साहित्यिक रूप ही सामने आया। संख्या की दृष्टि में आलोच्यकाल में लिखे गये नाटक कम नहीं हैं किंतु मौलिक नाटकों के नाम पर ऐतिहासिक पौराणिक प्रसंगों को ही नाटकों में या कथोपकथन में परिवर्तन कर दिया गया। अध्ययन की सुविधा के लिए आलोच्य युग के नाटकों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक उपादानों पर रचित नाटक, रोमांचकारी नाटक, प्रहसन और अनूदित नाटक।

हृदय की वृत्तियों की सत्त्व की ओर उन्मुख करने का प्रयास भारतेंदु-युग के नाटकों में बहुत पहले से होता आ रहा था। द्विवेदी-युग से इन वृत्तियों के उत्कर्ष के लिए पौराणिक आख्यानों को निःसंकोच ग्रहण किया गया। आलोच्य युग में पौराणिक नाटकों के तीन वर्ग देखने को मिलते हैं– कृष्णचरित-संबंधी, रामचरित संबंधी तथा अन्य पौराणिक पात्रों एवं घटनाओं से संबंधित कृष्ण चरित संबंधी नाटकों में राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा' (1904), ब्रज नंदन सहाय-कृत 'उद्धव' (1909), नारायण मिश्र-कृत 'कंसवध' (1910), शिव नंदन सहाय-कृत 'सुदामा' (1907) और बनवारी लाल-कृत 'कृष्ण तथा कंसवध' (1910) को विशेष ख्याति प्राप्ति है। रामचरित-संबंधी नाटकों में रामनारायण मिश्र-कृत 'जनक बड़ा' (1906) गिरधर लाला-कृत 'रामवन यात्रा' (1910) और गंगाप्रसाद-कृत 'रामाभिषेक' (1910), नारायण सहाय-कृत 'रामलीला' (1911), और राम गुलाम लाल-कृत 'धनुषयज्ञ लीला' (1912) उल्लेखनीय हैं। अन्य पौराणिक घटनाओं से संबंधित नाटकों में महावीर सिंह का 'नल दमयंती' (1905), सुदर्शनाचार्य का 'अनार्थ नल चरित' (1906), बांके बिहारी लाल का 'सावित्री नाटिका' (1908), बालकृष्ण भट्ट का 'बेणुसंहार' (1909), लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (1907) और हनुमंतसिंह का 'सती चरित' (1910), शिवनंदन मिश्र का 'शकुंतला' (1911), जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय' (1912), बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरुवन दहन' (1915), माधव शुक्ल का 'महाभारत-पूर्वार्द्ध' (1916), हरिदास माणिक का 'पांडव-प्रताप' (1917) तथा माखन लाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (1918) महत्त्वपूर्ण हैं।

इन नाटकों का विषय पौराणिक होते हुए भी पारसी रंगमंच के अनुरूप मनोरंजन उत्पन्न करने के लिए हास-परिहास, शोखी और छेड़छाड़ के वातावरण का सही आधार ग्रहण किया गया है।

पौराणिक नाटकों के साथ ही इस काल में कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे गए जिनमें– गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर जय माल' (1903), शालिग्राम कृत 'पुरु विक्रम' (1905), वृंदावन लाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल' (1909), कृष्ण प्रकाश सिंह कृत 'पन्ना' (1915) और परमेश्वरदास जैन का 'वीर चूड़ावत सरदार' (1918) महत्त्वपूर्ण हैं। इन नाटकों में प्रसाद के 'राज्यश्री' नाटक को छोड़कर और किसी भी नाटक में इतिहास-तत्त्व की रक्षा नहीं हो सकी।

द्विवेदी-युग में भारतेंदु-युग की सामाजिक-राजनीतिक और समस्यापरक नाटकों की प्रवृत्ति का अनुसरण भी होता रहा। इस धारा के नाटकों में प्रताप नारायण मिश्र-कृत 'भारत दुर्दशा' (1903) भगवती प्रसाद-कृत 'वृद्ध विवाह' (1905), जीवानन्द शर्मा-कृत 'भारत विजय' (1906), रुद्रदत शर्मा-कृत 'कंठी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

जनेऊ का विवाह' (1906), कृष्णानन्द जोशी-कृत 'उन्नति कहाँ से होगी' (1915), मिश्र बंदुओं का 'नेत्रोंमीलन' (1915) आदि कई नाटक गिनाए जा सकते हैं। नाट्यकला की दृष्टि से विशेष महत्त्व न रखते हुए ये नाटक, समाज सुधार और नैतिकवादी जीवन दृष्टि से ग्रस्त हैं। इस युग में पारसी रंगमंच सक्रिय रहा जिसके लिए निरंतर रोमांचकारी, रोमानी और धार्मिक नाटक लिखे जाते रहे। पारसी नाटक कंपनियों के रूप में व्यवसायी रंगमंच का प्रसार भारतेंदु-युग में ही हो चुका था। इस काल में 'ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी', 'विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी', 'एल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी', 'शेक्सपीयर थिटेट्रिकल कम्पनी', 'जुबिली कम्पनी' आदि कई कंपनियाँ 'गुलबकावली', 'कनकतारा', 'इंदर सभा', 'दिलफरोश', 'गुल फरोश', 'यहूदी की लड़की' जैसे रोमांचकारी नाटक खेलती थीं। रोमांचकारी रंगमंची नाटककारों में मोहम्मद मियाँ 'रादक', हुसैन मियाँ 'जर्राफ', मुन्शी विनायक प्रसाद 'तालिब', सैयद मेंहदी हसन 'अहसान', नारायण प्रसाद 'बेताब', आगा मोहम्मद 'हश्र' और राधेश्याम 'कथावाचक' उल्लेखनीय है। इनमें राधेश्याम कथावाचक और 'बेताब' ने सुरुचिपूर्ण धार्मिक-सामाजिक नाटक भी लिखे, किंतु पारसी रंगमंच का सारा वातावरण दूषित ही रहा, जिसने द्विवेदी-युग में नाट्य लेखन की धारा को कुंठित कर दिया।

इस काल में अनेकानेक स्वतंत्र प्रहसन भी लिखे गये। अधिकांश प्रहसन लेखकों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव है, इसलिए वे अमर्यादित एवं उच्छृखल हैं। प्रहसनकारों में बदरीनाथ भट्ट एवं जी.पी. श्रीवास्तव के नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। भट्ट जी के 'मिस अमेरिका', 'चुंगी की उम्मीदवारी', 'विवाह विज्ञापन', 'लबड़धधों' आदि अधिकांश शिष्ट–हास्यपूर्ण प्रहसन हैं। जी.पी. श्रीवास्तव ने छोटे-बड़े अनेक प्रहसन लिखे हैं। इन प्रहसनों में सौष्ठव और मर्यादा का अभाव है।

मौलिक नाटकों की कमी द्विवेदी-युग में अनूदित नाटकों द्वारा पूरी की गई। सामाजिक तथा राजनीतिक अशांति के इस वातावरण में लेखकों के समान हिंदी नाटक-साहित्य की हीनता स्पष्ट दिखाई देती थी। अतः कुछ थोड़े उदात्तवादी परंपरा के लोगों का ध्यान संस्कृत नाटकों की ओर गया, परंतु अधिकांश का अध्ययन बंगला तथा पाश्चात्य नाटकों की ओर ही अधिक था।

संस्कृत से लाला सीताराम ने 'नागानंद', 'मृच्छकटिक', 'महावीरचरित', 'उत्तरामचरित', 'मालती माधव' और 'मालविकाग्निमित्र' और कविरत्न सत्यनारायण ने 'उत्तररामचरित' अनुवाद किया। अंग्रेज़ी से शेक्सपीयर के नाटकों 'हेमलेट', 'रिचर्ड द्वितीय', 'मैकबेथ' आदि का हिंदी में अनुवाद भी लाला सीताराम ने किया। फ्रांस के प्रसिद्ध नाटककार ओलिवर के नाटकों को लल्लीप्रसाद पांडेय और गंगाप्रसाद श्री वास्तव ने अंग्रेजी के माध्यम से अनूदित किया।

बंगला नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत करने वालों में गोपालराम गहमरी स्मरणीय हैं। उन्होंने 'बनवीर', 'बभ्रुवाहन', 'देश दशा', 'विद्याविनोद', 'चित्रांगदा' आदि बंगला नाटकों के अनुवाद किये। बंगला नाटकों के अन्य समर्थ अनुवादक रामचंद्र वर्मा तथा रूप नारायण पांडेय हैं। उन्होंने गिरीशचंद्र घोष, द्विजेंद्र लाल राय, रवींद्रनाथ ठाकुर, मनमोहन गोस्वामी, ज्योतींद्रनाथ ठाकुर तथा क्षीरोद प्रसाद के नाटकों का अनुवाद

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

किया। पांडेय जी के अनुवाद बड़े सफल हैं, उनमें मूल नाटकों की आत्मा को अधिक सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है।

इसी प्रकार भारतेन्दु-युग तथा प्रसाद-युग को जोड़ने वाले बीच के लगभग 25-30 वर्षों में कोई उल्लेखनीय नाटक नहीं मिलता। भले ही प्रसाद-युगीन नाटककारों की आरंभिक नाट्य कृतियाँ द्विवेदी-युग की सीमा में आती हैं परंतु आगे चलकर उनकी नाट्य कृतियों में जो वैशिष्ट्य आता है, वह उन्हें द्विवेदी-युग के लेखकों से पृथक् कर देता है द्विवेदी-युग में हिंदी रंगमंच विशेष सक्रिय नहीं रहा। इस युग में बद्रीनाथ भट्ट ही अपवादस्वरूप एक ऐसे नाटककार थे, जिन्होंने नाटकीय क्षमता का परिचय दिया है किंतु इनके नाटक भी पारसी कंपनियों के प्रभाव के अछूते नहीं हैं। उनमें उत्कृष्ट साहित्यिक तत्त्व का अभाव है।

2.5.5 प्रसाद-युगीन नाटक

प्रसाद का आगमन नाट्य रचना में व्याप्त गतिरोध को समाप्त करने वाले युग-विधायक व्यक्ति के रूप में हुआ। उन्होंने एक प्रवर्तक के रूप में कविता, नाटक तथा निबंध आदि सभी क्षेत्रों में युग का प्रतिनिधित्व किया डॉ. गुलाबराय का कहना है, 'प्रसाद जी स्वयं एक युग थे।' उन्होंने हिंदी नाटकों में मौलिक क्रांति की। उनके नाटकों को पढ़कर लोग जितेंद्र लाल के नाटकों को भूल गये। वर्तमान जगत के संघर्ष और कोलाहलमय जीवन से ऊबा हुआ उनका हृदयस्थ कवि उनकी स्वर्णिम आभा से दीप्त दूरस्थ अतीत की ओर ले गया। उन्होंने अतीत के इतिवृत्त में भावना का मधु और दार्शनिकता की रसायन घोलकर समाज को एक ऐसा पौष्टिक अवलेह दिया जो ह्रास की मनोवृत्ति को दूर कर उसमें एक नई सांस्कृतिक चेतना का संचार कर सके। उनके नाटकों में द्विजेंद्रलाल राय की सी ऐतिहासिकता और रवि बाबू की-सी दार्शनिकतापूर्ण भावुकता के दर्शन होते हैं।

प्रसाद की आरंभिक नाट्य कृतियाँ– सज्जन (1910), कल्याणी परिणय (1912), प्रायश्चित (1912), करुणालय (1913) और राज्यश्री (1918), द्विवेदी-युग की सीमा के अंतर्गत आती हैं। प्रसाद के इन नाटकों में उनका परंपरागत रूप तथा प्रयोग में भटकती हुई नाट्य दृष्टि ही प्रमुखता से उभर कर सामने आती हैं। नाटक रचना का प्रारंभिक काल होने के कारण इन कृतियों में प्रसाद की नाट्य कला का स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया है, वह अपनी दिशा खोज रही है। यह दिशा उन्हें विशाख (1912), अजातशत्रु (1922), कामना (1927), जनमेजय का नागयज्ञ (1926), स्कन्दगुप्त (1928), एक घूँट (1930), चंद्रगुप्त (1931) और ध्रुवस्वामिनी (1933) में प्राप्त हुई। इन नाटकों में प्रसाद जी ने अपनी गवेषण शक्ति और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया।

'सज्जन' का कथानक महाभारत की एक घटना पर आधारित है। इस नाटक में प्रसाद जी ने परंपरागत मान्यताओं को स्वीकार करते हुए भारतेंदु-कालीन नाट्य-प्रणाली को अपनाया है। 'कल्याणी-परिणय' भी प्रसाद का प्रारंभिक प्रयास है, जिसका अंतर्भाव उन्होंने बाद में 'चंद्रगुप्त' के चतुर्थ अंक के रूप में किया है। 'करुणालय' बंगला के 'अमित्राक्षर अरिल्ल छंद' की शैली पर लिखा गया तथा गीत-नाट्य है। 'प्रायश्चित' हिंदी का प्रथम दुःखांत मौलिक रूपक है। शिल्प-विधान की दृष्टि से प्रसाद ने

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इसमें सर्वप्रथम पाश्चात्य नाट्य-शिल्प को अपनाने का प्रयास किया है। सही अर्थों में 'राज्यश्री' प्रसाद का प्रथम उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक है। 'विशाख' प्रसाद की पूर्ववर्ती और परवर्ती नाटकों में एक विभेदक रेखा है। इनका कथानक साधारण होते हुए भी देश की तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है यद्यपि प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक ही हैं परंतु इतिहास की पीठिका में उन्होंने वर्तमान की समस्याओं को वाणी देने का विचार प्रसाद ने सर्वप्रथम इसी नाटक में व्यक्त किया है। भूमिका में वे लिखते हैं मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में बहुत प्रयास किया है। और वह वर्तमान स्थिति परतंत्र भारत के राजनैतिक सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई थी। अपनी सत्ता को स्थानीय बनाये रखने के नहीं ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों में फूट डालने के लिए सांप्रदायिक, प्रांतीयतावाद के हथकंडे प्रसाद से छिपे नहीं थे। अतः इतिहास की पीठिका पर उन्होंने वर्तमान के इन प्रश्नों को यथार्थ की दृष्टि से उठाते हुए समन्वयवादी आदर्श समाधान प्रस्तुत किये। युगीन सांप्रदायिक प्रभावों को आत्मसात करते हुए प्रसाद ने अपने नाटकों में ब्राह्मण-बौद्ध धार्मिक संघर्षों को रूपायित किया है 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक आर्यों और नागजाति तथा आर्य-नाग-संघर्ष की पृष्ठभूमि में रचा गया है। 'अजातशत्रु' में आर्य जनपदों का पारस्परिक संघर्ष परोक्ष रूप में युगीन सांप्रदायिक संघर्षों का ही प्रतिरूप है। इस प्रकार की अपनी इन प्रौढ़ कृतियों में प्रसाद ने जातीय, क्षेत्रीय तथा वैयक्तिक भेदों को मिटाकर व्यापक राष्ट्रीयता का आह्वान किया है। इस दृष्टि से 'स्कंदगुपत' और 'चंद्रगुप्त' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'कामना' और 'एक घूँट' भिन्न कोटि के नाटक हैं। इनकी कथावस्तु ऐतिहासिक नहीं है। कथ्य की दृष्टि से भी ये भिन्न हैं। इनमें प्रसाद ने भौतिक विलासिता का विरोध किया है। 'कामना' में विभिन्न भावों को पात्र रूप में प्रस्तुत किया गया है, इसलिए उसे प्रतीक नाटक कहा जा सकता है। 'एक घूँट' एकांकी है और उसमें प्रसाद ने यथार्थ और आदर्श की स्थिति जीवन का लक्ष्य और स्त्री-पुरुष की प्रेम-भावना के सामंजस्य को चित्रित किया है। 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद की अंतिम कृति है। अन्य नाटकों में प्रसाद विशेष रूप से राजनैतिक प्रश्नों के यथार्थ से जूझते रहे हैं, परंतु 'ध्रुवस्वामिनी' में सामाजिक जीवन की वर्तमान युगीन नारी समस्या पर बौद्धिक विचार-विमर्श कर यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया है। नारी-जीवन की इस सामाजिक समस्या के प्रति प्रसाद का आकर्षण वर्तमान नारी-आंदोलन का ही परिणाम है। आज के समाज में नारी की स्थिति, दासता की शृंखला से उसकी मुक्ति, विशिष्ट परिस्थितियों में पुनर्विवाह की समस्या को बड़े साहस, संयम, तर्क और विचार एवं धर्म की पीठिका पर स्थित करके इस नाटक में सुलझाया गया है।

स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने हिंदी नाटक की प्रवहमान् धारा को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा किया। वे एक सक्षम साहित्यकार थे। उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध ममता थी। उन्हें विश्वास था कि भारतीय संस्कृति ही मानवता का पथ पशस्त कर सकती है। इसी कारण अपने नाटकों द्वारा प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति के भव्य रूप की झाँकी दिखाकर राष्ट्रीय आंदोलन के साथ-साथ अपने देश के अधुनातन निर्माण की पीठिका भी प्रस्तुत की है। भारतेंदु ने अपने नाटकों में जिस प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्मृति को भारत की सोई हुई जनता के हृदय में जगाया था। प्रसाद ने नाटकों में

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उसी संस्कृति के उदात्त और मानवीय रूप पर अपनी भावी संस्कृति के निर्माण की चेतना प्रदान की। पर यह समझना भी भूल होगी कि उन्होंने केवल भारतीय संस्कृति के गौरव-गान के लिए ही नाटकों की रचना की। वस्तुतः उनका नाट्य साहित्य ऐतिहासिक होते हुए भी सम-सामयिक जीवन के प्रति उदासीन नहीं है, वह प्रत्यक्ष को लेकर मुखर है और उनमें लोक-संग्रह का प्रयत्न है, राष्ट्र के उद्बोधन की आकांक्षा है।

प्रसाद से पूर्व साहित्यिक नाटकों का अभाव था। जिस समय भारतेंदु ने नाटक-रचना की शुरुआत की, उनके सामने पहले से निश्चित, प्रतिष्ठित हिंदी का कोई रंगमंच न था, अतः उन्होंने संस्कृत, लोकनाटक एवं पारसी रंगमंच शैली की विभिन्न रंगपरंपराओं की सुधारवादी यथार्थ कथ्य के अनुरूप मोड़ देने का स्तुत्य प्रयास किया। प्रसाद के युग तक नाटकों में पारसी रंगशिल्प का स्वरूप निर्धारित हो चुका था, अतः पारसी रंगमंच की अतिरंजना, चमत्कार, फूहड़ता, शोखभाषा, चुलबुले संवाद, शेरोशायरी के घटियापन की प्रतिक्रिया में प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक, राष्ट्रीय नाटक की रचना की। दार्शनिकता, सांस्कृतिक बोध, उदात्त कल्पना, काव्यमय अलंकृति, दुरूह भाषा का विन्यास उनकी उपलब्धि थी। फिर भी साहित्यिक और कलात्मक वैशिष्ट्य होते हुए भी प्रसाद में नाट्य शिल्प के अनेक दोष दिखाई देते हैं। एक तथ्य यह है कि प्रकारांतर से उन्होंने अतिरंजना के रूढ़ि को किंचित परिवर्तन के साथ ग्रहण किया। यह परिवर्तन प्रमुखतः शेक्सपीयर के जीवन-बोध, एक रंगविधान के प्रभावस्वरूप ही आया था। शेक्सपीयर का रोमानी बोध एवं नियतिवाद संभवतः भारतीय युगीन परिवेश के कारण भी स्वतः उद्भूत होकर प्रसाद की चेतना पर छा गया था। इन्हीं कारणों से प्रसाद मूलतः कवि, दार्शनिक तथा संस्कृति के जागरूक समर्थक थे। जीवन दृष्टि के अनुरूप उन्होंने अपने नाटकों की रचना स्वच्छंतावादी नाट्य-प्रणालियों का आधार बनाकर और मूलभूत तत्त्वों-कल्पना, भावुकता, सौंदर्य-प्रेम, अतीत के प्रति अनुराग, उच्चादर्शों के प्रति मोह तथा शैली शिल्प की स्वच्छंदता आदि को ग्रहण किया। किंतु ऐसे साहित्यिक नाटकों के अनुरूप रंगमंच हिंदी में नहीं था इसलिए अन्य सभी दृष्टियों से सफल होते हुए भी प्रसाद के नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल नहीं हो सके। इधर हिंदी रंगमंच के क्षेत्र में नए प्रयोग हो रहे हैं जिससे आज के रंगकर्मी, प्रसाद के नाटकों को चुनौती के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। उनके नाटकों को इसीलिए सर्वथा अभिनेय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें से कुछ छुटपुट रूप से उनके जीवन काल में ही खेले गये थे। फिर भी आकार की विपुलता, दृश्यों की भरमार, चरित्र-बाहुल्य और विलक्षण दृश्य-योजना उनके नाटकों को रंगमंच के लिए अति कठिन बना देती है।

आधुनिक हिंदी नाटक साहित्य के विकास में जयशंकर प्रसाद के बाद हरिकृष्ण प्रेमी को गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रसाद-युग में 'प्रेमी' ने 'स्वर्ण-विहान' (1930), 'रक्षाबंधन' (1934), 'पाताल विजय' (1936), 'प्रतिशोध' (1937), 'शिवासाधना' (1937) आदि नाटक लिखे हैं। इनमें 'स्वर्ण विहान', गीतिनाट्य है और शेष गद्य नाटक। प्रसाद ने जहाँ प्राचीन भारत का चित्रण करते हुए सत्य, प्रेम, अहिंसा व त्याग का संदेश दिया, वहाँ प्रेमी जी ने मुस्लिम-युगीन भारत को नाट्य-विषय के रूप में ग्रहण करते हुए हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। देश के उत्थान और संगठन के लिए इनके नाटक राष्ट्रीय भावना का प्रचार करने वाले हैं। प्रेमी जी प्रसाद की परंपरा के अनुयायी हैं। परंतु उन्होंने प्रसाद

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

जी की भाँति अपने नाटकों को साहित्यिक और पाठ्य ही न रखकर उनको रंगमंच के योग्य भी बनाया है। साहित्यिक और रंगमंचीयता का समन्वय है उनके नाटकों की विशेषता है। उन्होंने संस्कृत नाट्य परंपरा का अनुसरण न करके पाश्चात्य नाट्यकला को अपनाया है। इन नाटकों के कथानक संक्षिप्त एवं सुगठित, चरित्र सरल एवं स्पष्ट, संवाद पात्रानुकूल एवं शैली सरल व स्वाभाविक है।

उपर्युक्त प्रमुख नाट्य कृतियों के अतिरिक्त आलोच्य युग में धार्मिक-पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की रचना अत्यधिक हुई। इन नाटकों में कलात्मक विकास विशेष रूप से नहीं हुआ, किंतु युग की नवीन प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर कई नाटककारों ने अपनी रचनाओं में नवीन दृष्टिकोण को अपनया। धार्मिक नाट्यधारा के अंतर्गत कृष्ण चरित-राम चरित, पौराणिक तथा अन्य संत महात्माओं के चरित्रों को लेकर रचनाएँ प्रस्तुत की गईं। इस धारा की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं– अम्बिकादत्त त्रिपाठी कृत 'सीय-स्वयंवर' (1918), रामचरित उपाध्याय-कृत 'देवी द्रौपदी' (1921), राम नरेश त्रिपाठी-कृत 'सुभद्रा' (1924) तथा 'जयंत' (1934), गंगाप्रसाद अरोड़ा-कृत 'सावित्री सत्यावान' गौरीशंकर प्रसाद-कृत 'अजामिल चरित्र नाटक' (1926), पूरिपूर्णानंद वर्मा-कृत 'वीर अभिमन्यु नाटक' (1927), वियोगी हरि-कृत (1925), 'छद्मयोगिनी' (1929) और 'प्रबुद्ध यामुन' अथवा 'यामुनाचार्य चरित्र' (1929), जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी-कृत 'तुलसीदास' (1934) लक्ष्मीनारायण गर्ग-कृत 'श्री कृष्णावतार', किशोरी दास वाजपेयी-कृत 'सुदामा' (1934), हरिऔध-कृत 'प्रद्युम्न विजय व्यायोग' (1939), सेठ गोविंददास-कृत 'कर्त्तव्य' (1936) आदि। राष्ट्रीय चेतना की प्रधानता होने के कारण धार्मिक नाटकों में भी राष्ट्रीयता का चित्रण हुआ। नाटकों में अति-नाटकीय और अति-मानवता का बहिष्कार किया गया है। प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं को पूर्ण रूप से हटाने की चेष्टा की गयी है। इस प्रकार की रचनाओं में नाटककारों ने प्रायः कथावस्तु प्राचीन साहित्य से लेकर उसी पुराने ढाँचे में नई बुद्धिवादी धाराओं तथा विचारधाराओं के अनुसार आधुनिक युग की समस्याओं को उनमें फिट कर दिया है।

प्रसाद युग में इतिहास का आधार लेकर अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की गईं। इस समय के नाटककारों की प्रवृत्ति इतिहास की ओर विशेष रूप से गई क्योंकि यह युग पुनरुत्थान और नवजागरणवादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित था। फलतः जन साधारण में अपने गौरवपूर्ण इतिहास तथा अपनी महान सांस्कृतिक चेतना का संदेश देना इन नाटककारों ने अपना कर्त्तव्य समझा। इस काल की गौण ऐतिहासिक कृतियों में गणेशदत्त इंद्र-कृत 'महाराणा संग्रामसिंह' (1911), भंवरलाल सोनी-कृत 'वीर कुमार छत्रसाल' (1923), चंद्रराज भंडारी-कृत 'सम्राट अशोक' (1923), ज्ञानचंद्र शास्त्री-कृत 'जयश्री' (1924) प्रेमचंद-कृत 'कर्बला' (1928), जिनेश्वर प्रसाद भायल-कृत 'भारत गौरव' अर्थात् 'सम्राट चंदग्रप्त (1928), दशरथ ओझा-कृत 'चित्तौड़ की देवी' (1928) और प्रियदर्शी सम्राट अशोक (1935), जगन्नाथप्रसाद मिलिंद-कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा' (1929), चतुरसेन शास्त्री-कृत 'उपसर्ग' (1929) और 'अमर राठौर' (1933) उदयशंकर भट्ट-कृत 'विक्रमादित्य' (1929) और 'दाहर अथवा सिंध पतन' (1943), द्वारिका प्रसाद मौर्य-कृत 'हैदर अली या मैसूर-पतन' (1934), धनीराम प्रेम-कृत 'वीरांगना पन्ना' (1933) जगदीश शास्त्री-कृत 'तक्षशिला' (1937) उमाशंकर शर्मा-कृत 'महाराणा प्रताप' आदि को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। इन नाटककारों ने आदर्शवादी प्रवृत्ति के बावजूद स्वाभाविकता का बराबर ध्यान रखा और कल्पना और

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

मनोविज्ञान की सहायता से प्राचीन काल की घटनाओं और चरित्रों को स्वाभाविकता के साथ चित्रित करने की चेष्टा की। पुरानी मान्यताओं तथा अतिलौकिक वर्णनों के स्थान पर वास्तविक कथा-वस्तु को प्रयोग में लाया गया है। इन चरित्रों में संघर्ष का भी समोवश हुआ। सारांश यह है कि इन नाटकों के कथानक महत् हैं, चरित्र सभी दार्शनिक और आदर्शवादी हैं, शैली कवित्वपूर्ण और अतिरंजित है और नाटकों का वातावरण संगीत और काव्यपूर्ण है। ये नाट्य-कृतियाँ हिंदी नाट्य-कला विकास का एक महत्त्वपूर्ण चरण पूरा करती हैं।

इस युग में पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा का महत्त्वपूर्ण स्थान तो रहा ही है, इसके अतिरिक्त सामाजिक नाटकों की रचना भी बहुतायत से हुई है। सामाजिक नाटकों में विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'अत्याचार का परिणाम' (1921) और 'हिंद विधवा नाटक' (1935), प्रेमचंद-कृत 'संग्राम' (1922), ईश्वरी प्रसाद शर्मा-कृत 'दुर्दशा' (1922), सुदर्शन-कृत 'अंजना' (1923), 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट' (1929), और 'भयानक' (1937), गोविंदवल्लभ पन्त-कृत 'कंजूस की खोपड़ी (1923) और 'अंगूर की बेटी' (1929), बैजनाथ चावला-कृत 'भारत का आधुनिक समाज' (1929), नर्मदेश्वरी प्रसाद 'राम'-कृत 'अछूतोद्धार' (1926), छविनाथ पांडेय-कृत 'समाज' (1929), केदारनाथ बजाज-कृत 'बिलखती विधवा' (1930), जमनादास मेहरा-कृत 'हिंदू कन्या' (1932), महादेव प्रसाद शर्मा-कृत 'समय का फेर', बलदेव प्रसाद मिश्र-कृत 'विचित्र विवाह' (1932) और 'समाज सेवक' (1933), रघुनाथ चौधरी-कृत 'अछूत की लड़की या समाज की चिनगारी' (1934), महावरी बेनुवंश-कृत 'परदा' (1936), बेचन शर्मा 'उग्र'-कृत 'चुंबन' (1937) और डिक्टेटर' (1937), रघुवीर स्वरूप भटनागर-कृत 'समाज की पुकार' (1937), अमर विशारद-कृत 'त्यागी युवक' (1937), चंद्रिका प्रसाद सिंह-कृत 'कन्या विक्रय या लोभी पिता' (1937) आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामाजिक विकृतियों—बाल विवाह, विधवा विवाह का विरोध, नारी स्वतंत्रता आदि का चित्रण करते हुए उनके उन्मूलन का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। इन नाटकों में समुन्नत समाज की स्थापना का प्रयास किया गया है, भले ही नाट्यकला की दृष्टि से ये नाटक उच्चकोटि के नहीं हैं।

आलोच्य युग में शृंगार-प्रधान नाटकों का प्रायः ह्रास हो गया था। थोड़ी बहुत प्रतीकवादी परंपरा चल रही थी, किंतु उसकी गति बहुत धीमी थी। प्रतीक का महत्त्व वस्तुतः सांकेतिक अर्थ में है। इस अवधि में प्रसाद की 'कामना' के पश्चात् सुमित्रानंदन पन्त-कृत 'ज्योत्स्ना' (1934) इस शैली की उल्लेखनीय रचना है। इसमें पंत की रंगीन कलपनामयी झाँकी का मनोरम स्वरूप व्यक्त होता है। इसके अतिरिक्त एक नाट्य-धारा व्यंग्य-विनोद प्रधान नाटकों को लेकर थी। इसको प्रमुख रूप से समाज की त्रुटियों, रूढ़िगत विचारों अथवा किसी व्यक्ति विशेष की विलक्षण प्रवृत्तियों पर चोट करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार से किसी भी समस्या पर किया हुआ प्रहार ऊपर से तो साधारण सा प्रतीत होता है। किंतु तनिक भी ध्यान देने पर उसके पीछे छिपा हुआ अर्थ-गांभीर्य स्पष्ट हो जाता है। हास्य-व्यंग्य प्रधान नाटकों में जी.पी. श्रीवास्तव का 'दुमदार आदमी' (1919), 'गड़बड़ झाला' (1919), नाक में दर्म उर्फ जवानी बनाम बुढ़ापा उर्फ मियाँ का जूता मियाँ के सिर (1926), भूलचूक (1928), चोर के घर छिछोर (1933), चाल बेढव (1934), साहित्य का सपूत (1934), स्वामी चौखटानंद (1936) आदि प्रसिद्ध

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हैं। जनता में इन नाटकों का खूब प्रचार हुआ परंतु रस और कला की दृष्टि से ये निम्नकोटि की रचनाएँ हैं। इस युग में कतिपय गीति-नाटकों की भी रचना हुई। इसमें प्रमुख हैं– मैथिलीशरण गुप्त का 'अनध' (1928), हरिकृष्ण प्रेमी-कृत 'स्वर्ण विहान' (1937), भगवतीचरण वर्मा-कृत 'तारा', उदयशंकर भट्ट के मत्स्यगंधा (1937) और विश्वामित्र (1938) आदि उल्लेखनीय है। 'स्वर्ण विहान' में जीवन की बहिरंग व्यवस्था की ओर अधिक ध्यान दिया गया है और अन्य में आंतरिक क्रिया–व्यापारों का चित्रण है। भाव प्रधान होने के कारण इन नाटकों में कार्य–व्यापार तथा घटना चक्र की कमी मिलती है। भावातिरेक की भाव-नाट्यों की प्राणभूत विशेषता है।

इस प्रकार प्रसाद-युग हिंदी नाटकों के क्षेत्र में नवीन क्रांति लेकर आया। इस युग के नाटकों में राष्ट्रीय जागरण एवं सांस्कृतिक चेतना का सजीव चित्रण हुआ है किन्तु रंगमंच से लोगों की दृष्टि हट गयी थी। जो नाटक इस युग में रचे गये उनमें इतिहास तत्त्व प्रमुख था और रंगमंच का जीवन परंपरा से कट जाने के कारण वे मात्र पाठ्य नाटक बनकर रह गए। कथ्य के स्तर पर वे देश की तत्कालीन समस्याओं की ओर अवश्य लिखे गये किंतु उनमें आदर्श का स्वर ही प्रमुख रहा। फिर भी इतिहास के माध्यम से अपने युग की यथार्थ समस्याओं को अंकित करने में वे पीछे नहीं रहे।

2.5.6 प्रसादोत्तर युगीन नाटक (1937 से अब तक)

प्रसादोत्तर-युगीन नाटक अधिकाधिक यथार्थ की ओर उन्मुख दिखाई पड़ते हैं। परंतु भारत के सामने एक विशिष्ट उद्देश्य था राष्ट्र की स्वाधीनता की प्राप्ति और विदेशी शासकों के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना, फलस्वरूप व्यापक स्तर पर पुनरुत्थान एवं पुनर्जागरण की लहर फैल गई। इस समूचे काल में पुनर्जागरण की शक्तियों का प्रभाव होने के कारण चेतना के स्तर पर भावुक, आवेशात्मक, आदर्शवादी, प्रवृत्तियों से आक्रांत होना नाटककारों की दृष्टि मूलतः आस्था, मर्यादा एवं गौरव के उच्चादर्शों से मंडित रही। भारतेंदु ने अपनी अद्‌भुत व्यंग्यशक्ति एवं समाज विश्लेषण की पैनी दृष्टि से सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया परंतु उनकी मूल चेतना सुधारवादी आग्रहों का परिणाम होने के कारण आस्थामूलक थी। द्‌विवेदी युग में भी दो दशकों के अनवरत साहित्यिक अनुशासन के फलस्वरूप उद्‌भुत साहित्यिक आदर्शवादी मर्यादा एवं नैतिकता के कठोर बन्धन के कारण यथार्थ के स्तर मद्‌धिम पड़ गए। प्रसाद युगीन नाटकों की मूलधारा भी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक आदर्श चेतना से संबंधित थी परंतु खल पात्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं तथा सद् पात्रों की जीवन चरित्र-दृष्टि में यथार्थ चेतना को नकारा नहीं जा सकता। 19वीं शताब्दी में पश्चिमी नाट्य साहित्य में इम्बसन एवं शॉ द्‌वारा प्रवर्तित यथार्थवादी नाट्यांदोलन ने भारतीय नाट्य साहित्य की गतिविधियों को भी प्रेरित एवं प्रभावित किया। फलस्वरूप लक्ष्मी नारायण मिश्र ने प्रसाद के विरोध में समस्या नाटकों का सूत्रपात करके बुद्‌धिवादी यथार्थ को प्रतिष्ठित करने का दावा किया है। परंतु सिद्‌धांत एवं प्रयोग में पर्याप्त अंतर पाते हुए हम देखते हैं कि एक ओर वैचारिक धरातल पर प्रकृतवाद सुलभ जीवन के क्रांतिव्यंजन संबंध ऊभरते हैं, वहीं दूसरी ओर समाधान खोजते हुए परंपरा के प्रति भावुकता-सिक्त दृष्टि भी पाई जाती हैं 'भावात्मकता और बौद्‌धिकता' का घपला होने के कारण उनके नाटकों का मूल स्वर यथार्थ से बिखर जाता है। स्वतंत्रता

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

प्राप्ति से पूर्व अन्य युगीन सामाजिक समस्याओं के साथ राष्ट्र की मुक्ति का प्रश्न सभी नाटककारों की चेतना पर छाया हुआ था। स्वाधीन भारत से उन्हें अनेक प्रकार की कल्पनाजन मीठी अपेक्षाएँ थीं; परंतु विडंबना यह है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन समस्याओं से आक्रांत, बोझिल और जटिल हो उठा। परिवेश के दबाव से ही यथार्थ बोध की शुरुआत हुई।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटक का लेखन प्रसाद-युग में ही प्रारंभ किया था। उनके 'अशोक' (1927), 'संन्यासी' (1929), 'मुक्ति का रहस्य' (1932), 'राक्षस का मंदिर' (1932), 'राजयोग' (1934), 'सिंदूर की होली' (1934), 'आधी रात' (1934) आदि नाटक इसी काल के हैं। किंतु मिश्र जी के इन नाटकों में भारतेंदु और प्रसाद की नाट्यधारा से भिन्न प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है कि भारतेंदु और प्रसाद-युग के नाटकों का दृष्टिकोण मूलतः राष्ट्रीय और सांस्कृतिक था। यद्यपि इस युग के नाटकों में आधुनिक यथार्थवादी धारा का प्रादुर्भाव हो चुका था। तथापि प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों के द्वारा राष्ट्रीयता का उद्घोष इस युग के नाटककारों का प्रमुख लक्ष्य था। अतः उसे हम सांस्कृतिक पुनरुस्थान की दृष्टि कह सकते हैं, जिनमें प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों और नयी यथार्थवादी चेतना में समन्वय और संतुलन परिलक्षित होता है। मिश्र जी नयी चेतना के प्रयोग के अग्रदूत माने जाते हैं। डॉ. विजय बापट के मतानुसार नयी बौद्धिक चेतना का विनियोग सर्वप्रथम उन्हीं के तथा कथित समस्या नाटकों में मिलता है। इस बौद्धिक चेतना और वैज्ञानिक दृष्टि का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी चिंतकों के प्रभाव से हुआ था। डारविन द्वारा प्रतिपादित विकासवादी सिद्धांत, फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत और मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्तों ने यूरोप को ही नहीं, भारतीय जीवन को भी प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप जीवन में आस्था और श्रद्धा की बजाय तर्क को प्रोत्साहन मिला। पश्चिम में इस प्रकार की बौद्धिक चेतना ने समस्या नाटक को जन्म दिया। उन्हीं की प्रेरणा से मिश्र जी ने भी हिंदी नाटकों में भावुकता, रसात्मकता और आनंद के स्थान पर तर्क और बौद्धिकता का समावेश किया। साथ ही द्रष्टव्य है कि बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए भी वे परंपरा-मोह से मुक्त नहीं हो पाए। युगीन मूल्यगत अंतर्विरोधी चेतना समान रूप से उनके प्रत्येक नाटकों में देखी जा सकती है। इनके नाटकों का केंद्रीय विषय स्त्री-पुरुष संबंध एवं सेक्स से संबंध है। राष्ट्रोद्धार, विश्व-प्रेम आदि के मूल में भी मिश्र जी ने काम भावना को ही रखा है, जो परितृप्ति के अभाव में अपनी दमित वृत्ति को देश सेवा आदि के रूप में अभिव्यक्त करती है और प्रायः इस प्रकार परितृप्ति के साधन जुटा लेती है। 'संन्यासी' का संपादक मुरलीधर इसी प्रकार का प्राणी है, जो अवसर पाकर किरणमयी का कौमार्य-भंग करने में भी संकोच नहीं करता, किंतु विवाहिता होने के बावजूद उसके अंतर में मुरलीधर के प्रति आसक्ति का, मोह का अंश शेष बचा रहता है, संभवतः इसलिए कि वह चिरंतन नारी है और प्रत्येक पुरुष उसके लिए चिरंतन पुरुष यौन समस्या को आधारभूत विषय बनाकर ही 'मुक्त का रहस्य' नाटक की संरचना हुई है। इस नाटक में पश्चिम के उन्मुक्त प्रेम पर भारतीय दांपत्य-विधान की विजय दिखायी गई है। 'सिंदूर की होली' विधवा-विवाह एवं नारी उद्धार के प्रति मनोरमा के दृष्टिकोण में भी मिश्र जी की जीवन-दृष्टि भारतीय लगती है। 'राक्षस का मंदिर' मिश्र जी का प्रयोगात्मक नाटक है। इसमें इब्सन की यथार्थवादी और शेक्सपीयर की स्वच्छंदतावादी नाट्य

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पद्धति का समन्वय देखने को मिलता है। नारी और पुरुष के संबंधों की व्याख्या बौद्धिक स्तर पर हुई है। समाज सेवकों की स्वार्थी मनोवृत्ति का भी इसमें चित्रण हुआ है। तर्क-वितर्क द्वारा वेश्याओं की स्थिति में सुधार, चुनाव, गाँधीवाद, खादी, साहित्य, विवाह के बाह्य-आचार, आस्तिकता, नास्तिकता आदि पर विचार भी किया है। 'आधी रात' में अंग्रेजी-शिक्षा और आधुनिक विवाह-पद्धति की कमजोरियों को चित्रित किया गया।

मिश्र जी के नाटकों के साथ हिंदी-नाटक के विषय और शिल्प दोनों में बदलाव आया है। मिश्र जी के सभी नाटक तीन अंकों के हैं। इनमें इब्सन नाट्य पद्धति का अनुसरण कर किसी भी अंक में बाह्यतः कोई दृश्य विभाजन नहीं रखा गया है यद्यपि दृश्य-परिवर्तन की सूचना यत्र-तत्र अवश्य दे दी जाती है। प्रेम, विवाह और सेक्स के क्षेत्र में विघटित जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए मिश्र जी ने शिल्पगत नवीनता को अपनाया है। पात्र समस्या के संबंध में तर्कमूलक वाद-विवाद करते हुए दिखाई देते हैं। कार्य-व्यापार के अभाव से इनके नाटकों में रुक्षता आ गई। जिसके फलस्वरूप प्रभावान्विति खंडित हो गई। रसात्मकता, प्रभावन्विति के स्थान पर बौद्धिक आक्रोश और उत्तेजना ही इनके नाटकों में प्रधान है। लेकिन भावुकता के कारण इनके नाटकों का शिल्पगत गठन प्रभावित हुआ है। इस अंतर्विरोध के रहते हुए भी इनके नाटक अकलात्मक नहीं कहे जा सकते।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' उन नाटककारों में है जिन्होंने प्रसादोत्तर काल में नाट्य परंपरा को निर्भीक और बुनियादी यथार्थ की मुद्रा प्रदान की। काल-क्रम के अनुसार उनके प्रमुख नाट हैं– 'जय-पराजय' (1937), 'स्वर्ग की झलक' (1938), 'छठा बेटा' (1940), 'कैद' (1943-45), 'उड़ान' (1943-45), 'भंवर' (1943), 'आदि मार्ग' (1950), 'पैंतरे' (1952), 'अलग-अगल रास्ते' (1944-53), 'अंजो दीदी' (1953-54), 'आदर्श और यथार्थ' (1954) आदि। अश्क के प्रायः सभी नाटकों में विकसित नाट्य-कला के दर्शन होते हैं। वस्तु-विन्यास की दृष्टि से इनके नाटक सुगठित, स्वाभाविक, संतुलित एवं चुस्त बन पड़े हैं। उच्च मध्य वर्गीय समाज की रूढ़ियों, दुर्बलताओं उनके जीवन में व्याप्त 'कृत्रिमता' दिखावे और ढोंग का पर्दाफाश करना उनके नाटकों का मूलभूत कथ्य हैं। यह कथ्य समाज के स्थूल यथार्थ से संबंधित हैं। कथ्य की स्थूलता और सतही प्रगतिशील यथार्थवादिता ही अश्क के नाटकों की सीमा है, तथापि स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को सम्मोहन से हिंदी नाटक को मुक्त करने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। उनकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने जीवन और समाज को एक आलोचक की दृष्टि से देखा है। इनके उनके नाटक मंचित तथा रेडियो पर प्रसारित हो चुके हैं। इनका योगदान हिंदी नाटक और रंगमंच के लिए एक विशेष उपलब्धि है।

आलोच्य-युग में कुछ पुराने खेवे के नाटककार यथा-सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मी नारायण, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंद वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' आदि भी नाट्य साहित्य को समृद्ध करते रहे। सेठ गोविंददास के 'कर्ण' (1942), 'शशि गुप्त' (1942) आदि पौराणिक नाटकों और 'हिंसा और अहिंसा' (1940), 'संतोष कहाँ' (1941) आदि सामाजिक नाटकों की रचना की। हरिकृष्ण प्रेमी के 'छाया' (1941) और 'बंधक' (1940), सामाजिक नाटक हैं। दोनों नाटकों में आर्थिक शोषण एवं विषमता

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

का यथार्थ मुखरित है। ऐतिहासिक नाटकों में 'आहूति' (1940), 'स्वप्नभंग' (1940), 'विषपान' (1945), साँपों की सृष्टि, उद्धार आदि उल्लेखनीय हैं। 'अमृत-पुत्री' (1978), नवीनतम ऐतिहासिक नाटक है। गोविंद वल्लभ पंत ने आलोच्य युग में 'अंतःपुर का छिद्र' (1940), 'सिंदूर बिंदी' (1946) और 'ययाति' (1951) नाटकों की रचना की। पंत जी ने 'कला के लिए कला' की भावना से प्रेरित होकर नाटकों की रचना अवश्य की है, किंतु उनके नाटक उद्देश्य से रहित नहीं है। उन्होंने जीवन की गहरी उलझनों एवं समस्याओं को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है पंत ने यद्यपि प्रसाद-युग की परंपरा का निर्वाह किया है, किंतु उनके परवर्ती नाटकों में सामाजिक चेतना अधिकाधिक मुखर होती गई है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'गरुड़ध्वज' (1945), 'नारद की वीणी' (1946), 'वत्सराज' (1950), 'दशाश्वमेघ' (1950), 'वतस्ता की लहरें' (1953), 'जगदगुरु', 'चक्रव्यूह' (1953), कवि भारतेंदु (1955), 'मृत्युञ्जय' (1958), चित्रकुट, अपराजित, धरती का हृदय आदि नाटकों की रचना की। सभी नाटकों में वर्तमान युग के शिक्षित व्यक्तियों की समस्याओं, उनकी संशयात्मक मनःस्थिति, उनको कुंठाओं और मानसिक विकृतियों का स्वाभाविक और मनोविश्लेषणात्मक संप्रेषण किया गया है। उदयशंकर भट्ट के नाटकों में 'राधा' (1961), 'अंतहीन-अन्त' (1942), 'मुक्तिपथ' (1944), 'शक विजय' (1949), 'कालिदास' (1950), 'मेघदूत' (1950), 'विक्रमोर्वशी' (1950), 'क्रांतिकारी' (1953), 'नया समाज' (1955), 'पार्वती' (1962), 'मत्स्यगंधा' (1976) आदि हैं। भट्ट जी के ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता है। इसमें इतिहास और मिथक के बीच में यथार्थ और समस्या का अहसास भी दिखाई देता है। सामाजिक नाटकों के माध्यम से भट्ट जी ने वर्तमान जीवन के व्यक्तिगत एवं समाजगत संघर्षों एवं समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। जगन्नाथप्रसाद मिलिंद का 'समर्पण' (1950) और 'गौतम नंद' (1952) ख्याति प्राप्त रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य साहित्यकारों ने भी नाटक के क्षेत्र में अवतरण किया, किंतु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। इनमें बैकुंठनाथ दुग्गल, वृंदावनलाल वर्मा, सीताराम चतुर्वेदी, चतुरसेन शास्त्री, जगन्नाथप्रसाद मिलिंद आदि उल्लेखनीय हैं।

इसी काल में स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाटक में परिवर्तन की एक नई स्थिति दिखाई देती है। प्रसादोत्तर नाटक के पहले चरण में यथार्थवादी प्रवृत्ति से अनुप्राणित हुआ और उसके साथ ही समस्यामूलक नाटक का आविर्भाव हुआ। किंतु स्वतंत्रता के बाद सामाजिक यथार्थ और समस्या के प्रति जागरूकता के साथ-साथ नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के कई नए आयाम उभरे। इसके अतिरिक्त स्थूल यथार्थ के प्रति नाटककार के दृष्टिकोण में भी अंतर आया।

युगीन परिवेश के ऐतिहासिक संदर्भों में पाँचवें दशक तक जीवन के समस्या संकुलन होने पर भी आम जनता की स्थिति में सुधार और परिवर्तन आने की अभी धुँधली सी आशा दिखाई दे रही थी परंतु छठे दशक के बाद से मीठे मोहक सपने बालू की भीत की भाँति ढह गए, परिवेश का दबाव बढ़ा, मोहासक्ति भंग हुई और आज परिवेशगत यथार्थ अधिक नंगा होकर सामने आ रहा है। यथार्थ बोध का सही अभिप्राय मोहभंग की इस प्रक्रिया से ही जोड़ा जा सकता है। जगदीश चंद्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल आदि नाटककारों ने अपनी ऐतिहासिक एवं सामाजिक रचनाओं द्वारा कुछ सीमाओं के साथ यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया। 'जगदीशचन्द्र माथुर' के अब तक चार नाटक प्रकाशित हो चुके हैं—

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

'कोणार्क' (1954), 'पहला राजा' (1969) तथा 'दशरथनंदन'। इन नाटकों के क्रमशः मार्क्स एवं फ्रायड के प्रभावसूत्रों को आत्मसात करते हुए छायावादी रोमानी कथास्थितियों की सृष्टि करने में माथुर की दृष्टि यथार्थवादी एवं आदर्शवादी, कल्पना तथा स्वच्छन्तावादी भावुकता को एक साथ ग्रहण करती है। परिणामतः उनके नाटकों में अंतर्निहित समस्याएँ जीवन के यथार्थ को व्याख्यायित करते हुए भी यथार्थवादी कलाशिल्प में प्रस्तुत नहीं हुई हैं। समस्याओं का विश्लेषण एवं विकास बौद्धिक एवं तार्किक क्रिया द्वारा प्रेरित नहीं है। कोणार्क में कलाकार एवं सत्ता के संघर्ष की समस्या धर्मपद के तार्किक उपकथनों के माध्यम से विश्लेषित हुई है। परंतु 'शारदीया' एवं 'पहला राजा' की समस्याएँ प्रगतिशील एवं ह्रासशील मूल्यों के संघर्ष की भूमि पर अवतरित होते हुए भी बौद्धिक एवं तार्किक प्रक्रिया के अभाव के यथार्थवादी कला की दृष्टि से हमारी चिंतन शक्ति को उद्बुद्ध नहीं करती, क्योंकि माथुर का विशेष बल आंतरिक अनुभूतियों एवं मानवीय संवेदना को जगाने पर है फलस्वरूप उन्होंने काव्यात्मकता एवं रसोत्कर्ष के साधनों का सहारा लिया है। अपनी विचारधारा के अनुरूप ही जगदीश ने नाटकीय कला को संस्कृत एवं लोकनाट्य तथा यथार्थवादी मंच की विशेषताओं से अभिमंडित किया है। काव्य-तत्त्व, अलंकरण एवं रस पारिपाक से संबंधित तत्त्व उन्होंने संस्कृत नाटकों को ग्रहण किए हैं। संघर्ष, अंतर्द्वंद्व का तत्त्व पाश्चात्य यथार्थवादी नाटक शिल्प का प्रभाव है। संक्षेप में, एक ऐसे मंच की परिकल्पना पर उनका ध्यान केंद्रित रहा है जो बहुमुखी हो एक ही शैली में सीमित नहीं हो, भिन्न-भिन्न सामाजिक आवश्यकताओं और चेतनाओं का परिचायक हो।

पाश्चात्य प्रभाव के स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाटक ने जो नये आयाम ग्रहण किए उनकी प्रथम अभिव्यक्ति धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में प्रकट हुई है। पश्चिम में दो महायुद्ध के बाद नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के अनेक प्रयोग हुए। इसके साथ ही युद्ध की परिस्थितियों के कारण जीवन मूल्यों में भी जो बड़ा भारी परिवर्तन आया उसकी अभिव्यक्ति भी नाटक में हुई। भारत में समानांतर सामाजिक परिस्थिति तो नहीं आई किंतु पश्चिम की विचारधारा का उस पर प्रभाव पड़े बिना न रहा। नई कविता और नई कहानी उससे अनुप्राणित थी ही, हिंदी नाटक को भी उससे एक दिशा मिली। ऐसी स्थिति में आधुनिक भाव-बोध को उजागर करने का प्रयास हुआ और धर्मवीर भारती, लक्ष्मी नारायण लाल, मोहन राकेश आदि नाटककारों ने उसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डॉ. धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' (1955) गीति-नाटक के हिंदी गीत नाट्य-परंपरा को एक नया मोड़ दिया है। इसमें नाटककार ने महाभारत के युद्ध को अनीति, अमर्यादा और अद्ध-सत्य से युक्त माना है। इसीलिए उन्होंने इस काल को अन्धायुग कहा है। इस नाटक में मिथकीय पद्धति द्वारा विगत और आगत का समन्वय कर, निरंतरता में आस्था उत्पन्न करने का सघन प्रयास 'भारती' ने किया है। इसमें नाटककार के अस्तित्वादी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। 'अंधायुग' के अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत के 'रजतशिखर', 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' में संगृहीत गीतिनाट्य, गिरजाकुमार माथुर का 'कल्पांतर', 'सृष्टि की साँझ' और 'अन्य काव्य-नाटक' में संगृहीत सिद्धांत कुमार के पाँच गीतिनाट्य–सृष्टि की साँझ, लौह देवता, संघर्ष, विकलांगों का देश और बादली का शाप तथा दुष्यंतकुमार के गीतिनाटक 'एक कंठ विषपायी' (1963) आदि भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के अब तक प्रकाशित नाटक हैं– 'अंधा कुआँ' (1955), 'मादा कैक्टस' (1959), 'तीन आँखों वाली मछली' (1960), 'सुंदर रस', 'सूखा सरोवर' (1960), 'रक्त कमल' (1961), 'रात रानी' (1962), 'दर्पण' (1963), 'सूर्यमुख' (1968), 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु' (1971), 'करफ्यू' (1972) आदि। 'अंधा कुआँ' में आर्थिक संघर्ष के कारण उत्पन्न ग्राम्य-जीवन के सामाजिक और पारिवारिक द्वंद्व का चित्रण हैं 'मादा कैक्टस', 'सुंदर रस', 'सूखा सरोवर' और 'रक्त कमल' उनके प्रतीक नाटक हैं। 'तोता मैना' नाटक टेकनीक के नये प्रयोगों को प्रस्तुत करता है। यह नाटक लोकवृत्त पर आधारित है। 'दर्पण' और 'रात रानी' समस्या नाटक हैं। दर्पण में मनुष्य को अपने वास्तविक रूप की तलाश में भटकते हुए दिखाया गया है। 'कलंको' नाटक में अनेक जटिल प्रश्नों तथा संक्रांति कालीन लोकचेतना को प्रस्तुत करना, आज के मानव में भी धर्ममय कर्मकांड, अंधविश्वास, मानव-कर्मकांड की समानता देखना, यथार्थ की सच्चाई का सामना करने से कतराना आदि को लोकरंगमंचीय संस्कृति, अभिव्यंजनावादी नाट्य-संरचना में प्रस्तुत किया गया है। 'सूर्य-मुख' में महाभारत-युद्ध के बाद की घटना ली गयी है। इस नाटक पर 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया' की स्पष्ट छाप है। 'मिस्टर अभिमन्यु' और 'करफ्यू' आधुनिक जीवन की संवेदना को लेकर लिखे गये विचारोत्तेजक नाटक हैं। डॉ. लाल अपने चारों ओर के परिवेश और युग-जीवन के प्रति सजग हैं। उनका लक्ष्य समाज-विरूपता को संयम और तर्क के साथ चित्रित कर समाज को बदलते जीवन-मूल्यों और नैतिक मानदंडों से अवगत कराना है।

हिंदी नाटकों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाकर 'मोहन राकेश' ने एक नये युग की स्थापना की है। उनका 'आषाढ़ का एक दिन' (1956), 'लहरों के राजहंस' (1963) तथा 'आधे-अधूरे' (1969) नाटक निश्चय ही ऐसे आलोक स्तम्भ हैं जो सुदूर भविष्य में भी हिंदी-नाटक को एक नवीन गति-दिशा प्रदान करते रहेंगे। मानवीय संबंधों में विघटन के कारण टूटते हुए व्यक्ति के आभ्यंतर यथार्थ का चित्रण करना इन नाटकों का केंद्रीय कथ्य एवं मूल स्वर है। 'आषाढ़ का एक दिन' कवि कालिदास और उसकी बाल-संगिनी मल्लिका के प्रेम और संघर्ष की कथा पर आधारित है। कालिदास अपने परिवेश एवं मल्लिका से कट जाने के कारण जीवन के नये अर्थ की तलाश में निकल पड़ता है। 'लहरों के राजहंस' अश्वघोष के प्रसिद्ध महाकाव्य 'सौंदरनंद' पर आधारित है। इस नाटक का नंद सुंदरी और गौतम दोनों से निरपेक्ष हो जाने के बाद अलगाव की स्थिति में आंतरिक सत्य की सही तलाश करने के लिए चल पड़ता है। अतः उनका जीवन-बोध अस्तित्ववाद की वैचारिक भूमिका पर ही उभरा है। राकेश की दृष्टि का यह यथार्थ जीवन-अर्थों की खोज तक ही सीमित है। किसी परिणति तक पहुँचना राकेश का अभीष्ट भी नहीं है। इसी कारण उनके समस्त नाटकों का समापन किसी निश्चित अंत पर पहुँच कर नहीं होता। 'आधे-अधूरे' द्वारा आधुनिक जीवन से साक्षात्कार कराया गया, इसमें महानगर के मध्यम वर्गीय परिवार का चित्रण है। आज के परिवार की टूटन और चुक गये आपसी संबंधों को नाटक में बड़े सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अस्तु, राकेश ने अपनी नाट्य-सृष्टि में अंतर्निहित यथार्थ को पकड़ने की चेष्टा की है। सभी नाटक रंगमंचीय सम्भावनाओं से पूर्ण है। प्रसाद जी के बाद सर्वाधिक सशक्त नाटककार हम राकेश को कह सकते हैं। उन्होंने अतीत के साधन कुहासे और अपने समसामयिक जीवन के अन्य-गलियारों में भटक कर सभी स्तरों पर अपनी नाट्यकला को पूर्णतया आधुनिक रखा है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मोहन राकेश के बाद जिस नाटककार के प्रति विश्वास जागता है, वह है 'सुरेंद्र वर्मा'। उनके नाटकों में 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', 'आठवाँ सर्ग' आदि उल्लेखनीय हैं। प्रथम नाटक में आधुनिक नारी की मनःस्थिति का चित्रण पुराने मिथक प्रतीक के माध्यम से बड़ी सफलतापूर्वक किया गया है। 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' आधार छद्म इतिहास है, पर इसमें लेखक ने एक पौरुषहीन व्यक्ति के विवाह बंधन में पडी नारी शाश्वत समस्या आधुनिक भाव-बोध के साथ उठाने का प्रयास किया है। 'आठवाँ सर्ग' कालिदास के जीवन और लेखन पर आधारित है और उसका कथ्य लेखकीय स्वातंत्र्य की आधुनिक चेतना को उजागर करता है।

व्यवस्था के संदर्भित समाज एवं व्यक्ति के बाह्य एवं आंतरिक यथार्थ का चित्रण करना नये नाटककारों के नाटकों का केंद्रीय कथ्य लगता है। ब्रजमोहन शाह के 'त्रिशंकु', ज्ञानदेव अग्निहोत्री के 'शुतुरमुर्ग', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी' आदि नाटकों में सत्ता के छद्म और पाखंडों का ही पर्दाफाश किया है। अधुनातन नाटककार मुद्रा राक्षस, लक्ष्मीकांत वर्मा, मणि मधुकर, शंकर शेष और भीष्मी साहनी भी क्रमशः अपने नाटकों 'योअर्स-फेथ-फुल्ली', 'तेंदुआ', 'मरजीवा', 'रोशनी एक नयी है', 'रसगंधर्व', 'एक और द्रोणाचार्य' तथा 'हानूश' के माध्यम से इन्हीं प्रश्नों से जूझ रहे हैं। इन्होंने जहाँ एक ओर वर्ग-वैषम्यों की चेतना को जाग्रत करके व्यवस्था के ह्रासशील रूपों का यथार्थ चित्रण किया है वहीं सत्ता के दबाव में पिस रहे आम आदमी की करुण नियति और उससे उत्पन्न संत्रास का भी रूपायन किया है। इस तरह नाटक सीधे जिंदगी की शर्तों से जुड़े और उनकी विषमताओं के साथ जूझते व्यक्ति की यंत्रणा उसके भीतर यथर्थ को रंग-माध्यम से प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाते हैं। बदलाव की चिंतना और आकुलता को उजागर करने के सशक्त कथ्य के ही हिंदी के रचनात्मक नाट्य के लिए शुभारंभ की स्थिति मानी जा सकती है। नये नाटककार सत्यदेव 'दूबे', रमेश उपाध्याय, रामेश्वर प्रेम, शरद जोशी, गिरिराज किशोर, सुशील कुमार सिंह, बलराज पंडित, मृदुला गर्ग, सुदर्शन चोपड़ा नये नाटक लिखकर आंतरिक यथार्थ बोध की संपुष्टि में योग दे रहे हैं। अभी हाल ही में कुछ नाटक प्रकाशित हुए हैं–

प्रभात कुमार भट्टाचार्य का 'काठ महल', गंगाप्रसाद विमल का 'आज नहीं कल', प्रियदर्शी प्रकाश का 'सभ्य साँप', रमेश बख्शी का 'वामाचरण', भगवतीचरण वर्मा का 'वसीयत', इंद्रजीत भाटिया का 'जीवन दंड', सुदर्शन चोपड़ा का 'काला पहाड़' शिवप्रसाद सिंह का 'घाटियाँ गूँजती हैं', नरेश मेहता का 'सुबह के घंटे', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'नेफा की एक शाम', अमृतराय की 'बिंदियों की एक झलक', गोविंद चातक का 'अपने अपने खूंटे', विपिन कुमार अग्रवाल का 'लोटन', विष्णु प्रभाकर का 'टगर', सुरेंद्र वर्मा का 'द्रौपदी' और 'आठवाँ सर्ग' भीष्म साहनी का 'कबीरा खड़ा बाजार में', राजेंद्र प्रसाद का 'प्रतीतियों के बाहर' और 'चेहरों का जंगल' आदि। इन नाटकों में जो सामान्य प्रवृत्तियाँ उभर कर आई हैं वे इस प्रकार हैं– आकार में छोटे, वर्तमान जीवन से उनका संबंध, वस्तुवाद का प्राधान्य, अधिकांश मनोवैज्ञानिक और समस्यात्मक, रंगमंचीय संकेतों का बाहुल्य संकलन त्रय के पालन की प्रवृत्ति आदि। इनमें से अंतर्मन की सच्चाइयों को नकार कर तटस्थता का मुखौटा लगा लेने का उपदेश देने वाले नाटककार कहाँ तक सफल हो पायेंगे, इसका सही मूल्यांकन उनकी आने वाली कृतियों से ही लग सकेगा।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

किसी भी रचना की संपूर्णता कथ्य और शिल्प के सानुपातिक कलात्मक संयोजन में निहित रहती है। हिंदी नाटकों में इन दोनों तत्तों के बीच तालमेल की स्थिति पर यदि विचार किया जाए तो हिंदी के बहुत कम नाटक इस स्तर तक ऊँचे उठ पाते हैं। जब तक रंग जगत में वे सफल नहीं होते, उन्हें अर्थवान साबित नहीं किया जा सकता। यह एक सुखद संयोग है कि हिंदी रंगमंच व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय रंगमंच की भूमिका में क्रियाशील है। आज के हिंदी नाटकों की उपलब्धि पर विचार किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी नाटक ने अपनी निरर्थकता और कलाहीनता के घेरे को तोड़कर उल्लेखनीय सर्जनात्मकता प्राप्त करने की दिशा में कदम बढ़ाया है। और अब नाट्यलेखन केवल सतही सामाजिक उद्देश्यपरकता के आसपास चक्कर नहीं काटता बल्कि गहरी या मूलभूत मानवीय अनुभूति या स्थितियों का सन्धान करता है। इन नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जीवन और समाज की विसंगतियों को उभारते हैं; पीड़ा संत्रास और अजनबीपन के बीच आज के मानव की दयनीय नियति को रेखांकित करते हैं। स्वतन्त्रता के बाद नाटक आधुनिक युग बोध के साथ ही जुड़ता नहीं दिखाई देता, वरन् रंगशिल्प के प्रति अधिक जागरूक भी हो गया है।

2.5.7 बोध प्रश्न

1. 'चंद्रगुप्त' नाटक के नाटककार का नाम बताइए।
2. भारतेंदु के दो नाटकों का नाम बताइए।
3. प्रसादोत्तर युगीन नाटककारों के नाम बताइए।

2.6 सारांश

हिंदी उपन्यास के उत्थान और प्रारंभिक विकास की पृष्ठभूमि में मुख्य रूप से नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन से उत्पन्न चेतना है। हिंदी उपन्यास का परिदृश्य विविधताओं से भरा हुआ है। प्रेमचंद युग में हिंदी उपन्यास का बहुआयामी विकास हुआ। स्वातंत्र्योत्तर दौर में शहरी जीवन को केंद्र बनाकर लिखने वाले उपन्यासकारों की संख्या अधिक है।

आधुनिक हिंदी कहानी का विकास पश्चिम की 'शॉर्ट स्टोरी' की तर्ज पर न होकर प्राचीन भारतीय कथा परंपरा की अगली कड़ी के रूप में हुआ। 1901 ई.से लेकर 1915 ई. तक के समय को प्रेमचंद पूर्व युग के रूप में रेखांकित किया जाता है। 1901 ई. में माधवराव सप्रे द्वारा हिंदी की पहली कहानी लिखी गई।

हिंदी में नाटक लेखन की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुई। भारतेंदु युग में यह गद्य की केन्द्रीय विधा बन गई। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग में हिंदी नाटक का बहुआयामी विकास हुआ। गीति नाट्य, एकांकी, रेडियो नाटक आदि नाटक के विभिन्न रूप हैं।

निबंध साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है जिसका विकास आधुनिक युग में हुआ। निबंध में लेखक अपने भावों और विचारों को प्रभावशाली भाषा और शैली के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

शुक्लोत्तर युग में हिंदी निबंध के विकास की कई दिशाएं हैं। इनमें वैचारिक निबंध, ललित निबंध तथा व्यंग्य निबंध प्रमुख हैं।

2.7 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. हिंदी कहानी के विकास में प्रेमचंद युग की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. हिंदी उपन्यास के विकास के चरणों को बताइए।
4. हिंदी नाटक के विकास में भारतेंदु की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
5. हिंदी निबंध की विकासात्मक यात्रा पर प्रकाश डालिए।

2.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. *हिंदी कहानी का विकास* - मधुरेश
2. *हिंदी कहानी का इतिहास* - गोपाल राय
3. *हिंदी उपन्यास* - रामचंद्र तिवारी
4. *हिंदी उपन्यास का इतिहास* - गोपाल राय
5. *हिंदी नाटक : उद्भव और विकास* - डॉ. दशरथ ओझा
6. *हिंदी का गद्य साहित्य* - रामचंद्र तिवारी
7. *हिंदी वाङ्गमय : बीसवीं शती* - डॉ. नगेंद्र (संपादक)
8. *प्रतिनिधि हिंदी निबंधकार* - डॉ. हरिमोहन

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

*© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi*

इकाई-3

(क) कबीर

लेखक–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

1.1 अधिगम का उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
 1.2.1 बोध प्रश्न
1.3 जीवन परिचय
 1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 साहित्यिक परिचय
 1.4.1 बोध प्रश्न
1.5 विचारधारा
 1.5.1 धार्मिक एवं सामाजिक विचारधारा
 1.5.2 दार्शनिक विचारधारा
 1.5.3 कबीर का रहस्यवाद
1.6 बोध प्रश्न
 1.6.1
 1.6.2
1.7 कबीर का महत्त्व एवं योगदान
1.8 कबीर की साखियों का प्रतिपाद्य
1.9 व्याख्या एवं कठिन शब्द
 1.9.1 बोध प्रश्न
 1.9.2
1.10 सारांश
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के उपरान्त आप–

- भक्तिकाल में कबीर की भक्ति के स्वरूप के विषय में जानेंगे।
- कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में जानेंगे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

- कबीर के सामाजिक योगदान के विषय में जानेंगे।
- कबीर की साखियों का अर्थ समझेंगे।
- कबीर द्वारा दी गई शिक्षाओं के विषय में जानेंगे।

1.2 प्रस्तावना

कबीर भक्तिकालीन संत काव्यधारा के आधार स्तम्भ हैं। वे ऐसे युग में उत्पन्न हुए जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टियों से न केवल अव्यवस्थित था बल्कि अनेकानेक विकृतियों, अन्तर्विरोधों, अंधविश्वासों, विडंबनाओं आदि से ग्रस्त था। ऐसे समय में भारतीय जनता की अन्तर्निहित शक्ति और अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न कबीर का प्रादुर्भाव अंधकार के जन्मजात शत्रु सूर्य की तरह हुआ। अपने स्वानुभव, सहज प्रतिभा एवं जन-चेतना के सहयोग से उन्होंने ऐसी पंक्तियाँ कह डालीं जिनमें से अधिकांश आज भी उतनी ही प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण हैं जितनी मध्यकाल में रही होंगी। उन्होंने उपासना का ऐसा मार्ग चलाया जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के आडंबर एवं अंधविश्वासपूर्ण, तर्कहीन मान्यताओं का खंडन करता था और उन्हें प्रेम और साधना के सीधे-सच्चे मार्ग पर ले जाना चाहता था। अपने भावों, विचारों एवं सिद्धांतों के प्रचार के लिए कबीर ने जनता की ही सरल, सुबोध, व्यंजक भाषा को अपना माध्यम बनाया, उनका काव्य आज भी विचारोत्तेजक एवं प्रेरणादायक है।

पाठ्यक्रम में निर्धारित उनके काव्यांश का अध्ययन करने से पहले उनके जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में कुछ बातें जान लेना उपयुक्त रहेगा।

1.2.1 बोध प्रश्न

प्रश्न 1. कबीर कौन–सी काव्यधारा के आधार स्तम्भ हैं?
2. कबीर ने उपासना का कौन–सा मार्ग चलाया?

1.3 जीवन–परिचय

कबीरदास के जन्म और मृत्यु की तिथियाँ तथा जीवन की घटनाएँ अनिश्चित हैं। कबीरपन्थियों तथा जनसाधारण ने कबीर के जीवन के साथ कुछ ऐसी रहस्यपूर्ण, चमत्कारमयी तथा अलौकिक घटनाएँ जोड़ दी हैं, जिनकी सत्यता का पता लगाना कठिन है। कबीर-पंथ के ग्रन्थों तथा अन्य इतिहासकारों के अनुसार कबीर का जन्म सं. 1455 (ई० स० 1398) और निधन सं० 1551 (ई० स० 1494) में हुआ। उनका जन्म-स्थान काशी और मृत्यु-स्थान मगहर कहा जाता है। उनकी जाति और माता-पिता के विषय में भी विविध जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कबीर ने अपने ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर अपने को 'जाति जुलाहा नाम कबीरा' कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि कबीर के माता-पिता जुलाहा जाति के थे और यह जाति नाथपंथी योगियों की शिष्य थी। इस जाति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था, पर नाथपंथी योगियों के संस्कार इस जाति में अभी तक बने हुए थे।

कहा जाता है कि कबीर गुरु रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी से उत्पन्न हुए थे। उसने लोक-लाज के कारण उन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे छोड़ दिया। वे नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को मिले। उन्होंने उनका पालन-पोषण किया। परन्तु कबीरदास और परवर्ती इतिहासकारों के अनुसार यह बात निराधार सिद्ध हो जाती है। अन्य प्रामाणिक मत के अभाव में नीरू

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

और नीमा ही पालन-पोषण करने वाले माता-पिता माने जाते हैं। कबीरदास ने किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं पाई थी, वरन् साधु-संगति और अनुभव जन्य ज्ञान प्राप्त किया था। तभी तो वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहते हैं– 'मैं कहता आँखनि की देखी, तू कहता कागद की लेखी' तथा 'मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गही नहीं हाथ'। नियमित रूप से शिक्षा न मिलने पर भी कबीरदास ने सत्संग से ज्ञानार्जन किया था। गुरु रामानन्द की कृपा से सब ज्ञान उनके लिए सुलभ हो गया था। कबीर दास ने सम्भवतः अत्यधिक श्रद्धा और आदर के कारण अपने गुरु का नामोल्लेख नहीं किया है परन्तु विद्वानों की धारणा है कि रामानन्द उनके गुरु थे। डॉ. रामकुमार वर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी आदि विद्वान इस सम्भावना का समर्थन करते हैं। इस बारे में एक दोहा बहुत प्रचलित है–

भक्त द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।
कबीरदास परगट किया, सत्त दीप नव खण्ड।।

कबीर के परिवार के विषय में भी मतभेद है। अनुमान किया जाता है कि उनका लोई नामक स्त्री से विवाह हुआ था, जिससे कमाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। 'बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल' लोकोक्ति तो अभी तक प्रचलित है।

कबीरदास का व्यवसाय कपड़ा बुनना था। परन्तु अपने व्यवसाय के प्रति रूचि न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। कबीरदास ने अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व की अवहेलना नहीं की, वरन् 'यथा-लाभ-संतोष' की वृत्ति से अन्त समय तक अपना कार्य करते हुए वह एक सादा जीवन व्यतीत करते रहे।

अन्य महात्माओं की तरह कबीर के विषय में भी कई आश्चर्यजनक कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियों का होना सिद्ध किया जाता है।

मध्यकालीन निर्गुण सन्तों में कबीर का अन्यतम स्थान है। निर्भीकता और सत्यवादिता कबीर के चरित्र के मूल तत्त्व कहे जा सकते हैं। कबीर की साखियों को पढ़कर आप भी यह स्वीकार करेंगे कि आरम्भ से अन्त तक वह क्रांतिकारी रहे। क्रमिक सुधार और क्रमिक परिवर्तन का मार्ग उन्हें प्रिय था। कुरीतियों और कुसंस्कारों के प्रति लेशमात्र भी पक्षपात उन्हें असह्य था। सत्य के इस जिज्ञासु को मोह ओर ममता अपने पथ से विचलित नहीं कर पायी। सत्य की इस खोज मे वह अपना सब कुछ जलाकर निकल पड़े थे और ऐसा ही साथी चाहते थे जिसे 'स्व' की चिंता न हो–

'हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा।
अब घर जारौं तासका, जो चले हमारे साथ।।

कबीरदास में एक प्रकार की अक्खड़ता मिलती है। यह अक्खड़ता उन्हे योगियों से उत्तराधिकार में मिली थी।

कबीर में अखंड आत्मनिष्ठा, दृढ़ता और लापरवाही मिलती है। उन्होंने साधना को एक रणस्थली के समान कठिन और विकट माना है, इसी कारण भक्त की उपमा उन्होंने पतिव्रता और शूर से दी है। महत्ब्रह्म की साधना में आत्म-त्याग की आवश्यकता होती है। अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की प्रवृत्ति इस क्षेत्र में प्रवेश की पहली शर्त है। कबीर की दृष्टि में साधना एवं भक्ति के लिए प्रेम आवश्यक है किंतु प्रेम का मार्ग अत्यंत कठिन है–

'कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।'

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

'सीस उतारै भुइं धरै सो पैठे घर माहिं।।'

कबीर एक युग-प्रवर्तक सन्त थे। उनकी कथनी और करनी-वाणी ओर कर्म में साम्य था। वह जो कुछ कहते थे, उनके मूल में उनका अनुभव और आत्म-विश्वास था। उनमें अपने सिद्धान्तों और सत्य के प्रति पूरी ईमानदारी थी, इसी कारण उनकी उक्तियाँ इतनी चुभने वाली हैं मानव मात्र को समान समझने वाले कबीरदास ऊँच-नीच के भेद, ब्राह्माचार तथा झूठे दिखावे को सह नहीं सके। ऐसे पाखंडियों का खण्डन उन्होंने कटु व्यंग्य के साथ किया है। पण्डित और मुल्ला, शेख और साधु किसी के साथ उन्होंने पक्षपात नहीं किया।

सारग्राही कबीरदास के इस विलक्षण स्वभाव के विषय में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन ध्यान देने योग्य है– ''कबीर युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग-प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी, इसीलिए वह युग-प्रवर्तन कर सके थे।'' कबीर सिर से पैर तक मस्त-मौला थे– बेपरवाह, दृढ़, उग्र कुसुम से भी कोमल, वज्र से भी कठोर वास्तव में कबीरदास एक निर्गुण सन्त थे। उनके व्यक्तित्व में समाज सुधारक, धार्मिक नेता, भक्त सभी का समन्वय है।

1.3.1 बोध प्रश्न

प्रश्न 1. कबीर का जन्म कब और कहाँ हुआ?

2. कबीर ने अपनी जाति कौन–सी बताई हैं?

3. कबीर का पालन–पोषण किसके द्वारा हुआ?

4. कबीर का व्यवसाय क्या था?

5. मैं कहता आंखिन की देखी, तू कहता कागद की लेखी किसका कथन है?

1.3.2

सही/गलत का चुनाव कीजिए

1. निर्भीकता और सत्यादिता कबीर के चरित्र के प्रमुख गुण थे (.........)
2. कबीर की कथनी और करनी में साम्य नहीं था। (.........)
3. कबीर पंडित और मुल्ला में पक्षपात करते थे (.........)

1.4 साहित्यिक परिचय

कबीरदास ने पोथियाँ नहीं पढ़ी थीं पुस्तकों के ज्ञान को वह व्यर्थ का भार मानते थे। ऐसा कोई प्रमाण नहीं, कि उन्होंने कोई ग्रंथ लिखा। उनके शिष्यों ने उनकी वाणियों का संग्रह किया था। उनकी रचनाएँ फुटकर शब्दों साखियों, रमैणियों व पदों के संग्रह के रूप में मिलती हैं। गेय होने के कारण उनकी रचनाओं के रूपों में बराबर परिवर्तन होता रहा है। अन्य व्यक्तियों द्वारा उनके अनुकरण में वैसी ही रचनाएँ लिखने के कारण अनेक रचना-संग्रहों में ऐसी रचनाओं का भी समावेश हो गया है, जो उनकी नहीं है और जिन्हें पृथक करना कठिन है। ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीरदास के शिष्य धर्मदास ने 'बीजक' के रूप में उनकी रचनाओं का संग्रह किया, किन्तु इनकी भाषा के आधार पर इसे पूर्ण प्रामाणिक नहीं माना जाता। कबीर द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या 60 के ऊपर मानी गई है, परन्तु इनमें

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

से अधिकांश संदिग्ध है। कबीर के नाम से प्रचलित पदों की मौखिक परंपराओं में निम्नलिखित तीन अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक हैं–

राजस्थानी परम्परा – इस परम्परा में दादू पंथी, निरंजनी आदि शाखाएँ आती हैं। आचार्य श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' का सबंध इसी परम्परा से है।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब की परम्परा– सिक्खों के 'आदि ग्रन्थ' में संग्रहित कबीर के पद इसमें आते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित 'सन्त कबीर' में ये प्रकाशित हुए हैं।

बीजक की परंपरा – कबीर पंथियों की इस परमपरा में 'बीजक' अत्यन्त मान्य और 'परम पूज्य धर्मग्रन्थ' है। कबीर ने सब मिलाकर कितना कहा, यह कहना कठिन है। कबीर-पंथ वालों के अनुसार कबीर ने छः लाख चौरासी हजार शब्दों की रचना की। डॉ. पारसनाथ तिवारी के अनुसार 744 साखियाँ, 200 पद और 21 रमैणियाँ कबीर की हैं इस पर विद्वानों में मतभेद है। रचना के परिमाण के विषय में विवाद भले ही हो, परन्तु उनके महत्त्व को सभी ने स्वीकार किया है।

साखी, पद और रमैणी

'साखी' शब्द 'साक्षी' का अपभ्रंश रूप है। इस रूप में यह शब्द उस ज्ञान, उस अनुभूति का द्योतक है, जिसे कवि ने अपनी बुद्धि से नहीं, वरण अपने अंतःकरण से साक्षात्कृत किया है। साखी में प्रतिभा : प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा अनुभूति विद्यमान है। ये साखियाँ उस ज्ञान की 'साक्षी' भी है और उसका साक्षात्कार करानेवाली भी हैं। 'साखी' शब्द में 'शिक्षा' या 'सीख' अर्थात् उपदेश का अर्थ भी निहित है। कबीर ने साखियों की रचना भवसागर में डूबते लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान का साक्षात्कार कराने के लिए ही की थी, जैसा कि उनकी इन पंक्तियों से स्पष्ट है–

हरि जी यहै विचारिया, साखी कहौ कबीर।
भौ सागर में जीव है, जो कोई पकड़ै तीर।।

साखियों में नैतिक उपदेश का भी समावेश मिलता है। छंद की दृष्टि से 'साखी' दोहा के निकट है। अधिकांश साखी सामान्यतः दोहा छंद में ही रचित है। कबीर ने अपनी साखियों में गुरु का महत्त्व, सुमिरण-मनन की अवस्था, जीवात्मा का विरह, संसार की नश्वरता के प्रति चेतावनी, ईश्वर तत्त्व की प्राप्ति में माया की बाधकता, सहज समाधि, साधु-संगति, कुसंगति, गुरु का शब्दोपदेश (सबद), निन्दा, पतिव्रता नारी आदि विषयों को लिया है।

कबीर ने पदों की रचना भी की है, जिनकी संख्या 21 है। ये रमैणियाँ, एक पदी, दो पदी, चौपादी, सप्तपदी, अष्टपदी और बारहपदी है। इनमें धार्मिक ब्राह्यचारों और आचारिक असंगतियों पर तीखे कटाक्ष किये गये हैं।

उपर्युक्त तथ्यों से आपको स्पष्ट हो गया होगा कि कबीरदास सरल हृदय भक्त थे। उन्होंने अपने को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य-रचना की। इसी कारण पिंगल (छंद शास्त्र) आदि काव्य के बाह्य उपकरणों की उपेक्षा हुई। भावों एवं विचारों की मार्मिक अभिव्यंजना के कारण उनका काव्य प्रभावशाली एवं विचारोत्तेजक बन पड़ा है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दों में "यद्यपि कबीर ने पिंगल और अलंकार शास्त्र के आधार पर कविता नहीं की तथापि उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कृष्ट थी कि वे सरलता से महाकवि कहे जा सकते हैं। कविता में छंद और अलंकार गौण है, संदेश प्रधान है। कबीर ने अपनी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

कविता में महान् संदेश दिया है। उस संदेश के प्रकट करने का ढंग अलंकार से युक्त न होते हुए भी काव्यम है।''

कबीर के काव्य का विचार पक्ष अत्यंत पुष्ट है। उनके काव्य का मेरुदण्ड (आधार) उनका बुद्धितत्त्व या चिंतन है। उनके काव्य में विचारों की अभिव्यक्ति अत्यंत सफलता से हुई है। उनके पदों में भाव-व्यंजना की गहराई विद्यमान है। विशेषकर विरह-पीड़ा के पदों में भावों की तीव्रता और अनुभूति की सघनता अद्वितीय है। कबीर को कुशल कलाकार नहीं कहा जा सकता, उन्होंने इसकी अपेक्षा भी नहीं की। उन्हें मानवता को महान संदेश देना था। वह संदेश जनता तक पहुँचाने की पूरी शक्ति उनके काव्य में है। कबीर के काव्य में लोक-जीवन की अभिव्यक्ति के अनुरूप शब्द-शक्तियाँ, अलंकार, गुण, छंद आदि मिलते हैं। उन्होंने अपने कथन को सुग्राह्य बनाने के लिए लोक-जीवन, विशेषकर कृषक और जुलाहे के जीवन के प्रतीकात्मक शब्द ग्रहण किये।

कबीर की कुछ साखियों और पदों में शांतरस है। उलटबाँसियों में अद्‌भुत रस है। शेष पदों में भक्ति-विषयक श्रृंगार रस प्रधान है। उनका श्रृंगार प्रभाव-तीव्रता रखते हुए भी आध्यात्मिक है। उपदेश संबंधी कथन के लिए कबीर ने साखी का व्यवहार किया है। गूढ़ अनुभूति के प्रकाशन के लिए पद और रमैणी का प्रयोग हुआ है। ब्रह्म संबंधी अपनी अनुभूति के प्रकाशन के लिए कबीर ने उलटबाँसियों का प्रयोग किया है। इन उलटबाँसियों में प्रकृति विरुद्ध सत्यों का कथन कर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया गया है।

काव्य को प्रभावशाली बनाने वाले कुछ अलंकार भी कबीर के काव्य में अनायास आ गये हैं। उनके काव्य में सांग-रूपक का प्रयोग अधिक मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्योक्ति, उदाहरण, दृष्टांत, उपमा, विरोधाभास, विभावना आदि अलंकार भी मिलते हैं। ये अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाने के लिए चेष्टापूर्वक नहीं लाये गये हैं बल्कि वाणी के सहज प्रवाह में अपने आप आ गये हैं।

कबीरदास ने काव्य -रचना पांडित्य-प्रदर्शन की भावना से नहीं की, अपितु जन-सामान्य की भाषा में जन-साधारण तक अपने विचारों को पहुँचाने की दृष्टि से की। अपने सिद्धांतों के प्रचार और सत्संग के लिए कबीर विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया करते थे, अतः उनकी भाषा में भोजपुरी, ब्रज, अवधी, खड़ी-बोली, राजस्थानी आदि का मिश्रित रूप मिलता है। इसीलिए उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा जाता है।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे-उन्होंने स्वयं कहा है– 'विद्या न पढ़ौं बाद हिं जानौं।' परन्तु उनके काव्य में सत्यनिष्ठा का तेज, दृढ़ विश्वास का बल और सरल-हृदयता का सौंदर्य विद्यमान है।

1.4.1 बोध प्रश्न

1. कबीर की वाणियों का संग्रह किसने किया?
2. कबीर की रचनाओं का संग्रह किस नाम से किया गया?

1.4.2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. साखी शब्द .... का अपभ्रंशरूप है। (साक्षी–सखी)
2. छन्द की दृष्टि से साखी .... के निकट है (दोहा–सोरठा)

© DDCE, COL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1.5 विचारधारा

कबीर शास्त्रों के ज्ञाता नहीं थे। उनकी यह मान्यता भी थी कि वेद, शास्त्र, कुरान आदि परम्परागत धार्मिक ग्रन्थ, व्यर्थ और त्याज्य हैं। अतः सारसंग्रही दृष्टि से विभिन्न मतों ओर सम्प्रदायों में से मूल बातों को लेकर कबीरदास ने अपनी मौलिक प्रतिभा से सन्त मत को शक्ति-सम्पन्न बनाया। उपनिषदों के अद्वैतवाद, सूफी सन्तों की प्रेममयी रहस्य-भावना, वैष्णवों के अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद (शरण-अनुग्रह पाने की कामना), इस्लाम के एकेश्वरवाद, सिद्ध ओर नाथ साधकों की विचारधारा-सभी धार्मिक मतों के तत्त्व कबीर की रचनाओं में मिलते हैं।

1.5.1 धार्मिक एवं सामाजिक विचारधारा

कबीर भक्त और कवि होने के अतिरिक्त समाज सुधारक भी थे। समाज की कमजोरी, उसकी विषमता को कबीरदास ने पहचाना और अपनी पूरी ईमानदारी के साथ उसे दूर करने का प्रयास किया। समाज के अन्तर्गत किसी प्रकार की जातिगत भेदभाव कबीर को मान्य न था। समाज में प्रचलित रूढ़ियों और मिथ्याडम्बरों की उन्होंने कटु आलोचना की। उस समय का धर्म बाह्याचारों और कुसंस्कारों से जकड़ा हुआ था। उन्होंने धर्म के बाहरी विधि-विधान (जप, माला, छापा, हज, तिलक, रोजा, नमाज आदि) का विरोध किया। व्यक्तिगत पवित्रता और आचरण को महत्त्व देते हुए भी कबीर की साधना-पद्धति समाज की उपेक्षा नहीं करती। उन्होंने समाज से दूर हटकर जप-तप को प्रशंसनीय नहीं माना। प्रवृत्ति (लगाव) और निवृत्ति (वैराग्य) दोनों का मध्य मार्ग ही उन्होंने चुना।

आज के समाज को देखते हुए आप मध्यकालीन समाज की कल्पना करें कि किस प्रकार तत्कालीन समाज में हिन्दू ओर मुसलमान दोनों ही बाहरी आचारों में विश्वास रखते थे। हिन्दू माला, तिलक, तीर्थ-स्थान आदि के पक्षपाती थे, तो मुसलमान रोजा, नमाज और अजान के। कबीर ने पूरी दृढ़ता के साथ कटु-व्यंग्य करते हुए दोनों को सचेत करने और सत्य का ज्ञान कराने का प्रयास किया है। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों-मूर्ति-पूजा, छुआ-छूत, तीर्थस्थान तथा हज, अजान आदि का घोर विरोध किया, क्योंकि कबीर का यह दृढ़ मत था कि ये धर्म की ऊपरी बातें हिन्दू और मुसलमान को आपस में लड़ाने वाली हैं।

प्राणिमात्र की एकता और समता का संदेश सुनाने वाले कबीर ने अहिंसा को आदर्श बताया। बाह्यडम्बरों को त्यागकर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मनोविकारों के दमन को व्यक्तिगत आचरण और शुद्धता का आधार बताया। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों को एकता और बन्धुत्व का सन्देश देकर सांस्कृतिक एकता-स्थापन का प्रयत्न किया।

1.5.2 दार्शनिक विचारधारा

कबीरदास मूलतः भक्त थे, दार्शनिक नहीं। ब्रह्म, जीव, माया सम्बन्धी उनके सिद्धान्तों को दार्शनिक माना जा सकता है। कबीर ने ब्रह्म को सर्वशक्तिमान माना। यह ब्रह्म रूप-रेखा, आकार, भाव-अभाव से परे है। उसे कबीरदास ने द्वैत (ब्रह्म-माया) और अद्वैत (केवल ब्रह्म) दोनों से विलक्षण माना। इसे केवल अनुभव और साधना से ही जाना और पाया जा सकता है। यही ब्रह्म कबीर का उपास्य है, जिसे उन्होंने 'राम' नाम से पुकारा है। परन्तु उनके राम दशरथ-सुत न होकर निर्गुण और निराकार है। उन्होंने स्पष्ट कहा है–

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

"दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।"

सामान्यतः कबीर ने ब्रह्म और जीव का अद्वैत (एकत्व) माना है। जीव ब्रह्म का ही अंश है और उसी में लीन हो जाता है। उसके इस मिलन में माया का बाहरी आवरण ही बाधक है। जीव और ब्रह्म एक हैं पर माया के कारण जीव सत्य को जान नहीं पाता। सदगुरु उसे मार्ग दिखाता है। इसी कारण कबीर-मत में गुरु का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। गोविन्द (ब्रह्म) से मिलन में सहायक होने के कारण गुरु गोविन्द से भी अधिक आदर का पात्र माना गया है–

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविन्द दियौ मिलाय।

कबीर के अनुसार यह ब्रह्म निर्गुण और निराकार है, जीव इसका अभिन्न अंश है, परन्तु भक्त उपासना-भक्ति के लिए ब्रह्म को द्वैत रूप में अर्थात् अपने से भिन्न मानकर उससे विविध सम्बन्ध स्थापित करता है। कबीर अपने उपास्य को सर्वशक्तिमान् ऐश्वर्यशाली मानकर कभी उसे 'स्वामी या साहेब' मानते हैं और कभी उसकी स्नेहशीलता, वात्सल्य -भावना को दृष्टि में रखकर माता के रूप में सम्बोधित करते हैं, यथा–

'हरि जननी मैं बालक तोरा।'

कबीर ब्रह्म को कभी पिता के रूप में देखते हैं कभी पति के रूप में। उनके काव्य में अनेक स्थलों पर ब्रह्म प्रियतम रूप में उपस्थित है। कबीर अपने को पत्नी मानते हैं, ब्रह्म को पति। इस तरह की दाम्पत्य-भाव की भक्ति कबीर की साधना की विशेषता है। कबीर की इस प्रेम–भावना पर सूफियों का प्रभाव है–परन्तु कबीरदास फारसी परमपरा के अनुसार ब्रह्म को 'माशूका' या प्रियतमा न मानकर भारतीय परम्परा के अनुसार पति या प्रेमी मानते हैं–

'राम मेरे पीव मैं राम की बहुरिया।'

1.5.3 कबीर का रहस्यवाद

जीव को ब्रह्म में लीन हो जाने की चरम इच्छा होती है। उसका सम्पूर्ण जीवनकाल नैहर–निवास या विरह काल है। इसी कारण कबीर के काव्य में विरह-वेदना की आकुलता मिलती है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा ब्रह्म में मिल जाती है। यह कबीर आदि सन्तों की पारिभाषिक पदावली में 'आध्यात्मिक विवाह' है। ब्रह्म के संबंध का चिन्तन, उसकी प्रेम-भक्ति की रहस्यवाद है। कुछ विद्वानों के अनुसार कबीर के रहस्यवाद में चिंतन (अद्वैतवाद), साधना (हठयोग, योगाभ्यास) तथा भावना (प्रेम-भक्ति) का समन्वय है। उनकी दृष्टि में सारी सृष्टि में ब्रह्म समाया हुआ है। ब्रह्म से रहित कोई भी पदार्थ नहीं है। कवि जब ब्रह्म के प्रकाश को देखने निकलता है, उसे सर्वत्र ही ब्रह्म वेग प्रकाश दीखता है–

'लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।'

कबीर के अनुसार ब्रह्म अविनाशी है, जीव उसी का अंश है। माया आकर्षक रूप बनाकर ब्रह्म और जीव के मिलन में बाधक होती है, अतः माया त्याज्य है। यह दिखाइ ̍पड़ने वाला संसार नश्वर है। ब्रह्मा की भक्ति और सत्कर्म ही जीव का उद्धार कर सकते हैं।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1.6 बोध प्रश्न

1.6.1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में दीजिए–

प्रश्न 1. कबीर भक्त और कवि होने के साथ–साथ और क्या थे?

2. कबीर ने किसे सर्वशक्तिमान माना है?

3. कबीर ने ब्रह्म को किस–किस रूप में देखा है?

1.6.2 सही विकल्प चुनें –

प्रश्न 1. कबीर थे

(क) भक्त (ख) कवि (ग) समाज सुधारक (घ) उपर्युक्त सभी

3. कबीर ने ब्रह्म को किस नाम से पुकारा –

(क) श्याम (ख) राम (ग) मोहन (घ) गोविन्द

4. कबीर के ब्रह्म का स्वरूप कैसा है –

(क) निर्गुण (ख) सगुण (ग) निराकार (घ) मूर्तिकार

1.7 कबीर का महत्त्व एवं योगदान

कबीर सहज चिंतक, भावुक भक्त, कवि और संत होने के साथ ही बिखरे समाज को संगठित करने वाले लोकनायक भी हैं। अपनी मौलिक प्रतिभा, तेजस्वित और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्होंने कुसंस्कारों के जंजाल को दूर कर समाज के सुधार और पुनर्निर्माण की चेष्टा की। तत्कालीन युग विश्रृंखलता और अव्यवस्था का युग था। हर्ष की मृत्यु के बाद भारतीय समाज का पतन आरम्भ हुआ और कबीर के समय तक राजनीतिक पराभव, धार्मिक असहिष्णुता और सामाजिक विश्रृंखलता बहुत अधिक बढ़ चुकी थी।

कबीरदास युगद्रष्टा महात्मा थे। उन्होंने देखा कि भेद-नीति तथा बाह्याचारों की अधिकता हिन्दू-मुस्लिम एकता में बाधक है। दोनों एक ईश्वर के उपासक हैं, अन्तर इतना ही है कि हिन्दू ईश्वर को राम और मुसलमान उसे रहीम कहते हैं। इस तत्त्व को न समझने के कारण ही दोनों लड़ते हैं। कबीर ने सभी को एक ही ईश्वर की सन्तान बताया और उनके अंधविश्वास को दूर किया– 'कोई हिन्दू, कोई तुरुक–कहावै, एक जमीं पर रहिए।' हिन्दू मुस्लिम एकता का संदेश सबसे पहले कबीर ने ही दिया।

कबीर ने बाह्याचारों एवं विधि विधानों की जटिलता से रहित उपासना के उस सरल मार्ग का प्रवर्तन किया, जिस पर चलने के लिए किसी विशेष जाति या वर्ग का सदस्य होना आवश्यक नहीं। हृदय में भक्ति-भावना और आचरण की शुद्धता रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसे अपना सकता है।

कबीर से पहले भी युगदर्शी महात्मा हुए थे; परन्तु उनमें से किसी में पूरी तीव्रता के साथ जाति-पाँति तथा बाह्याचारों का खंडन कर समाज के मार्ग-प्रदर्शन का साहस नहीं था। कबीर के इसी प्रभावशाली व्यक्तित्व को दृष्टि में रखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है– 'हिन्दी साहित्य के

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में वह व्यक्तित्व एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है– तुलसीदास।'

कबीर-साहित्य में सर्व-धर्म समन्वय के तत्त्व मिल जाते हैं। उनमें अपने सिद्धान्तों के प्रति अविचल निष्ठा और दृढ़ता थी। वे उन व्यक्तियों में से एक थे, जो कठिन परिस्थितियों से न तो टूटते हैं और न उनके सामने झुकते हैं। आचार्य द्विवेदी के अनुसार कबीर के काव्य में समाज-सुधार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, सर्व-धर्म-समन्वय के तत्त्व मिल जाते हैं, परन्तु वे मूलतः भक्त थे। इसी कारण कबीर ने अपने उपदेशों को किसी पर जबरदस्ती लादने का प्रयास नहीं किया। कबीर के काव्य ने तत्कालीन धार्मिक अव्यवस्था को दूर किया, धर्मांध शासकों के मद का शमन किया तथा मानवमात्र को समता का महान् संदेश दिया। यह संभव है कि काव्यमयता ढूँढ़ने वाले कतिपय समीक्षकों को कबीर के काव्य में उच्चकोटि की साहित्यिकता न मिले परन्तु हृदय से निकली उनकी उक्तियों में असाधारण शक्ति और प्रभाव है।

1.8 कबीर की साखियों का प्रतिपाद्य

रस कौ अंग

कबीर ग्रंथावली में 'रस कौ अंग' में भक्ति और ज्ञान द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करने से संबंधित शिक्षाएँ दी गई है। इन साखियों के द्वारा कबीरदास भक्ति और उससे प्राप्त आनंद के विषय में बताते हैं। कबीर कहते हैं राम नाम की भक्ति का रस पीने में बहुत मधुर होता है परंतु उसे प्राप्त करना अत्यंत मुश्किल होता है। इसे पीने के लिए गुरु के द्वारा मिलने वाले ज्ञान की आवश्यकता होती है। गुरु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिष्यों की पंक्ति लगी हुई है परंतु उनमें सच्चा शिष्य वही होता है जो अपना सब कुछ गुरु ज्ञान पाने के लिए न्यौछावर कर दे। प्रभु भक्ति का ज्ञान रूपी नशा यदि एक बार शिष्य को चढ़ जाए तो फिर वह नहीं उतरता अर्थात् शिष्य सांसारिक मोह माया में नहीं उलझता। वह मदमस्त हाथी के समान प्रभु भक्ति में लीन रहता है। संसारिक बंधनों से मुक्त होकर शिष्य प्रभु भक्ति के रस में डूबा रहता है।

1.9 व्याख्या एवं कठिन शब्द

1. दोहा– **कबीर हरि रस यौं पिया बाकी रही न थाकि।**
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़हिं चाकि।।1।।

संदर्भ एवं प्रसंग– उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली में संकलित 'रस कौ अंग' से ली गई है। इस साखी में कबीर भक्ति रस प्राप्ति के बाद की अवस्था के विषय में बताते हैं।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि उन्होंने हरि भक्ति रूपी रस का आस्वादन खूब जी भर कर लिया है अर्थात् भक्ति की गहराई तक वो पहुँच चुके हैं, अब कुछ भी शेष नहीं रह गया है। बाकि रही न थाकि से दो अर्थ निकलते हैं, एक तो यह कि इतना ग्रहण कर लिया है कि कुछ भी शेष नहीं रहा और दूसरा यह कि थकान सांसारिक संताप आदि भक्ति के सामने महत्वहीन हो गई हैं। ऐसी अवस्था में भक्त साधना की पूर्णता तक पहुँच जाता है, संसार से भी उसे विरक्ति हो जाती है। जैसे कुम्भकार

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

चाक पर कच्ची मिट्टी से घड़ा बनाता है और उसे अग्नि में पका कर ठोस रूप दे देता है, तो उसे पुनः चाक पर चढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। इसी तरह यदि एक बार साधक साधना–अवस्था तक पहुँच जाता है तो उसे जीवन–मरण के चक्र से मुक्ति मिल जाती है।

विशेष :

1. भक्ति–रस का वर्णन है।
2. खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद है। 13 और 11 के विश्राम से 24 मात्राओं का प्रयोग हुआ है।
5. राजस्थान व और पंजाब की बोली के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

दोहा – राम रसाइन प्रेम रस पीवत, अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, माँगै सीस कलाल।।2।।

संदर्भ एवं प्रसंग– उपर्युक्त दोहा कबीर ग्रंथावली में रस को अंग से लिया गया है। इस साखी में कबीरदास जी सिर को जीवन तथा जीवन के सुखों का प्रतीक बताते हैं, तथा कलाल गुरु अथवा संत को ब्रह्म तक पहुंचने का रास्ता बताते हैं।

व्याख्या : कबीर अपनी इस साखी के माध्यम से कहते हैं कि राम रसायन अर्थात् राम नाम रूपी भक्ति रस पीने में अधिक मधुर और मीठा होता है। लेकिन यह भक्ति रस पीना, ग्रहण करना अत्यंत ही दुर्लभ होता है। भक्ति के लिए गुरु की आवश्यकता होती है और गुरु रूपी कलाल इसके लिए शीश की मांग करता है अर्थात् भक्ति में पूर्ण रूप से समर्पण की आवश्यकता होती हैं शक्ति या साधना कोई आसान कार्य नहीं है जिसे कोई भी व्यक्ति प्राप्त कर लें। अपने आप को न्यौछावर करके ही भक्ति रूपी मधुर रस को पिया जा सकता है।

विशेष :

1. भक्ति पूर्ण समर्पण की मांग करती है।
2. खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद है।
5. राजस्थान व और पंजाब की बोली के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

कठिन शब्द – राम नाम रूपी रसायन।

प्रेम–रस –	भक्ति रूपी रस।
अधिक –	ज्यादा
दुलभ –	दुर्लभ / मुश्किल
कलाल –	गुरु

दोहा– कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ।।3।।

संदर्भ एवं प्रसंग – उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली में 'रस कौ अंग' से ली गई है, इस साखी में

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

कबीर कहते हैं कि प्रभु प्राप्ति के लिए सर्वस्व त्याग करना पड़ता है।

व्याख्या – कबीरदास जी कहते हैं कि गुरु की भक्ति रूपी दुकान पर भक्तों की पंक्ति लगी हुई, लेकिन उस मदिरा रूपी भक्ति को वही साधक पी सकता है जिसने प्रभु यानि ब्रह्म को पाने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर किया हो। जो भक्ति को पूरी तरह से साध ले ऐसे साधक को ही कलाल रूपी गुरु ब्रह्म तक पहुँचने का रास्ता बताता है। साधक अपनी साधना के द्वारा कठिन से कठिन परिस्थितियों को भी पार कर ले तो ब्रह्म को पाया जा सकता है।

विशेष :

1. गुरू–शिष्य के स्वरूप की अभिव्यक्ति है।
2. मिली–जुली भाषा प्रयुक्त है।
3. व्यतिरेकी अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
5. राजस्थानी व पंजाबी भाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

कठिन शब्द– भाठी – भट्ठी जिसमें मदिरा तैयार की जाती है।
बहुतक – बहुत से

दोहा– हरि रस पीया जॉणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार।
मैंमता घूमत रहै, नॉही तन की सार।।4।।

संदर्भ एवं प्रसंग– उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली मे 'रस कौ अंग' से ली गई है इस साखी में कबीरदास जी कहते हैं कि हरि राम का पान करने वाला साधक अपने शरीर की सुध–बुध भी भूल जाता है।

व्याख्या– कबीरदास अपनी इस साखी में कहते हैं कि प्रभु रस, प्रेम रस, भक्ति रस का खुमार अर्थात् नशा एक बार चढ़ जाए तो फिर उतरता नहीं है। दूसरे नशे कुछ देर बार उतर जाते हैं लेकिन हरि नाम का नशा उतरता ही नहीं है। इस भक्ति रूपी नशे में साधक इस तरह डूब जाता है कि उसे अपने तन–मन की सुध–बुध ही नहीं रहती। वह अपनी इंद्रियों को भी भूल जाता है। वह मस्त होकर प्रभु नाम लेता हुआ घूमता रहता है।

विशेष :

1. भक्ति – रस और प्रेम–रस की विशेषता बताई है।
2. कबीर की भाषा पंचमेली खिचड़ी है।
3. उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद है।
5. राजस्थान, पंजाबी और प्रान्तों की बोलियाँ भी प्रयुक्त हुई है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

कठिन शब्द–	कबहूँ	–	कभी
	खुमार	–	नशा
	मैमतां	–	मस्त
	सार	–	सुध–बुध

दोहा– मैंमता तिण नां चरै, सालै चिता मन सनेह।
बारि जु बाँध्या प्रेम कै, डारि रह्या सिरि षेह।।5।।

संदर्भ एवं प्रसंग– उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली से ली गई है। इस साखी में कबीरदास जी भक्ति रस में डूबे हुए साधक के विषय में बताते हैं।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं राम नाम में डूबे व्यक्ति का आचरण ऐसा हो जाता है जैसे किसी मतवाले हाथी को पकड़ कर खूँटे से बाँध दिया जाता है। अर्थात् जंगल में स्वतंत्र घूम रहे हाथी को यदि पकड़ कर खूँटे से बांध दिया जाता है तो वह अपनी सामान्य दिनचर्या को भी भूल जाता है। वह आस–पास पड़ी हुई मिट्टी या धूल को अपनी सूँड से उड़ाता रहता है। इसी प्रकार प्रभु की भक्ति में डूबे हुए साधक का मन भी ब्रह्म के प्रेम में भक्ति रस में ही डूबा रहता है वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न आचरण करता है क्योंकि उसे भक्ति का शूल चुभता रहता है वह निरंतर हरि रस को पीने के लिए बेचैन रहता है।

विशेष :

1. भक्त के आचरण का वर्णन है।
2. सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है।

कठिन शब्द–	मैंमता	–	मतवाला
	तिण	–	तिनका, घास
	चिता	–	मन
	षेह	–	धूल

दोहा– मैमंता अविगत रहा, अकलप आसा जीति।
राम अमलि माता रहै, जीवन मुकति अतीकि।।6।।

संदर्भ एवं प्रसंग– उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली से ली गई है। इस साखी में कबीरदास जी कहते हैं कि भक्ति में डूब कर साधक की स्थिति मदमस्त हाथी के समान हो जाती है।

व्याख्या– कबीरदास जी कहते हैं, भक्ति रस में डूब कर साधक मस्त हो जाता है अर्थात् इंद्रियों जनित विषय–विकारों से दूर हो जाता है। जिस प्रकार मतवाला हाथी अपने मद में चूर रहता है और अपनी इंद्रियों को भूल कर अकल्पनीय आशा में रास्ते की रूकावटों से टकराता हुआ, जीतते हुए आगे बढ़ता है, उसी प्रकार राम का नाम लेते हुए साधक संसार रूपी जीवन से मुक्त होकर भक्ति रस में डूबा रहता

© DDCE/COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

है। यह संसार की मोह–माया से मुक्त हो जाता है।

विशेष :

1. भक्त सांसारिक मोह–माया के बंधनों से छूट जाता है।
2. खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. अनुप्रास एवं उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. दोहा छंद है। 13 और 11 के विश्राम से 24 मात्राओं का प्रयोग हुआ है।
5. कबीर की भाषा सहज सरल है।

कठिन शब्द– अविगत – अगम्य

अकनप – अकल्पनीय

जीति – जीत लेना

माता – मदमस्त

दोहा– जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैं गल मलिन्हाइ।
देवल बूड़ा कलस सूँ, पंषि तिसाई जाइ।।7।।

संदर्भ एवं प्रसंग – उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली से ली गई है। इस साखी में कबीरदास जी भक्ति से प्राप्त आनन्द के विषय में बताते हैं।

व्याख्या– कबीर दास जी कहते हैं कि जिस सरोवर में घड़ा तक नहीं डूबता था उसमें मेरा हाथी के शरीर जैसा मन मल–मल कर नहा लिया। अर्थात् जो मन अब तक विषय वासनाओं में ही उलझा हुआ था, प्रभु की तरफ देखता भी नहीं था वह अब भक्ति रूपी रस में पैर से लेकर चोटी तक डूब गया है। जो सरोवर पहले एक पक्षी की भी प्यास नहीं बुझा पाता था उसमें अब एक मदमस्त हाथी मल–मल कर नहा कर चला गया, अर्थात ज्ञान प्राप्ति के बाद साधक पूर्ण रूप से भक्ति के आनन्द में लिप्त हो जाता है।

विशेष :

1. भक्ति में आकंठ डूबे भक्त का वर्णन है।
2. मिली–जुली खिचड़ी भाषा है।
3. दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।
4. राजस्थानी व पंजाबी भाषा का प्रयोग हुआ है।

कठिन शब्द – जिहि– जिस

सर – सरोवर, तालाब

मैंगल – मदमस्त हाथी

देवल – देवालय

बूड़ा – डूबा

कलस – शिखर

पंषि – पक्षी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

दोहा– सबै रसाइण मैं किया, हरि सा और न कोई।
तिल इक घर मैं संचरे, तौ सब तन कंचन होइ।।8।।

संदर्भ एवं प्रसंग– उपर्युक्त साखी कबीर ग्रंथावली में 'रस कौ अंग' से ली गई है। इस साखी में कबीरदास जी भक्ति से प्राप्त आनन्द रस की महत्ता बताते हैं।

व्याख्या– कबीरदास कहते हैं कि मैंने संसार के सभी रसायनों का रसास्वादन अर्थात् चख कर देख लिया है, परंतु हरि–भक्ति से जो आनन्द अर्थात् रस का स्वाद प्राप्त हुआ है वैसा अन्य किसी रस से प्राप्त नहीं हुआ। हरि नाम की भक्ति का रस यदि लेशमात्र अर्थात् तिल की मात्रा जितना भी यदि शरीर में पहुँच जाता है तो पूरा शरीर स्वर्ण की भाँति चमक उठता है।

विशेष :

1. भक्ति के आनन्द की विशेषता बताई है।
2. खिचड़ी भाषा का प्रयोग किया गया है।
3. दोहा छंद है।
4. राजस्थानी व पंजाबी भाषा के शब्द भी प्रयोग में लाये गए है।

कठिन शब्द–

सबै	–	सभी
रसाइण	–	रसास्वादन
तिल	–	छोटी मात्रा
घर	–	हृदय
कंचन	–	सवर्ण

1.9 बोध प्रश्न

1.9.1 क). प्रश्नों के उत्तर – एक पंक्ति में दीजिए –

1. राम नाम की भक्ति का रस पीने में कैसा होता है?
2. भक्ति–रस को पीने के लिए किसकी आवश्यकता होती है?
3. सच्चा शिष्य कौन होता है?

1.9.2 ख). सही – गलत का चुनाव कीजिए –

1. राम नाम की भक्ति का रस कड़वा होता है। (..........)
2. भक्त सांसारिक विषय–वासनाओं में डूबा रहता है। (..........)
3. भक्त का आचरण सांसारिक प्राणियों के समान ही होता है। (..........)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.10 सारांश

अतः कबीर एक भक्त, कवि और समाज–सुधारक के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। उनकी साखियाँ उनकी अनुभूति का निचोड़ हैं। उन्होंने जहाँ भी पाखंड रूढ़ि और आडम्बर देखा, वहीं पर चोट की। हम कह सकते हैं कि जितना सहज उनका जीवन था उतनी ही सहज उनकी काव्याभिव्यक्ति भी है।

1.11 संदर्भ–ग्रन्थ

1) कबीरः हजारी प्रसाद द्विवेदी
2) हिंदी साहित्य का इतिहास – रामचंद्र शुक्ल
3) हिंदी साहित्य और संवदेना का विकास – रामस्वरूप चतुर्वेदी

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(ख) भूषण

लेखक—डॉ. अजय तिवारी
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 भूषण की कविता
2.3 सामान्य परिचय
  2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 समस्याएँ
2.5 भूषण और राष्ट्रीयता
2.6 वीर रस की काव्य-परम्परा
  2.6.1 बोध प्रश्न
2.7 भूषण का वैशिष्ट्य
2.8 मध्यकालीन एवं आधुनिक भावबोध का मिश्रण
  2.8.1 बोध प्रश्न
2.9 जातीय चेतना का स्वरूप
2.10 धर्म और मानवतावाद
2.11 भाषा और अंतर्जातीय संपर्क
2.12 भूषण का योगदान
  2.12.1 बोध प्रश्न
2.13 भूषण के कवित्तों का प्रतिपाद्य
2.14 कविता की व्याख्या
  2.14.1 गरुड़ को दावा जैसे ....
  2.14.2 बोध प्रश्न
  2.14.3 साजि चतुरंग सैन ....

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.14.4 बोध प्रश्न
2.14.5 बाने फहराने घंटा गजन के ...
2.14.6 बोध प्रश्न
2.14.7 प्रेतिन -पिसाचरु निसाचर..
2.14.8 बोध प्रश्न
2.14 निष्कर्ष

2.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप

- भूषण और उनके काव्य की पृष्ठभूमि समझ सकेंगे।
- भूषण की कविता की संवेदना को जान पाएंगे।
- भूषण की काव्य, कला से परिचित हो पाएंगे।

2.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवियों में भूषण का स्थान महत्वपूर्ण है। इन्होंने रीतिकालीन प्रवृत्तियों से इतर शौर्य एवं पौरुष को केंद्रित कर कविताओं की रचना की। भूषण ने अपने समय की काव्यगत विशेषताओं नख-शिख वर्णन,बारहमासा ,सौंदर्य वर्णन,नायक -नायिका भेद के बरक्स वीर रस पर आधारित रचनायें कीं। भूषण की दृष्टि तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों से प्रभावित थी। संभवतः इसी कारण भूषण वीर शिवाजी का चरित-गान करते हैं और उन्हें हिन्दू जाति का अपराजेय योद्धा बनाते हैं। छत्रपति शिवजी के अतिरिक्त भूषण ने छत्रसाल बुंदेला का भी यशोगान किया है। भूषण की वीरतापूर्ण कवितायें आदिकालीन वीर काव्य से नितांत भिन्न हैं इसलिए रीतिकालीन कवियों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

2.2 भूषण की कविता

रीतिकाल के कवियों में भूषण का विशेष स्थान है। अधिकतर कवि श्रृंगार रस और अतिश्योक्ति अलंकार के सहारे कविता-कामिनी की साधना करते थे। इस परिपाटी का कुछ असर भूषण पर भी पड़ा लेकिन वह असर अतिश्योक्ति के रूप में ही है, रस के मामले में भूषण का हृदय मुक्त था। वे वीर रस की कविता लिखते थे और उन्होंने अपने लिए छत्रसाल और शिवाजी जैसे वीर सामंतों को ही आश्रयदाता के रूप में चुना था। कविता में जिसे रस कहते हैं वह हृदय में भाव होता है। कवि चाहे अपनी रूचि से, चाहे आश्रयदाता की रुचि से, जिस भाव को अपनाता है, उसकी कविता में उसी भाव

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

की प्रधानता होती है। भूषण की वीर रस की कविता उनके हृदय और उनके युग की प्रवृत्ति का परिचय देती है।

2.3 सामान्य परिचय

भूषण को लंबा जीवन मिला था। उनका जन्म 1613 ई. में और देहांत 1715 ई. में माना जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार, वे 1682 में पैदा हुए थे। यदि इस तिथि को मान लिया जाये तो अत्यंत अल्पजीवी सिद्ध होते हैं। यह बात ठीक नहीं जान पड़ती उन्होंने शिवाजी की प्रशंसा की थी, फिर शिवाजी के पौत्र (शंभाजी के पुत्र) साहूजी की भी प्रशंसा की थी। लंबे जीवन के बिना यह संभव नहीं था। भूषण ने अपने वंश और जन्म-स्थान के बारे में 'शिवराज भूषण' में लिखा है–

द्विज कनोज कुल कश्यपी, रतिनाथ कौ कुमार।

बसत त्रिविक्रमपुर सदा जमुना-कंठ सुखार।।

कानपुर के पास त्रिविक्रमपुर (तिकवांपुर) गाँव में कान्यकुब्ज ब्राह्मण रतिनाथ के पुत्र के रूप में जन्म हुआ। तिकवांपुर यमुना के तट पर बसा सुंदर गाँव है। इसके अलावा भूषण के जीवन के बारे मे जितनी सूचनाएँ हैं, सब अनुमान पर आधारित हैं। यह बड़ी विचित्र बात मालूम होती है कि रीतिकाल के अधिकतर कवियों के बारे में तो सही सूचनाएँ मिलती हैं लेकिन भूषण के बारे में नहीं। उनका नाम 'भूषण' भी मूल नाम नहीं था; रुद्र प्रताप सिंह नामक एक आश्रयदाता सामंत का दिया हुआ अलंकरण (पदवी) था। वास्तविक नाम क्या था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

एक अनुमान के अनुसार, प्रसिद्ध कवि चिंतामणि और मतिराम उनके भाई थे। अनुमान यह भी है कि वे रतिनाथ नहीं, रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। कुछ लोग रतिनाथ और रत्नाकर एक ही व्यक्ति के नाम मानते हैं। रचनाओं के बारे में भी काफी अटकलें हैं। 'भूषण हजारा', 'भूषण उल्लास' और 'दूषण उल्लास' नामक तीन ग्रंथ नहीं मिलते, जो इन्हीं के बनाये हुए समझे जाते हैं। तीन ग्रंथ उनके नाम पर उपलब्ध हैं–**शिवराजभूषण, शिवाबावनी** और **छत्रसाल** दशक। 'भूषण ग्रंथावली' के संपादक पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'छत्रसाल दशक' को प्रामाणिक नहीं माना; 'शिवाबावनी' के भी कई छंदों को अप्रामाणिक माना है। इस तरह, उनका प्रामाणिक कृतित्व भी बहुत थोड़ा रह जाता है।

2.3.1 बोध प्रश्न

1. भूषण के कृतित्व का परिचय दें।
2. भूषण की काव्य कला का वर्णन करें।

2.3.2 निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए–

1. भूषण की रचनाएँ तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों से प्रभावित थी (सही/गलत)
2. शिवा बावनी श्रृंगार रस पर आधारित रचना है। (सही/गलत)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.4 समस्याएँ

विचार करने की बात यह है कि अपने जीवन और रचना संबंधी इतनी अटकलों के बावजूद ऐसी क्या चीज़ है जो भूषण को सिर्फ रीतिकाल का नहीं बल्कि हिंदी साहित्य का महत्त्वपूर्ण कवि बनाती है? क्या उन्होंने रीतिवाद की परिपाटी अपनाकर लिखा और अपनी कुछ भी मौलिकता नहीं प्रकट की? क्या ये नितांत मौलिक थे और उन पर दरबारी काव्य का कोई असर नहीं पड़ा? किसी भी कवि का साहित्यिक महत्त्व तभी होता है जब वह अपने युग की परिस्थितियों में रहकर अपनी विशेषता प्रकट करता है। इसलिए ऐतिहासिक दबाव और मौलिक प्रतिभा, दोनों बातें किसी कवि के मूल्यांकन में भूमिका अदा करती हैं।

रीतिकाव्य राजाओं, रईसों या सामंतों के आश्रय में लिखा जाता है। कवि इस बात का ध्यान रखते थे कि उनके आश्रयदाता की रुचि कैसी है। कवि उन रुचियों के अनुसार या अपने आश्रयदाता की बढ़ी-चढ़ी प्रशंसा करते हुए कविता लिखते थे। इससे उनके आश्रयदाता प्रसन्न होते थे। प्रसन्न होने पर वे धन-संपदा देकर कवियों और भाटों को भी संतुष्ट करते थे। अप्रसन्न होने पर दंड भी दे सकते थे, इसलिए कवि कोशिश करते थे कि प्रशंसा ऐसी और इस तरह की जाये जिससे आश्रयदाता अधिक से अधिक खुश हो और बदले में वैसी ही उदारता से दान दे।

भूषण इस नियम का अपवाद नहीं थे। वे मुख्य रूप से छत्रसाल और शिवाजी के आश्रित कवि रहे। अपने आश्रयदाताओं की, खासकर शिवाजी की, प्रशंसा में उन्होंने जो उड़ान भरी है, इतनी अतिश्योक्तिपूर्ण है कि सच्चाई से बहुत दूर जा पड़ी है। शिवाजी वीर थे और उदार भी थे, इसमें संदेह नहीं लेकिन कवि के लिए वे संसार के सबसे बड़े वीर और सबसे बड़े दानी थे; उनकी उदारता या दानशीलता कामधेनु या कल्पतरु के समान थी, जो माँगने वाले की इच्छा के अनुसार दान देते थे। उदारता की हद तो यह थी कि वे दान में इतना सोना देते थे कि 'कंचन को ढेरु जो समेरु सो लखात है।' राजा जितना उदार और दानी होगा, कवि उतना ही दीन और याचक बनता जायेगा। भूषण की दीनता की हद यह है कि–

तुम शिवराज ब्रजराज गजराज आज,
तुमही जगत काज पोखत भरत हौ।
तुम्हें छोड़ि याते काहि बिनती सुनाऊँ मैं,
तुम्हरे गुन गाऊँ तुम ढीले क्यों परत हो।।

दूसरे सभी दरबारी कवियों की तरह भूषण भी अपने अन्नदाता की बढ़ी-चढ़ी प्रशंसा करके उनका दान देने का उत्साह बनाये रखते हैं ताकि वह अधिक से अधिक धन देता रहे। यहाँ वे धन के उपासक दूसरे दरबारी कवियों से अलग नहीं दिखायी देते।

यही नहीं, उनका सबसे प्रमाणिक ग्रंथ 'शिवराज भूषण' (या 'शिव भूषण') रीति काव्य की परंपरा के अनुसार ही लिखा गयाहै। भूषण ने इसे 1673 ई. में लिखा था। यह मूलतः अलंकार ग्रंथ है। इसमें 105 अलंकारों का वर्णन है। रीतिग्रंथों की तरह 'शिवराज भूषण' में भी दोहे में अलंकारों के लक्षण बताये गये हैं, फिर कवित्त और सवैये में उनके उदाहरण दिये गये हैं। भूषण ने अलंकारों के चुनाव, उनके क्रम और लक्षण का निर्धारण करने में ही मौलिकता का परिचय नहीं दिया है, बल्कि मतिराम के ग्रंथ 'ललित

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

ललाम' के आधार पर ही उसे तैयार किया है। लेकिन उनके उदाहरण अपने हैं और ये उदाहरण श्रृंगार रस के न होकर वीर रस के हैं और उन सभी में मराठा सरकार शिवाजी का वर्णन है। यह इतना बड़ा अंतर है कि हिंदी कविता में शिवाजी को रीति के आचार्य या कवि के रूप में नहीं, बल्कि राष्ट्रीयता के उदाहरण के रूप में देखा जाता है। खुद शिवाजी का मन अलंकारों के विवेचन में उतना नहीं रमता, जितना शिवाजी के युद्ध और विजय, कूटनीति और साहस का वर्णन करने में रमता है। यहाँ भी उनका ध्यान शिवाजी के व्यक्तिगत-जीवन की अपेक्षा जातीय जीवन की ओर ही अधिक है।

2.5 भूषण और राष्ट्रीयता

इसीलिए राष्ट्रीयता का प्रश्न उत्तर-मध्यकाल या रीतिकाल के कवियों में सिर्फ भूषण के प्रसंग में उठता है, अन्य किसी कवि के प्रसंग में नहीं। अन्य कवि अपने आश्रयदाताओं की विकृत कामभावना को तृप्त या उत्तेजित करने के लिए कविता-कामिनी का श्रृंगार करते थे, लेकिन भूषण ने ऐसे व्यक्ति का आश्रय लिया था जो उस युग में वीरता, जातीय गौरव और प्रतिरोध का प्रतीक था। इस पर भी यह समझना ठीक न होगा कि केवल वीर रस के कारण भूषण में राष्ट्रीय भावना मिलती है, जबकि अन्य कवि राष्ट्रीयता से दूर हैं।

2.6 वीररस की काव्य-परम्परा

भूषण के आगे-पीछे वीररस की अच्छी-खासी काव्य-परंपरा थी। आदिकाल में रासो-काव्य के युद्ध-वर्णन हो या रीतिकाल में सूदन, श्रीधर, लाल जैसे कवियों के युद्ध -वर्णन हों, वीररस की परिपाटी हिंदी साहित्य में विद्यमान थी।

फिर भी राष्ट्रीयता का प्रश्न केवल भूषण के प्रसंग में उठता है। इसका मुख्य कारण है कि रासो परंपरा के ग्रंथों में अधिकतर युद्ध किसी कन्या के हरण आदि प्रसंगों को लेकर होते दिखाये गये हैं। स्वभावतः उनमें उदात्त भावनाओं का समावेश नहीं हो सकता था, वीररस का आधार वहाँ श्रृंगाररस ही है। भूषण की कविता में चाटुकारिता और अतिश्योक्ति की प्रवृत्ति तो दिखायी देती है लेकिन श्रृंगाररस की नींव पर वीररस का महल नहीं दिखाईदेता।आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सही लक्षित किया था कि "शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता।... इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिंदू जनता स्मरण करती है उस की व्यंजना भूषण ने की है।" (*हिन्दी साहित्य का इतिहास*, पृ. 255)

सूदन, श्रीधर, लाल युद्ध और वीरता से संबंधित काव्य रचने वाले भूषण के समकालीन थे। रासो ग्रंथों के बदले भूषण का संबंध इन कवियों से जुड़ता है। रासों ग्रंथों की तरह भूषण और सूदन-श्रीधर-लाल के वीरकाव्य भी प्रशंसात्मक हैं और उनका उद्देश्य भी अपने आश्रयदाता नायक को प्रसन्न करना है। इन तीनों कवियों की तरह भूषण के काव्य में भी राष्ट्रीयता इस काव्येतर उद्देश्य से दबी हुई है। फिर भी इनमें श्रीधर कीअपेक्षा सूदन और लाल की कविता का अधिक महत्त्व है। श्रीधर ने फर्रुखसियर और जहाँदारशाह के युद्ध का जो वर्णन किया है, उसमें सेना की चढ़ाई, सैनिक साज-सामान और रणकौशल का विस्तृत उल्लेख है; किन्तु कवि की सामाजिक दृष्टि बहुत सीमित है। इनकी अपेक्षा भूषण की दृष्टि अधिक विस्तृत है। उनके काव्य में युद्ध के प्रसंग में जीवन की अनेक विशेषताओं का समावेश हुआ है। लाल कवि से भूषण का अंतर इस बात में है कि लाल ने छत्रसाल का जीवन-चरित उनकी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

आज्ञा से लिखा है, जबकि भूषण ने बहुत कुछ अपनी प्रेरणा से शिवाजी के चरित्र पर फुटकर छंदों की रचना की।

शुक्लजी ने लिखा है कि लाल कवि का ग्रंथ 'छत्रप्रकाश' काव्य और इतिहास दोनों ही दृष्टियों से हिंदी में अनूठा है। (**इतिहास**, पृ. 334) उनकी काव्यगत विशेषता यह है कि चमत्कार और बनावटीपन से दूर रहकर सीधी-स्वाभाविक उक्तियों से भावों का उत्कर्ष दिखाया गया है। भूषण की भाषा सीधी-सहज तो है पर उनके वर्णन में अलंकारों और चमत्कारों का बहुत अधिक स्थान है। भूषण के तीन ग्रंथों (शिवराज भूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक) में से कोई भी इतिहास की दृष्टि से तथ्यपूर्ण नहीं हैं। लेकिन ये ग्रंथ काव्यगत कल्पना और उक्तिगत वैचित्र्य से भरे हुए हैं। लाल ने तो छत्रसाल के उस युद्ध का भी स्पष्ट उल्लेख किया है जिसमें उन्हें हारकर भागना पड़ा था। उनके सभी ऐतिहासिक वर्णन तथ्यपूर्ण हैं। लेकिन भूषण की वाणी तथ्यात्मक स्थितियों का विवरण प्रस्तुत नहीं करती। आधुनिक इंप्रेशनिस्ट कलाकारों की तरह तथ्य का हल्का-सा आश्रय लेती है, और वर्णन को ऐसा मोड़ देती है जो कवि के व्यक्तित्व और अभिरुचियों के अनुकूल हो, इसलिए उनकी कविता आत्मपरकता की गहरी छाप लिये रहती है। मध्यकालीन वीरपूजा और आधुनिक आत्मपरकता का मिश्रण भूषण की कविता का विशेष गुण है।

लाल कवि की तरह सूदनकी कविता में भी ऐतिहासिक तथ्य प्रामाणिक है लेकिन कल्पना और दृष्टि के विस्तार में उनकी ज्यादा रूचि नहीं रही। इसके बदले वस्तुओं की गिनती में घोड़ों की जातियाँ गिनाने, कपड़ों और हथियारों की सूची बनाने और लोगों के देश या जाति की नामावली तैयार करने में उनकी रुचि विशेष सक्रिय हुई। समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से सूदन की कविता उपयोगी हो सकती है क्योंकि उसमें 17वीं सदी के जीवन की अच्छी झाँकी मिलती है। सामाजिक संबंध और युद्ध कौशल की दृष्टि से उनके विवरण को पढ़ा जाय तो तत्कालीन भारत का एक चित्र बनाया जा सकता है। लेकिन उन विवरणों में न मर्मस्पर्शी स्थलों की पहचान है, न जनता को प्रेरित करने की शक्ति। इसलिए ये विवरण साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण करते हैं— उनमें न कोई चयनदृष्टि है, न कलात्मक संयम। शुक्लजी का कहना है कि "इस कवि को साहित्यिक मर्यादा का ध्यान बहुत ही कम था।" (*इतिहास*,पृ. 363) भूषण की कविता में न सिर्फ साहित्यिक मर्यादा का निर्वाह हुआ है, बल्कि उनकी दृष्टि ऐसी मर्मस्पर्शी है कि उनके "वीररस के उद्गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति" बन गये हैं। (*उप.*, पृ. 255)

2.6.1 बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में दीजिए।

1. वीर रस काव्य-परंपरा में भूषण का स्थान निर्धारित करें।
2. भूषण के काव्य की राष्ट्रीय चेतना को स्पष्ट करें।

2.6.2 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या ना में दीजिए—

1. भूषण के काव्य की प्रमुख विशेषता श्रृंगार वर्णन है। (............................)
2. शिवा—बावनी में वीर शिवाजी की वीरता का वर्णन हुआ है। (............................)

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

2.7 भूषण का वैशिष्ट्य

किसी कविकी रचना जनता के द्वारा स्वीकृत होने पर ही काव्यपद पर प्रतिष्ठित होती है। भूषण की कविता में राष्ट्रीयता का स्वरूप निर्धारित करते समय इस बात पर सर्वाधिक बल देने की जरूरत है। उनकी रचनाएँ जनता के हृदय की संपत्ति बन गयी क्योंकि उन्होंने अपने युग में जनता के एक विशाल भाग की मनोभावनाओं को व्यक्त किया। जनता उनके काव्य में अपने लिए अनुकूल संदेश पाती थी। डॉ. मैनेजर पांडेय ने इस संबंध में बहुत ठीक लिखा है, ''भूषण शिवाजी या छत्रसाल के केवल चारण न थे सच बात तो यह है, आज शिवाजी या छत्रसाल की जो छवि लोगों के मन में है, उसके निर्माण का काम भूषण के काव्य के माध्यम से ही हुआ है।'' (*साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका,* पृ.72)

भूषण ने जनता की मनोभावनाओं को व्यक्त किया और इन मनोभावनाओं का निर्माण भी किया। अपने ऐतिहासिक संदर्भ में—देश-काल की मर्यादा के भीतर रहकर-उन्होंने कविता से ये दोनों काम किये, इसलिए उनकी कविता अमर हुई। उनके द्वारा बनायी गयी शिवाजी और छत्रसाल की छवि उस युग तक सीमित नहीं रही, वह आज भी कारगर है। अपने समाज से सक्रिय और द्वंद्वात्मक संबंध कायम करके ही कविता स्थायी महत्त्व प्राप्त करती है। डॉ. मैनेजर पांडेय ने ऊपर कहे गये वाक्यों के प्रसंग में आगे निष्कर्ष निकाला है कि ''प्रशस्ति-गायक कई बार आम जनता के मन में राजा और राजसत्ता के प्रति आदर सम्मान और स्वीकृति की भावना जगाने का काम करते थे।'' (*उप.*) यदि इतना ही होता तो आज, वैज्ञानिक चिंतन और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के युग में भूषण की कविता का महत्त्व या प्रभाव क्षीण हो जाना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ। वह आज भी लोगों की मनोभावना को प्रभावित कर रही है। इसका कारण यह है कि भूषण ''केवल चारण न थे।''

जनता को प्रभावित करने की शक्ति उन्हें इसी बात से मिली थी कि उन्होंने एक विशेष ऐतिहासिक परिस्थिति में जनता की भावनाओं और आकाक्षाओं को वीरत्वपूर्ण ओज के साथ वाणी दी। भूषण की लोकप्रियता का कारण यह था कि उन्होंने दिल्ली के अत्याचारी शासक के विरुद्ध छत्रसाल और शिवाजी के प्रतिरोध का जो वर्णन किया है, उसमें अत्याचार से दबी हुई जनता की आकांक्षाओं को भी अभिव्यक्ति मिली है। भूषण की राष्ट्रीयता का यह सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है। शिवाजी या छत्रसाल दिल्ली के मुगल सम्राट औरंगज़ेब से जो युद्ध कर रहे थे, वह हिंदू-मुसलमान का सांप्रदायिक युद्ध नहीं था। अपने राज्य और क्षेत्र के लिए दिल्ली सम्राट के विरुद्ध जातीय संग्राम था। भारतीय इतिहास संबंधी टिप्पणियों में मार्क्स ने शिवाजी की सत्ता को ''मराठा राज्य'' की संज्ञा दी है। यह मराठों का जातीय राज्य और जातीय संग्राम था। गोविंद सिंह स्वयं कवि और योद्धा थे, वे सिख पंथ के संस्थापक और प्रणेता थे। मुगल सम्राट के रूप में दिल्ली की सत्ता हिंदी जाति की केंद्रीय राजसत्ता थी; शिवाजी और गोविंद सिंह के संघर्ष इस केंद्रीय राजसत्ता से स्वतंत्र सिखों और मराठों के राज्य की स्थापना के लिए थे।

2.8 मध्यकालीन और आधुनिक भावबोध का मिश्रण

यह नयी जातीय चेतना आधुनिक देसी भाषाओं के इर्द-गिर्द उभर रही थी। वह संस्कृति के आधार पर समाज को नया संगठन और नया रूप प्रदान कर रही थी। धर्म उस युग में ऊपरी खोल था। खुद रीतिवादी कवियों में वह 'सुमिरन का बहाना' रह गया था। धार्मिक शब्दावली के भीतर जिस तरह आज

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

घृणा की राजनीति का प्रचार होता है, उसी तरह 17वीं-18वीं सदी में नयी सांस्कृतिक (जातीय) चेतना व्यक्त होती थी। उस समय तक सांप्रदायिकता की समस्या उत्पन्न नहीं हुई थी; उसने जातीय अस्मिता को भीतर से विघटित नहीं किया था। यह समस्या अंग्रेजी-राज में उत्पन्न हुई जब राजनीति के लिए धर्म का इस्तेमाल शुरू हुआ। आज भी इस समस्या से भारत मुक्त नहीं हुआ। लेकिन शिवाजी-भूषण के युग में सांप्रदायिकता की समस्या नहीं थी। इसका एक उदाहरण गौहरबानू प्रकरण है। अगर हिंदू-मुसलमान के बीच आज जैसी दृढ़वादी घृणा से शिवाजी प्रेरित होते तो वे अपूर्व सुंदरी गौहरबानू का भोग करने के बदले उसे माँ का आसन न प्रदान करते। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि शिवाजी ने गौहरबानू को यह कहकर मुक्त किया था कि मैं यदि इनका पुत्र होता तो इन्हीं के समान सुन्दर होता।

भूषण ने इस घटना का वर्णन नहीं किया है। वैसे भी घटनाओं का तथ्यपूर्ण और तारतम्यबद्ध वर्णन भूषण नहीं करतें किंतु भूषण की अनेक ऐसी कविताएँ हैं जिनसे यह बात समझ में आती है कि शिवाजी का युद्ध सांप्रदायिक दंगा न होकर मराठा जाति या स्वाधीनता संग्राम था। भूषण ने जगह-जगह बड़े गर्व और आह्लाद के साथ 'दिल्लीपति' को हेय ठहराया है; या यों कहिए कि दिल्लीपति को सांसत में पाकर वे अपनी खुशी दबा नहीं पाते।

1. भूषन भनत दिल्लीपति दिल धक-धक,
   सुनि-सुनि धाक सिवराज मरदाने की।
2. बूड़ति है दिल्ली सो संभारै क्यों न दिल्लीपति,
   धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को।
3. चकित चकत्ता चौंकि-चौंकि उठै बार-बार,
   दिल्ली दहसति चितै चाहि करषति है।
4. गई कटि नाक सिगरेई दिल्ली दल की। इत्यादि।

दिल्ली के शासकों के रूप में शिवाजी के प्रतिद्वंद्वी तुर्क थे। इसलिए जगह-जगह 'तुरकन', 'मुसलमानन', 'म्लेच्छ' आदि शब्दों का व्यवहार भी दिखायी देता है।

भूषण में 'दिल्लीपति' और 'तुरकन' की परस्पर-विरोधी धारणाएँ उलझी हुई हैं। उस युग में यूरोप के कवि भी आधुनिक अर्थ में धर्मनिरपेक्ष होने की बात नहीं सोच सकते थे। बल्कि आधुनिकता का संचार करने वाले विश्वविख्यात कवियों में भी कलाकार की निर्वैयक्तिकता धर्म में जाकर सन्निहित हो जाती है। इसलिए भूषण से आधुनिक धारणाओं के आधुनिक स्वरूप की अपेक्षा करना इतिहास की मर्यादा का उल्लंघन है। इस प्रसंग में यह भी कहना जरूरी है कि 'दिल्लीपति' और 'तुरकन' की शब्दावली को परस्पर विरोधी न मानकर पूरक मानना भ्रम है। इसमें 'रहस्यात्मक ताल-मेल' खोजने की जगह विरोधी धारणाओं का उलझाव मानना ही ठीक है। इसका कारण यह है कि शिवाजी हिंदू धर्म की रक्षा के लिए मुसलमानों के विरुद्ध संघर्ष नहीं कर रहे थे। वे मराठों की स्वाधीनता के लिए दिल्ली के मुगल सम्राट के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे और भूषण की कविता इस संघर्ष में सारी कल्पना, ऊर्जा, भावना के साथ शिवाजी की तरफदारी करती है। यह उनकी राष्ट्रीयता का उज्ज्वल पक्ष है।

भूषण अपनी स्वाधीनता के लिए लड़ने वाली जनता और उसके नायक का गुणगान करते हैं। यह नायक उन सामंतों और नवाबों में नहीं हैं जो दिल्लीपति के अधीन रहकर अपनी-अपनी जागीरों के ''मालिक'' बन बैठे थे। उनके लिए ''वीरता और कर्मण्यता का जीवन'' शेष नहीं रह गया था, यह बात शुक्लजी बता चुके हैं। उन सामंतों की वीरता का लक्षण यह था कि दिल्लीपति के आगे वे कांपते थे

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

और निरीह प्रजा का दमन करते थे, छल-बल से उनकी बहू-बेटियों को दरबार में खींच लाते थे और पूरी सुरक्षा के बीच 'नायिका-भेद' करते थे। भूषण के नायक की विशेषताएँ इन सामंतों से एकदम भिन्न थीं और भूषण की विशेषताएँ उन 'नायकों' के आश्रित कवियों से एकदम भिन्न थीं। भूषण और उसके नायक को जनता प्रेम करती थी जो दिल्लीपति से टकरा रहा था।

अपने इस नायक से भूषण की पक्षधरता ऐसी उत्कट थी कि शिवाजी के युद्ध से संबंधित कुछ विशेष प्रसंगों पर वे बार-बार लिखते हैं, और इस बात की परवाह भी नहीं करते कि इसमें लकीर पीटने का भाव आता है। यही नहीं, बहुत जगह तो सामान्य शिष्टाचार का भी उल्लंघन होता है। शत्रुपक्ष की स्त्रियों और बच्चों की दुर्दशा पर भी भूषण रस लेते हैं, यह प्रवृत्ति उनकी राष्ट्रीयता को चारणों की भावधारा के निकट पहुँचाती है। भूषण की राष्ट्रीयता का रूप आश्रयदाता की वीरता और रुचि तथा उसके युद्धों के वर्णन में ही उभरता है। इसलिए अखरने वाले दोहराने को तो समझा जा सकता है क्योंकि उनमें शिवाजी की वीरता और दबदबे का, शत्रु की कायरता का वर्णन (या प्रसंग) है, लेकिन स्त्रियों और बच्चों के प्रति इस परसंतापी (चारण) भाव का औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि गौहरबानू के प्रसंग में शिवाजी ने स्त्रियों के प्रति अपने सम्मान-भाव का गौरवशाली प्रदर्शन किया था। यहाँ भूषण के नायक और उसके चारण कवि की भावधाराएँ परस्पर-विरोधी दिशाओं में कार्यरत दिखायी देती हैं। धार्मिक आशय वाली भाषा का दबाव एक तरफ, चारण परंपरा वाली भावधारा का दबाव दूसरी तरफ, इन दो मध्यकालीन दबावों के भीतर से आधुनिक जातीयता (या राष्ट्रीयता) का स्वर भूषण की कविता में उभरा है।

2.8.1 बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक पंक्ति या शब्द में दें।

1. भूषण की कविता की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें।
2. भूषण द्वारा लिखित अलंकार ग्रन्थ का नाम बताइए।

2.8.2 कोष्ठक में दिये गये शब्दों में से सही शब्द का चुनाव करके रिक्त स्थान भरें।

(क) भूषण ने .... की वीरता का वर्णन किया है (छत्रसाल/अकबर)

(ख) भूषण के काव्य की संवेदना .... है (मानवतावादी, आध्यात्मिक)

2.9 जातीय चेतना का स्वरूप

लाल कवि ने छत्रसाल का जो वर्णन किया है, वह बहुत कुछ एक व्यक्ति का जीवनचरित है जिसमें उसके जीवन के सभी प्रसंगों का उल्लेख मिलता है किंतु, भूषण के वर्णन की विशेषता यह है कि 'शिवराज भूषण' में शिवाजी के व्यक्तिगत जीवन का बिल्कुल उल्लेख नहीं है। न शिवाजी के संघर्ष का उद्देश्य व्यक्तिगत था, न भूषण की कविता में उनके व्यक्तिगत जीवन का चित्रण है। शिवाजी कन्याहरण, राज्यविस्तार या यशविस्तार के लिए नहीं, अपनी स्वाधीनता के लिए युद्ध कर रहे थे, उसी के अनुरूप भूषण के वीर रस का उद्देश्य भी सामाजिक है, उसमें शिवाजी के जातीय जीवन का वर्णन ही कवि का लक्ष्य है। 'सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत हैं'– इसे भूषण के काव्य की प्रतिनिधि पंक्ति माना जा सकता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

जातीय नायक शिवाजी के रूप में भूषण ने जिन गुणों को मूर्तिमान देखा है, उनमें राष्ट्रीय चरित्र की विशेषताएँ प्रकट होती हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने शिवाजी के प्रति भूषण की श्रद्धा के प्रसंग में लिखा है, ''उस सहृदय कवि को, जो अपने भाइयों पर निरंतर अत्याचार तथा उनकी अवधिहीन दासता को देख व्याकुल हो उठा हो, एक तिनका भी पर्वत के समान लगता है। कवि उसके लिए अपना काव्य -भंडार खोल देगा, दलितों के लिए जिन्होंने तलवार पकड़ी है, उनको महान सिद्ध करने के लिए वह अपनी ओर से कुछ उठा न रखेगा।'' (**भाषा, युगबोध और कविता**, पृ. 44-45) दलितों के प्रति जैसी सहानुभूति तलवार उठाने वाले नायक में है, वैसी ही उस नायक को राम और कृष्ण का अवतार बताने वाले कवि में भी है–

को दाता, को रन चढ्यो, को जग पालनहार?
कवि 'भूषण' उत्तर दियो, सिवनृप हरि अवतार।

जाहिर बात है कि भूषण की वीरपूजा का एक महत्त्वपूर्ण कारण जातीय स्वतंत्रता और दलितों के प्रति सहानुभूति है। दलित जन उसी प्रकार निर्बल है, जिस प्रकार नारियाँ और बच्चे हैं। सभी प्रकार के निर्बलों के प्रति सहानुभूति ही वह सामाजिक उद्देश्य है जो भूषण की राष्ट्रीयता को मानवीय स्वरूप प्रदान करता है। अकारण नहीं है कि शिवाजी की ही तरह छत्रसाल भी हैं–

तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।

भूषण के वीरनायक खलों पर उतना ही तीखा आक्रमण करते हैं– जितना वे निर्बलों की रक्षा के लिए तत्पर हैं। दोनों उद्देश्य एक ही कार्य के दो पहलू हैं। दोनों पहलू अलग नहीं किये जा सकते। यही कारण है कि शिवाजी का व्यक्तित्व मित्रों के लिए अमृत का भंडार है और शत्रुओं के लिए विनाशकारी अग्नि। उनके आक्रमण से शत्रु की वीरता के दावे ढोल की पोल सिद्ध होते हैं और उनकी कीर्ति की सुगंध से साधारण स्त्री-पुरुष आनंद अनुभव करते हैं–

पावक तुल्य अमीतन को, मीतन को भयो धाम सुधा को।
x x x
बंदन तेज त्यों चंदन कीरति, सोंधे सिंगार बधू वसुधा को।।

शिवाजी की कीर्ति निष्कलंक चंद्रमा के समान है। उनके गुणों की प्रशंसा करने वाला कवि अपना गौरव और भाग्य खुद बढ़ाता है। भूषण दूसरे राजाओं की प्रशंसा कर चुके हैं। इससे उनकी वाणी का ह्रास हुआ है। उसे दूर करके अब वे शिवाजी के 'पुण्य चरित्र' का गुणगान कर रहे हैं ताकि दोबारा पवित्र हो सके– 'हवाय पवित्र भई पनि बानी।'

शिवाजी के शत्रु उत्तर भारत के दिल्लीपति हैं– दिल्ली के सिंहासन पर बैठे हुए मुगल सम्राट औरंगजेब हैं। यों तो टीकमसिंह तोमर ने लिखा है कि भूषण के कुछ फुटकर छंदों में महाराज जयसिंह, कुमाऊँ और गढ़वाल के राजाओं के अलावा औरंगज़ेब और दारा शिकोह की भी ''प्रशंसा की गयी है।'' (*हिन्दी साहित्य कोष*, भाग-2, पृ.389) लेकिन यह मान्यता भ्रामक है। यदि यह ठीक हो तो इससे भूषण की राष्ट्रीयता में कुछ शब्दों के कारण सांप्रदायिकता के स्पर्श का भ्रम खड़ा होता है, उसका निवारण अपने आप हो जाय। लेकिन इस बात के लिए अप्रामाणिक तथ्यों का सहारा लेना आत्मछल हो सकता है, उनके आधार पर साहित्य का और साहित्य से झाँकते युग और समाज का मूल्यांकन नहीं हो

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सकता। श्री तोमर ने जिन छंदों के आधार पर अपनी राय बतायी है, वे भूषण के ही हैं, यह तथ्य विवादास्पद हैं। भूषण ने औरंगज़ेब को सदा व्यंग्य और चुनौती के ही स्वर में याद किया है; जैसे–

1. भूषण सुकवि कहैं सुनो नवरंगजेब,
   एते काम कीन्है फेरि पातसाही पाई है।
2. दारा को न कोर यह, रार नहीं खजुए की......
   बूड़ति है दिल्ली सो संभारै क्योंन दिल्लीपति। इत्यादि

इस दिल्लीपति का मुकाबला करने वाले शिवाजी दक्षिण के हृदयहार हैं–

दच्छिन के नाथसिवनाथ तेरे हाथ चढ़े
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन को।

स्वयं भूषण का जन्म उत्तर भारत में हुआ था। कानपुर में जन्म लेकर वे पन्ना नरेश छत्रसाल के यहाँ होते हुए महाराष्ट्र मे शिवाजी तक, निरंतर दक्षिण की ओर बढ़ते गए। उनकी यह यात्रा सत्रहवीं सदी के भारतीय समाज में उभरती हुई उस नयी राष्ट्रीयता का उदाहरण है जो देश के विभिन्न भागों में रहने वाली जनता के परस्पर-संपर्क से निर्मित हो रही थी। उत्तर और दक्षिण भारत के इस संपर्क में नयी राष्ट्रीयता का स्वरूप ढलता है। आधुनिक जातीयता का विकास इस राष्ट्रीयता के साथ होता है। इसीलिए जातीय निर्माण का सार राष्ट्रीयता के फलक तक पहुँचता है।

इसमें संदेह नहीं कि भूषण की कविता में आधुनिक राष्ट्रीयता का विकास स्पष्ट रूप में नहीं दिखायी देता जैसे उनके वीरकाव्य में आधुनिक संवेदना नहीं दिखायी देती। लेकिन जिस तरह शिवाजी का संघर्ष मराठों की जातीय आत्मरक्षा का परिणाम था, उसी तरह भूषण का महाराष्ट्र-प्रवास अंतर्जातीय संपर्क का उदाहरण था। उस समय के भारतीय जीवन में यह संपर्क इसलिए बढ़ रहा था कि व्यापार और बिकाऊ माल के साथ-साथ सारे देश में एक-दूसरे से जुड़ी हुई मंडियों का विकास हो रहा था। औरंगज़ेब से बहुत पहले शेरशाह ने व्यापार को सुगम बनाने के लिए 'ग्रांड ट्रंक रोड' का निर्माण कराया था, अकबर ने उसके शासन की नीतियाँ ही नहीं अपनायी थीं, वह व्यापार में तरह-तरह से हिस्सा भी लेता था। व्यापारी उन्नति के फलस्वरूप एक तरफ बड़ी-बड़ी परस्पर-निर्भर मंडियों का विकास हो रहा था, दूसरी तरफ एक क्षेत्र की जनता दूसरे क्षेत्रों के संपर्क में आ रही थी। औरंगज़ेब के समय तक भारत सारी दुनिया में कपड़े का निर्यात करने लगा था। मंडियों के विकास के साथ-साथ अंतर्जातीय संपर्क बढ़ने से स्थानीय बिखराव कम हो रहे थे, आधुनिक राष्ट्रीयता के विकास की रूपरेखा तैयार हो रही थी। भूषण का उत्तर भारत से जाकर दक्षिण भारत में रहना, 'दिल्लीपति' के विरुद्ध 'दच्छिन के नाथ' की निष्कलंक गाथा सुनाना इसी नयी राष्ट्रीयता का संकेत है जो बहुत स्पष्ट चाहे न हो, पर उसके उभार के लक्षण अवश्य प्रकट होने लगे थे।

2.10 धर्म और मानवतावाद

इस दृष्टि से देखने पर यह समझ में आता है कि भूषण की राष्ट्रीय चेतना में परस्पर विरोधी भावधाराएँ टकराती थीं– एक ओर आश्रयदाता के प्रति मध्ययुगीन श्रद्धा और दूसरी ओर जातीय संघर्ष के प्रति आधुनिक मनोभाव। निस्संदेह, आधुनिक मनोभाव दबा हुआ है, उस युग में जातियों का ही नहीं, राष्ट्रीयता का भी आधुनिक स्वरूप दबा हुआ था। फिर भी, आधुनिक जातियों के निर्माण की और हिंदी-बंगला-मराठी-तमिल आदि आधुनिक जातियों के बीच आपसी संपर्क के चलते आधुनिक भारत के निर्माण

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

की प्रक्रिया सतह के नीचे आरंभ हो चुकी थी; भूषण की कविता में भी वीरत्वपूर्ण वर्णन के नीचे दबी हुई यह आधुनिक भावधारा जहाँ-तहाँ प्रकट हो जाती है।

इसका एक और उदाहरण है। कृष्ण सुदामा के मित्र थे। दानी शिवाजी भूषण के लिए 'ब्रजराज अवतार आजु' बन जाते हैं। और, अपनी लोकहितकारी नीतियों के कारण 'सरजा सिवाजी राम ही के अवतार हैं।' जहाँ वे 'अवतार' नहीं हैं, वहाँ भी देवतुल्य ही हैं–

इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर
राव संदभ पर रघुकुल राज है।...
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर
त्यों म्लेच्छ बंस पर सेर सिवराज है।।

जहाँ भी दैवी या प्राकृतिक शक्तियाँ अंधकार-अत्याचार के दमन में सक्रिय हैं, वहाँ भूषण उनकी उपमा शिवाजी को प्रदान करते हैं। लेकिन जहाँ देवी-देवता खुद अपनी या अपने मंदिर-मठों की रक्षा में असमर्थ रहते हैं, भूषण फौरन शिवाजी को उनसे अलग दिखाते हैं। शिवराज के धक्के से दिल्ली डावांडोल हो गयी; शिवाजी अगर दाराशिकोह नहीं हैं तो वे विश्वनाथ मठ या गोपाल मंदिर भी नहीं हैं–

मठ विस्वनाथ को, न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा, न मंदिर गोपाल को।।

पुराने मंदिरों के उद्धार के बहाने राजनीतिक लाभ उठाने के लिए सांप्रदायिक उत्पात मचाने वालों से भूषण का दृष्टिकोण ज्यादा आधुनिक है। भूषण निर्बल नर-नारियों के प्रति अवश्य सहानुभूति रखते हैं, निर्बल देवी-देवताओं के प्रति नहीं। शिवाजी के व्यक्तित्व के आगे अत्याचार के दमन में सक्रिय और आत्मरक्षा में असमर्थ देवी-देवताओं तक का अंतर स्पष्ट हो जाता है। कृष्ण की दानशीलता और राम का परहितकारी रूप एक ही मूलभाव से संबंद्ध थे और वह था दीनजन के प्रति करुणा। भक्तों की यह करुणा रीतिबद्ध शृंगारी कवियों को नहीं सुलभ हुई; वह भूषण को सुलभ थी।

इसी करुणा के आधार पर भूषण अपनी धार्मिक चेतना के बावजूद शिवाजी के व्यक्तित्व को मठ-मंदिर से अधिक सबल बताते हैं। मनुष्य की शक्ति में यह विश्वास 17वीं सदी की पृष्ठभूमि में वीरपूजा के भीतर ही हो सकती थी, यह समझना मुश्किल नहीं है। तुलसीदास के लिए राम से अधिक महत्त्व राम के दास का था। यह मानव-गरिमा भक्ति के प्रसंग से बाहर निकलकर राष्ट्रीय संदर्भ ग्रहण करती है भूषण के यहाँ। इस तरह, भूषण भक्ति साहित्य के मानवतावाद को एक चरण आगे लाते हैं। इतिहास के एक वास्तविक वीरनायक को मठ-मंदिर से अधिक सबल बताकर भूषण जिस मानवतावाद का परिचय देते हैं, वह उनकी मध्ययुगीन चेतना के नीचे प्रवाहित होती हुई आधुनिक भावधारा का सूचक है। यह मानवतावाद रीतिवादी कविता के लिए प्रायः दुर्लभ गुण है। भूषण का यह गुण जनता के नये राष्ट्रीय संपर्क से उभरने वाली शक्ति के परोक्ष दबाव का सूचक है।

2.11 भाषा और अंतर्जातीय संपर्क

जनता के इस अंतर्जातीय संपर्क का एक और नतीजा है कविता की भाषा में आने वाला परिवर्तन। भूषण महाराष्ट्र में बैठकर ब्रजभाषा में कविता लिखते थे। ब्रजभाषा ब्रजभूमि के बाहर, हिंदीभाषी प्रदेश के भी बाहर, कविता की सामान्य भाषा के रूप में स्वीकृत थी। कोई भी भाषा इतने बड़े भू-भाग में फैलकर अपने स्थानीय रूप की रक्षा नहीं कर सकती। वह जितने अधिक स्थानीय प्रभावों को पचा

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

सकती है, उतनी ही सजीव बन सकती है। भूषण की शब्दावली को लेकर अधिकांश आलोचकों को शिकायत है कि उन्होंने ब्रजभाषा के परिनिष्ठित रूप की रक्षा नहीं की है, उनकी भाषा का रूप अस्थिर है। लेकिन इसी में भूषण की सजीवता, उनकी भाषा की व्यापकता परिलक्षित होती है। मराठी भाषी क्षेत्र में रहने के नाते मराठी शब्दों का खास तौर से और अन्य प्रांतीय शब्द रूपों का आम तौर से अपनी कविता में भूषण ने ब्रजभाषा के बीच अत्यंत प्रवाहपूर्ण उपयोग किया है। इतालवी यात्री मनुच्ची ने शिवाजी से खड़ी बोली उर्दू में बात की थी, बीच में कोई दुभाषिया नहीं था। भूषण की ब्रजभाषा में जहाँ-तहाँ, विशेषतः दरबारों के प्रसंग में खड़ीबोली का रूप विद्यमान दिखाई देता है। इन रूपों के अलावा एक ओर अरबी-फारसी-तुर्की के शब्द, दूसरी ओर बुंदेली-बैसवाड़ी के पद-भूषण की भाषा का फैलाव अंतर्जातीय संपर्क का दिलचस्प उदाहरण है।

संक्षेप में, भाषा के गठन पर भी भूषण के समकालीन जीवन की गहरी छाप है। इससे भी उनकी राष्ट्रीयता का स्वरूप उभरता दिखायी देता है। जिसे 'राष्ट्र' कहते हैं, उसमें सिर्फ एक निश्चित भू-भाग नहीं, उस भू-भाग में रहने वाली जनता भी आती है। यह जनता आपसी संपर्क से भाषा के रूप और शब्द-भंडार को भी प्रभावित-परिवर्तित करती है। उनके लिए उत्तर-दक्षिण के भू-भाग और अवधी-बुंदेली-ब्रज के साथ अरबी-फारसी-तुर्की बोलने वाले मनुष्य एक साथ कविता और काव्यभाषा के स्रोत थे। भू-भाग को अतिरंजित महत्त्व देकर जनता को ठुकराने वाली भावधारा सांप्रदायिक राष्ट्रवाद का रूप ले लेती है और जनता को अतिरंजित महत्त्व देकर भू-भाग को ठुकराने वाला चिंतन 'कल्पित' राष्ट्रवाद से शुरू होता है। भूषण इन दोनों प्रवृत्तियों का प्रतिवाद है। उनकी दक्षिण यात्रा अगर भौगोलिक परिधि के विस्तार का सूचक है तो उनकी भाषा में विभिन्न जनपदों और भाषाओं के शब्दों का मिश्रण मानवीय परिधि के विस्तार का सूचक है।

'मध्यकाल' में – वस्तुतः औद्योगिक समाज से पहले-कवि छोटे-बड़े सामंतों के दरबार में रहकर ही "काव्य के साथ-साथ उदरपूर्ति कर सकते थे," जैसा कि डॉ. रामविलास शर्मा ने उचित लक्ष्य किया है। काव्य और उदरपूर्ति के दोहरे उद्देश्यों के घुले-मिले होने से कविता का चरित्र भी प्रभावित होता था, भूषण की वीरता और राष्ट्रीयता भी प्रभावित हुई है। फिर भी, भूषण की कविता में इस प्रभाव के भीतर से, उसे विरल करता हुआ, जो नया स्वर उभरता है, वह हिंदी भाषी जनता और नयी राष्ट्रीयता की सगुण पहचान कराने की दिशा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण मार्गचिन्ह है।

2.12 भूषण का योगदान

भूषण का सबसे बड़ा योगदान इस बात में है कि श्रृंगारिकता में डूबे हुए रीतिकाल में उन्होंने वीररस की रचना की, जो उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व की घोषणा करती है। उनका ग्रंथ 'शिवराज भूषण' हिंदी का अकेला रीतिग्रंथ है जो अलंकारशास्त्र पर होते हुए भी वीररस का काव्य हैं दूसरी बात यह है कि हिंदी में भूषण ने शुद्ध वीरकाव्य का सृजन किया। "शुद्ध" इस अर्थ में कि वीरगाथा काल का वीरकाव्य श्रृंगाररस से प्रेरित है– उसमें प्रायः स्त्री के लिए युद्ध हुए हैं। स्वभावतः उसमें राष्ट्रीय या जातीय भावना का द्योतक सामाजिक वीरता नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत वीरता की प्रमुखता है। इसीलिए न वह समाज की भावना व्यक्त करता है, न समाज की चेतना का अंग बनता है। भूषण की सामाजिक या जातीय कल्याण-भावना का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि उनके समय के रीतिकाव्य में सामाजिक भावना का प्रायः अभाव है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

भूषण के महत्त्व का तीसरा पक्ष यह है कि उन्होंने रीतिकाल में वीररस की कविता लिखने वाले अन्य तीन कवियों–श्रीधर, सूदन, लाल-की अपेक्षा अपनी निजी विशेषताओं और जनता की आकांक्षाओं के बीच संतुलन कायम किया और कविता की भावप्रकृति को पहचान कर रचना की। खुद आश्रयदाता के आदेश और वस्तुवर्णन की परिपाटी पर न चलकर भूषण ने अपनी प्रेरणा का आधार ग्रहण किया। उन्होंने कोमल भावों की व्यंजना करने वाली ब्रजभाषा को वीररस के अनुकूल ओजस्वी स्वरूप दिया और अन्य जनपदों और भाषाओं से शब्द लेकर उसकी प्रकृति को व्यापक जातीय स्वरूप दिया। यह उनका अप्रतिम योगदान है।

2.12.1 बोध प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य में भूषण का योगदान किस रस के क्षेत्र में है?
2. भूषण के काव्य की भाषा क्या है?

2.13 भूषण के कवित्तों का प्रतिपाद्य

भूषण रीतिकाल की वीरकाव्य परम्परा के प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने अपने काव्य में अपने आश्रयदाता शिवाजी की वीरता उनके शौर्य एवं उनके पराक्रम और शत्रुपक्ष पर उनके प्रभाव का सुन्दर अंकन किया है। वे शिवाजी की बहादुरी का वर्णन करते हुए बताते हैं कि जैसे गरुड़ नाग समूह को, सिंह हाथियों के झुंड को, इन्द्र पहाड़ों को, बाज पक्षियों के कुल को और सूर्य अंधकार को नष्ट कर देता हैए वैसे ही शिवाजी अपने शत्रुओं पर बहुत भारी पड़ते हैं। शिवाजी की विशाल चतुरंगी सेना है, जिसमें घोड़े, हाथी, रथ और पैदल सैनिक हैं। सेना जब चलती है तो नगाड़े बजते जा रहे हैंए हाथियों के गण्डस्थल से इतना मद बह रहा है कि उसमें बड़े.बड़े हाथी भी बहे जा रहे हैं। युद्ध में जब हाथी एक-दूसरे से टकरा रहे हैं तो ऐसा लगता है जैसे बड़े-बड़े पर्वत उखड़ पड़ रहे हैं। विशाल सेना जब चल रही है तो उनके चलने से पृथ्वी से इतनी धूल उड़ रही है कि सूर्य भी तारे के समान दिख रहा है और पृथ्वी उसी तरह से हिल रही है, जैसे परात में रखा हुआ पारा हिलता हुआ दिखाई देता है। कहने का अर्थ है कि उनकी सेना का प्रभाव जल, थल, आकाश के साथ सम्पूर्ण पृथ्वी पर पड़ रहा है। उनकी सेना के झंडों को देखकर तथा हाथियों के घंटों की आवाज सुनकर शत्रु पक्ष के राव राजा सब भाग खड़े होते हैं। उनकी सेना के नगाड़ों की आवाज सुनकर पहाड़ भड़भड़ा कर गिर पड़े, शत्रु लोग गाँव और शहर छोड़ भाग खड़े होते हैं। हाथियों के हौदे ढीले पड़ गए और उनके मद पर मंडराने वाले भौरे अपने घर भाग गए। शत्रुओं की स्त्रियाँ डर के मारे भाग खड़ी हुईं उनके होश-हवास उड़ गए और दौड़ते समय उनके बाल खुलने के कारण हवा में लहराने लगे। शिवाजी की सेना इतनी बड़ी है कि उनके भार से कछुए की पीठ फट गई और शेषनाग के फन फट गए। उनकी सेना जब युद्ध के लिए जा रही है तो प्रेतिनियाँ, पिशाचिने और भूत, राक्षस आदि किलकारी मार रहे हैं। ये सभी प्रसन्न होकर गाते हुए कहाँ जा रहे हैं शिव से पार्वती जी ऐसा पूँछ रही हैं। और अनुमान लगा रही हैं कि लगता है आज शिवाजी फिर किसी पर क्रोधित हुए हैं आज खूब नरसंहार होगा और हमें खूब मांस और रक्त खाने-पीने को मिलेगा, यह सोचकर आसुरी शक्तियाँ प्रसन्न हो रही हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

कवित्तों की व्याख्या

2.13.1 (1) गरुड़ को दावा जैसे .... दावा शिवराज का

प्रसंग- प्रस्तुत अवतरण शिवा बावनी रचना से लिया गया है। इसके रचयिता कविवर भूषण हैं। भूषण रीतिकाल की वीरकाव्य परम्परा के अग्रगण्य कवि हैं। इन्होंने अपने काव्य में अपने दो आश्रयदाता शिवाजी और छत्रसाल के शौर्य का वर्णन किया है। यहाँ पर भूषण कवि ने विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से शिवाजी के पराक्रम का वर्णन किया है।

व्याख्या- कवि भूषण का कहना है कि जिस प्रकार नागों के समूह पर गरुड़ राज भारी पड़ते हैं, जैसे हाथियों के समूह पर जंगल का राजा शेर भारी पड़ता है, ठीक वैसे ही पहाड़ों के समूहों पर इन्द्र राज भारी पड़ते हैं और पक्षियों के समूह पर बाज भारी पड़ता है। ऐसे ही समस्त पृथ्वी और नव खण्डों में फैले अंधकार को सूर्य समाप्त कर अपना शक्ति का परिचय देता है। ठीक इसी तरह से पूरब से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक जितने भी राजे.महाराजे अथवा बादशाह हैं, उन पर शिवाजी बहुत भारी पड़ते हैं। चारों तरफ उनका ही आधिपत्य दिखाई देता है।

विशेष-
1. प्रस्तुत अवतरण की भाषा ब्रजभाषा है।
2. इसमें रचनाकार ने कवित्त छंद का प्रयोग किया है।
3. गुण की दृष्टि से यहाँ ओज गुण का प्रयोग हुआ है।
4. इसमें शिवाजी के शौर्य का वर्णन किया गया है।

2.13.2 बोध प्रश्न

1. दोहे के आधार छत्रसाल के शौर्य की कौन सी विशेषताएँ कवि गिनाता है।
2. उपरोक्त छन्द में कौन सा रस है?

2.13.3 (2) साजि चतुरंग सैन.......................... पारावार यों हालात हैं।

चतुरंग सैन= चार प्रकार की, **हस्ति** (हाथी) **अंग में उमंग धारि**= अंग-प्रत्यंग में जोश भरकर। **वाद-विवाद**= (नगाड़ों का) अत्यधिक ऊँचा घोष । **नदीनद**= नदी-नालों की मस्त बाढ़ के समान तरल (बह रही है) **मद**= मस्ती। **गैबरन**= श्रेष्ठ हाथियों की। **ऐलफैल**= सेना-समूह के फैलने से। **खैल-भैल**= खलबली मच गई। **खलक में गैल-गैल**= दुनिया भर में, गली-गली में, सब तरफ। **गजन**= हाथियों। **छैलपैल**= धक्कम-धक्की से। **सैल**= पर्वत। **उसलत हैं**= हिल उठे हैं, डाँवाँडोल हो चले हैं। **तारा सो**= छोटे से तारे जैसा। सूरज। **धूरि धारा में** = (आकाश में) धूल के बादलों में। **जिमि**= जैसे । **थारा**= थाल। **पारा पाराबार यों हलत है**= धरती पर समुद्र ऐसे हिल-डुल उठा जैसे थाली में पारा हिल रहा हो।

संदर्भ-शिवाजी की सेना के रण के लिए प्रस्थान करते समय का एक चित्र यहाँ वर्णित है। दरअसल भूषण का युद्ध वर्णन बड़ा ही सजीव और स्वाभाविक है। युद्ध के उत्साह से युक्त सेनाओं का रण प्रस्थान युद्ध के बाजों का घोर गर्जन, रणभूमि में हथियारों का घात-प्रतिघात, शूरवीरों का पराक्रम और कायरों की भयपूर्ण स्थिति आदि दृश्यों का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्या-कविवर भूषण कहते हैं कि जब अत्यंत उत्साहित होकर शिवाजी की चतुरंगी सेना जिसमें पैदल, अश्व, रथ, गज आदि है, युद्ध जीतने के लिए चलती हैं तो उसके चलते समय युद्ध के नगाड़ों की ध्वनि इतनी तीव्र होती है कि वह चारों दिशाओं में फैल जाती है। उनके हाथियों की गंडस्थल से जो मद (तरल पदार्थ) निकल रहा है वह इतना अधिक है कि वह नदी, नाले का रूप ले रहा है। वह चतुरंगी सेना चारों तरफ फैल गई है। उनके सेना के हाथी जब एक दूसरे से टकरा रहे हैं तो ऐसा लग रहा है जैसे कोई पर्वत को ठेल रहा हो। सेना के चलने से इतनी धूल उड़ रही है कि सूर्य भी तारे के समान दिख रहा है। शिवाजी की इस विशाल सेना के चलने से पृथ्वी इस प्रकार डोल रही है जैसे परात में रखा हुआ पारा चारों तरफ डोलता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिवाजी की सेना बड़ी विशाल है।

विशेष— (1) शिवाजी के सेना के प्रस्थान का दृश्य है।
(2) इस छन्द में कवि ने चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।
(3) उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
(4) इसमें कवित्त छन्द का प्रयोग हुआ है।

2.13.4 बोध प्रश्न

1. दिए गए दोहे का प्रतिपाद्य एक पंक्ति में व्यक्त करें।
2. प्रस्तुत छन्द में कौन-सा मुख्य अलंकार है।

2.13.5 (3) बाने फहराते घंटा गजन के....

प्रसंग — पूर्ववत

संदर्भ— शिवाजी की सेना के चलने से क्या प्रभाव पड़ रहा है इसे तरह-तरह बताया गया है।

व्याख्या—कवि भूषण ने इस छंद में यह बताया है कि किस प्रकार शिवाजी की विशाल सेना के फहराते हुए झंडों को देखकर तथा हाथियों की कमर पर लटके घंटों की आवाज सुनकर शत्रुओं की सेना में एकत्रित हुए देश.विदेश के राजे.महाराजे सब युद्ध छोड़कर भाग रहे हैं क्योंकि वे शिवाजी की सेना का सामना करने में असमर्थ हैं। शिवाजी महाराज की सेना के नगाड़ों की आवाज इतनी तीक्ष्ण है कि पहाड़ भी दरक रहे हैं, गिरे पड़ रहे हैं। इसके कारण शत्रु लोग नगर और गाँव छोड़कर भाग रहे हैं। उस आवाज से हाथियों के हौदे भी ढीले हो गए हैं तथा हाथियों के गंडस्थल से निकलने वाला तरल पदार्थ मद जिस पर भौरें मंडराते रहते हैं, अब वह भौरें भी भाग गए हैं। शिवाजी की सेना के प्रभाव के कारण शत्रुओं की स्त्रियाँ दौड़ती हुई सुरक्षित स्थान जा रही हैं जिसके कारण उसके बँधे हुए बाल खुल गए हैं और उनकी लट अस्त-व्यस्त हो रही हैं। कहने का अर्थ है कि वे अपना होश-हवास खो बैठी हैं। ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी कछुए और शेष नाग के फन पर टिकी है। पर जब शिवाजी की विशाल सेना चलती है तो उसके दबाव के कारण कछुए की पीठ एवं कमर फट गई और शेष नाग के फन केले के पत्ते के समान बिखर गए, फट गए।

विशेष - वही

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.13.6 बोध प्रश्न

1. उपरोक्त छन्द में शिवाजी की सेना के चलने से क्या प्रभाव पड़ा है?
2. उपरोक्त छन्द में प्रयुक्त अलंकारों को स्पष्ट करें।

2.13.7 (4) प्रेतिन-पिसाचरु............ शिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है।

प्रसंग- पूर्ववत

संदर्भ- शिवाजी की विशाल सेना को देखकर प्रेतिनी पिशाचनी निशाचर आदि सब प्रसन्न हो रहे हैं कि आज हमें खूब भर पेट भोजन मिलेगा।

व्याख्या- भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी की विशाल सेना को जाते हुए देख पार्वती जी शिव जी से पूछ रही हैं कि आज आप की टोली कहाँ जा रही है। शिवाजी की टोली में भूत-प्रेत, पिशाच, राक्षस, भैरों आदि होते हैं। वे कहती हैं, लगता है कि आज फिर शिवा नरेश ने किसी पर क्रोध किया है। प्रेत, पिशाच, निशाचर आदि सब प्रसन्न होकर एक.दूसरे को बधाई दे रहे हैं। क्योंकि अब युद्ध होगा, युद्ध में भीषण रक्तपात होगा, नरसंहार होगा। ऐसा होने से भूत-प्रेत, पिशाच, निशाचर आदि को भरपूर भोजन मिलेगा। इसलिए वे बहुत प्रसन्न हो रहे हैं। इसलिए भैरों, भूत, राक्षस, योगनियाँ आदि सब एक साथ कहीं जा रहे हैं। इनके साथ ही किलकारी मारती, डमरू बजाती काली देवी भी कौतुहलवश इनके साथ चली जा रही हैं। इस सब दृश्य को देखकर पार्वती जी कह रही हैं कि लगता है आज फिर शिवा नरेश को किसी पर क्रोध आया है और वे उस पर आक्रमण करने जा रहे हैं। इसलिए शिवाजी के शत्रु का भयंकर संहार होने वाला है। इस संहार के विषय में सोच-सोचकर प्रेतिनी-पिशाचनियाँ प्रसन्न हो रही हैं।

विशेष- वही

2.13.8 बोध प्रश्न

1. उपरोक्त छन्द में कौन सा प्रसन्न है?
2. उपरोक्त छन्द की प्रमुख विशेषता बताइए।

2.14 निष्कर्ष

भूषण अपने युग के कवियों से भिन्न और विशिष्ट हैं। अन्य रीतिकालीन कवियों से अलग वीर रस से परिपूर्ण कविताएँ उनकी प्रसिद्धि का कारण बनीं। उन्होंने लोकप्रिय, प्रसिद्ध, आदर्श राजाओं की प्रशंसा के छंद लिखे। उनकी कविता के नायक इतिहास प्रसिद्ध वीर हैं। भूषण ने वीर काव्य की रचना करते हुए भी रीति पद्धति का ध्यान रखा। भूषण ने रीतिबद्ध कवियों का अनुसरण करते हुए 'शिवराज भूषण 'नामक अलंकार ग्रन्थ लिखा।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

(ग) बिहारी

लेखक–डॉ. दिनेश गुप्ता
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

3.0 अधिगम का उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 कवि परिचय
3.3 रचनाएं
  3.3.1 बोध प्रश्न
3.4 काव्य -सौष्ठव
3.5 मुक्तक काव्य का सौंदर्य
  3.5.1 बोध प्रश्न
3.6 भाषा -सौष्ठव
3.7 छंद विधान
  3.7.1 बोध प्रश्न
3.8 कवि का महत्व और हिंदी साहित्य में योगदान
3.9 प्रतिपाद्य
  3.9.1 बोध प्रश्न
3.10 नीति
3.11 भक्ति
  3.11.1 बोध प्रश्न
3.12 महत्वपूर्ण दोहों की व्याख्या
  3.12.1 मेरी भव बाधा हरौ .....
  3.12.2 फिरि -फिरि चितु उत हीं ...
  3.12.3 जोग जुगति सिखाए सबै.....
  3.12.4 कहत नटत रीझत खिझत.....
3.13 निष्कर्ष
3.14 संदर्भ ग्रन्थ

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप-

- कवि बिहारी के समकालीन परिवेश को समझ पाएंगे।
- बिहारी-काव्य के श्रृंगारी रूप से परिचित हो पाएंगे।
- बिहारी की सौंदर्य -चेतना का विश्लेषण कर पाएंगे।
- बिहारी की काव्य -कला से परिचित हो पाएंगे।

3.1 प्रस्तावना

बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि है। 'बिहारी सतसई 'उनकी लोकप्रियता का आधार है। उनकी प्रसिद्धि इस बात को प्रमाणित करती है कि श्रेष्ठता की कसौटी परिमाण नहीं, काव्यत्व है। बिहारी ने सात सौ दोहे लिखकर ऐसी कीर्ति अर्जित की है जो सात हज़ार दोहे लिखकर भी कवियों के लिए दुर्लभ है। बिहारी रीतिसिद्ध काव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि हैं। उन्हें श्रृंगार वर्णन ,हाव- भाव योजना या भंगिमा -वर्णन में अद्वितीय सफलता मिली है। उनके काव्य में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। बिहारी ने भक्ति और नीति के दोहे भी लिखे हैं जहाँ वे दरबारी वातावरण से मुक्त प्रतीत होते हैं।

3.2 कवि–परिचय

बिहारी का जन्म ग्वालियर के माथुर चौबे वंश में 1595 ई. के आस-पास हुआ था। उनके पिता का नाम केशवराय था। बिहारी का विवाह मथुरा के माथुर चौबे लोगों के घराने में हुआ था। विवाह के बाद बिहारी अपनी ससुराल में रहने लगे। 1618 में नरहरिदास के यहाँ बिहारी का परिचय शाहजहाँ बादशाह से हुआ और वह बादशाह के साथ आगरा चले गये तथा वहीं रहने लगे। बादशाह के यहाँ बिहारी का परिचय राजस्थान के राजाओं से हुआ। 1635 ई. में बिहारी आमेर-नरेश जयसिंह से मिलने गये। उस समय जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में पड़कर अपना सारा कामकाज छोड़ बैठे थे। बड़ी रानी के कहने पर बिहारी ने निम्नलिखित दोहा–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बँध्यौ, आगे कौन हवाल।।

लिखकर जयसिंह के पास भेजा। जयसिंह पर उसका प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि वह पुनः राज-काज देखने लगे और उन्होंने बिहारी को अपने दरबार में रख लिया। वहाँ बिहारी ने 713 दोहों वाली सतसई की रचना की। कहा जाता है कि उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी इनाम में मिलती थी। सम्भवतः 1664 ई. के आस-पास वह परलोकवासी हुए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

3.3 रचनाएँ

बिहारी की कीर्ति का स्तम्भ केवल 'बिहारी-सतसई' ही है। केवल सौ दोहे लिखकर उन्होंने महाकवि बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। इससे सिद्ध हो जाता है कि यश प्राप्त करने के लिए अधिक लिखना उतना आवश्यक नहीं जितना उच्चकोटि का लिखना। इन सात सौ दोहों में रस, नायिका-भेद, अलंकार इत्यादि तो भरे ही हैं; धार्मिक तथा नैतिक सूक्तियों की भी इनमें कमी नहीं है और भक्ति साहित्य का भी प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। आशय यह है कि इस पुस्तक के छोटे-से कलेवर में ही बिहारी ने समकालीन भारतीय साहित्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों का समावेश कर दिया है– 1. श्रृंगार, 2. भक्ति और 3. नीति।

3.3.1 बोध प्रश्न

1. बिहारी के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
2. बिहारी की कीर्ति का आधार क्या है?

3.3.2 निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए–

(क) बिहारी–रीतिसिद्ध परम्परा के प्रतिनिधि कवि हैं। (सही/गलत)

(ख) बिहारी की सतसई महाकाव्य की श्रेणी में आती है। (सही/गलत)

3.4 काव्य–सौष्ठव

रीतिकाल में श्रृंगार, भक्ति और नीति-विषयों पर अनेक कवियों ने बड़ी संख्या में काव्य लिखे हैं, लेकिन बिहारी के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्होंने 'गागर में सागर' भर दिया। उन्होंने अपने दोहों में इतना सजग होकर शब्दों का प्रयोग किया है कि एक भी शब्द बदलना कठिन हो जाता है। शब्दों में पूरी शक्ति और बहुत गहरी व्यंजना है। रचना का ऐसा कसाव हिन्दी-साहित्य में बहुत ही कम मिलेगा। कहीं-कहीं एक ही दोहे में पूरी-पूरी कथा आ गई है। बिहारी की निरीक्षण-शक्ति इतनी प्रबल है कि वे किसी भी स्थिति का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, जिससे उसका बिम्ब पूरी तरह स्पष्ट हो जाए। अलंकारों का प्रयोग इतनी कुशलता से किया है कि देखते ही बनता है। एक-एक दोहे में कई-कई अलंकार गुँथे पड़े हैं, किंतु विशेषता यह है कि वे अलंकार ऊपर से थोपे हुए नहीं जान पड़ते स्वाभाविक रूप में ही उनका प्रयोग हुआ है। जीवन की किसी परिस्थिति से अलंकार ग्रहण कर लेना इनके बाएँ हाथ का खेल था। गणित, ज्योतिष, शिकार, वैद्यक और दैनिक जीवन की परिस्थितियों के ज्ञान को प्रसंग के अनुसार घटित कर देने की क्षमता बिहारी में है।

3.5 मुक्तक काव्य का सौन्दर्य

काव्याचार्यों द्वारा निरूपित काव्य के दो रूप प्रसिद्ध हैं– प्रबन्धकाव्य और मुक्तककाव्य। पूर्वापर सम्बन्धित वर्णनात्मक कथा-तत्त्व से युक्त काव्य, प्रबन्ध कहलाता है। इसके विपरीत पूर्वापर-सम्बन्ध मुक्त, स्वतः सम्पूर्ण अर्थ का द्योतक काव्य मुक्तक काव्य कहा जाता है। प्रबन्धकाव्य में रस-व्यंजना की पूर्ण सामग्री (विभाव, अनुभाव आदि) की अवतारणा सहज संभव होती है जबकि मुक्तक काव्य में उसकी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

परिकल्पना कवि द्वारा उद्धृत प्रसंग पर निर्भर है। प्रबन्धकाव्य में विस्तार के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है, परन्तु मुक्तक की महत्ता संक्षिप्तातिसंक्षिप्त होने में है। प्रबन्ध काव्य-रचयिता जिस बात को अनेक पद्यों अथवा पूरे एक सर्ग में कहता है उसी बात को मुक्तक काव्यकार एक ही पद्य में प्रस्तुत करके रस-अवतारणा में प्रवृत्त होता है। उसकी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि वह कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक गहन भावो का संयोजन कर दे। ''गागर में सागर'' भरने की यह कला 'शब्दों के जादूगर' बिहारी की सतसई में पराकाष्ठा तक दिखाई देती है। 48 मात्राओं वाले छोटे से 'दोहा' छन्द में बिहारी ने भाव एवं अर्थ की इतनी गहराई प्रस्तुत की है कि उसे जितनी बार पढ़ा जाए उतनी ही बार एक नूतन आनन्द, अद्भुत काव्यास्वाद और मानसिक तृप्ति का अनुभव होता है।

आचार्य शुक्ल के कथानुसार, **'जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास-शक्ति जितनी अधिक होगी उतनी ही वह मुक्तक की रचना में अधिक सफल होगा।'** इससे मुक्तक काव्य की दो कसौटियाँ स्पष्ट है। **प्रथम-कल्पना की समाहार शक्ति, द्वितीय-भाषा की समास शक्ति।**इस दृष्टि से बिहारी-सतसई में निस्सन्देह मुक्तक कला का चरम दिखाई देता है। उदाहरणार्थः बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा है–

कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सों बात।।

यहाँ कवि ने केवल बारह शब्दों में एक सम्पूर्ण प्रेम-प्रसंग को समेट लिया है जिसे समझने के लिए कवि के कल्पना-कौशल की थाह लेनी पड़ती है। प्रसंग यह है कि नवविवाहित दम्पत्ति परिवार-जनों के मध्य उन्मुक्त प्रेमालाप करने में असमर्थ है। अतः वे नेत्र-संकेतों के माध्यम से अपने-अपने हृदय के भाव एक-दूसरे तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं। दोहों के शब्दों पर क्रमशः ध्यान दीजिए-पहले नायक संकेत द्वारा नायिका से कहीं एकान्त में मिलने का आग्रह करता है परन्तु नायिका संकेत में नहीं कह देती है। नायिका की इस अनूठी 'नाहीं' पर नायक रीझ उठता है, परन्तु नायिका भरे परिवार में नायक की ऐसी प्रवृत्ति पर खीझ जाती है। अब घर के काम-काज मे उसे यहाँ से वहाँ तो जाना ही पड़ता है और कहीं-न-कहीं नायक का सामना भी हो ही जाता है। अतः उसकी खीझ अन्ततः मुस्कान में परिणत हो जाती है, परन्तु तभी परिजनों की उपस्थिति का ध्यान आने पर वह लजा जाती है।

यह शब्दचित्र एक सम्पूर्ण प्रणय-प्रसंग को प्रस्तुत करने में समर्थ है। संक्षिप्तता और सारगर्भिता के साथ-साथ सरस रागात्मकता के सुष्ठु संयोजन ने इसे मुक्तक काव्य की एक अमर विभूति बना दिया है।

इसी प्रकार बिहारी का यह दोहा आपको स्मरण होगा–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल।।

इसका शब्दार्थ है– जो भँवरा पराग और मधुर मधु से रहित, एक बिना खिली कली में ही इतना मस्त है, कली के खिलकर फूल बन जाने पर उसकी क्या दशा होगी? किन्तु कवि का अभिप्राय इतना ही नहीं है वह इस दोहे द्वारा, अपनी नवोढ़ा पत्नी के प्रेम में अन्धे हो रहे राजा जयसिंह को तो सावधान करना चाहता है, साथ ही विलासिता में डूबे अन्य कर्त्तव्य-विमुख व्यक्तियों को सचेत करना भी उनका उद्देश्य है। ऐसे कामी पुरुषों से स्त्रियों को भी सावधान रहने के लिए बिहारी ने लिखा है–

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

बहकि न इहिं बहिनापुली, जब तक बार विनास।

बचै न बड़ी सबील हूँ, चील घोंसाव मांस।।

इस दोहे में कवि द्वारा कल्पित यह प्रसंग छिपा हुआ है– किसी लम्पट पुरुष ने एक सुन्दरी से बहन का-सा नाता जोड़ा जो उसे अपने जैसा ही भोला और सरल समझती है किन्तु उसकी एक सखी उसे सचेत करती है कि वह इस बहनापे के बहकावे में न आए– नहीं तो एक दिन पछताना पड़ेगा। क्योंकि पर-पुरुष की संगति में अब नहीं तो तब-नारीत्व भ्रष्ट होने का भय बना ही रहेगा। जैसे चील के घोंसले में बड़ी सावधानी से रखा हुआ मांस कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकता। इस प्रकार कवि ने स्वार्थी पुरुषों को चील-जैसा कहकर अपनी सामाजिक चेतना का परिचय देते हुए नारी-मात्र को सजग रहने की जो प्रेरणा इस एक दोहे द्वारा दी है उसका साहस बड़े-बड़े उपदेशक अपने लम्बे भाषणों में भी नहीं कर सकते।

ऊपर के तीनों उदाहरण क्रमशः श्रृंगार, नीति एवं समाज से सम्बन्धित हैं। ऐसे ही राजनीति, भक्ति, दर्शन, हास्य-सभी विषयों से सम्बन्धित अनेक दोहे बिहारी की समाहार-शक्ति के प्रमाण रूप उद्धृत किए जा सकते हैं। यहाँ दो और दोहे प्रस्तुत हैं। एक का सम्बन्ध राजनीति से है ओर दूसरे का भक्ति से–

दुसह दुराज प्रजान को क्यों न बढ़ै दुख-द्वन्द्व

अधिक अन्धेरों जग करैं मिल माव रवि चन्द।।

इस दोहे का सीधा-सा अर्थ तो यह है कि जिस प्रकार अमावस्या की तिथि में सूर्य और चाँद दोनों के मिल जाने से संसार में उजाला होने की बजाए अधिक अन्धेरा हो जाता है उसी प्रकार दो राजाओं का राज्य प्रजा के लिए असह्य और दुःखःद्वन्द्व बढ़ाने वाला होता है। परन्तु वास्तव में बिहारी ने यहाँ कुछ ही शब्दों में अपने समय की राजनैतिक अस्थिरता, जनता की दुर्दशा और साहित्यकारों की चिन्ता तथा मजदूरी का बड़ा मार्मिक विवरण दे दिया है। मध्ययुग में एक तो छोटे-छोटे राजे-रजवाड़े-सामन्त और जागीरदार प्रजा को दबाए रहते थे, दूसरे उनके ऊपर मुगल शासकों के अत्याचार, टैक्स आदि से जनता पर दोहरी मार पड़ती थी। इस प्रकार लोग दोहरे शासन से कोई लाभ या सुविधा पाने की बजाय अधिक पिस रहे थे। उस समय इस भीषण स्थिति का यह चित्रण तो केवल पहली पंक्ति में हुआ है जबकि दूसरी पंक्ति में कवि ने प्रकृति के एक अटल नियम तथा ज्योतिष और खगोलशास्त्र के एक महत्त्वूर्ण सिद्धान्त की व्याख्या की है। स्पष्ट है कि इतनी बातों को एक साथ समेटने की क्षमता केवल बिहारी में ही थी।

अब एक भक्ति-संबंधी उदाहरण लीजिए–

दूर भजत प्रभु पीठि दै गुन-विस्तारन काल।

प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग रंग भूपाल

यहाँ बिहारी ने पतंग के दृष्टान्त से निर्गुण भक्ति की व्याख्या की है। जैसे पतंग की डोर (गुन) का विस्तार करने पर वह अधिक-से-अधिक दूर होती चली जाती है किन्तु उस डोर को समेटते ही, या डोर से रहित होते ही वह बिल्कुल निकट जा आती है, इसी प्रकार जितना प्रभु के गुणों का विस्तार किया जाएगा, वे विमुख रहेंगे, किन्तु यदि निर्गुण-निराकार रूप में उनकी उपासना की जाय तो वे

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

निकट ही (हृदय में ही) अनुभव होंगे। इसी बात को एक अन्य रूप में भी कहा जा सकता है कि जो मनुष्य अपने गुणों के अभिमान में मस्त होता है, उसे प्रभु की कृपा नहीं मिल सकती जबकि स्वयं को गुणहीन समझकर दीनतापूर्वक विनय करने वाले भक्त भगवान् के सदा निकट रहते हैं। इस प्रकार जिस बात को भक्तिकाल की सगुण-निर्गुण भक्ति शाखा के अनेक सन्त कवियों ने अपने असंख्य पद्यों में समझाने की चेष्टा की है उसे बिहारी ने एक ही दोहे में जाने-पहचाने दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

सच तो यह है कि बिहारी की इस समाहार-शक्ति ने ही साहित्य-प्रेमियों को बार-बार उनकी प्रशंसा के लिए विवश किया है। इसका प्रमाण यह है कि बिहारी के बाद अनेक कुशल कवियों ने बिहारी के एक-एक दोहे की व्याख्या चार लम्बे चरणों वाले सवैया, दोहे से तिगुने बड़े छन्द, छप्पय, कवित्त तथा कुण्डलियों आदि में भी करने की कोशिश की है। फिर भी वे बिहारी के भावों को भली-भांति स्पष्ट करने में सफल नहीं हो सके। बिहारी की समाहार-शक्ति को यदि संक्षेप में ही स्पष्ट करना हो तो हम रहीम के शब्दों में कह सकते हैं–

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमट, कूदि चल जाहिं।

अर्थात् जिस प्रकार एक नट छोटे से घेरे में से सिमटकर, कूदकर निकल जाता है उसी प्रकार दोहे के थोड़े से अक्षरों में बड़े विशाल अर्थ सिमटकर समाए रहते हैं। और इसका ज्वलन्त प्रमाण है– 'बिहारी-सतसई'।

3.5.1 एक पंक्ति में प्रश्नों के उत्तर दें-

1. आचार्य शुक्ल जी बिहारी के किन दो गुणों की प्रशंसा करते हैं?
2. रीतिकाल की मुक्तक काव्य-परम्परा में बिहारी का स्थान निर्धारित करें।

3.5.2 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या ना में दीजिए–

(क) बिहारी के काव्य की प्रमुख विशेषता श्रृंगार–वर्णन है। (.........)

(ख) 'बिहारी सतसई' में काव्य शास्त्रीय नियमों का पालन किया गया है। (.........)

3.6 भाषा–सौष्ठव

हिन्दी की अधिकांश मध्यकालीन, विशेषतः रीतिकालीन सतसइयाँ ब्रजभाषा में रचित हैं। तुलसी, रहीम (अवधी), सूर्यमल्ल (राजस्थानी) और हरिऔध (खड़ीबोली) की सतसइयाँ ही इसका अपवाद कही जा सकती हैं। बिहारी-सतसई ब्रजभाषा-काव्य की अमूल्य निधि है। भाषा की प्रांजलता, शब्दों का विषयानुरूप तथा प्रसंगानुकूल सुष्ठु चयन, पद-विन्यास की निपुणता, लाक्षणिक प्रयोगों की अर्थवत्ता, चित्रोपमता, नाद-योजना, प्रतीकात्मकता एवं बिम्ब-विधान आदि भाषा-सौष्ठव के समस्त उपकरणों का बिहारी-सतसई में अद्भुत समन्वित समाहार परिलक्षित होता है।

बिहारी की भाषा के सम्बन्ध में कतिपय विद्वान् समीक्षकों कें अभिमत यहाँ उल्लेखनीय हैं....

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

रामचन्द्र शुक्ल–''बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना व्यवस्थित है...। ब्रजभाषा के कवियों ने शब्दों को तोड़-मरोड़कर विकृत करने की आदत पाई है.... बिहारी की भाषा इस दोष से भी कुछ मुक्त है''

राधाकृष्ण दास–''मुहावरे और उत्प्रेक्षा के तो बिहारीलाल बादशाह थे।'

श्यामसुन्दर दास– ''बिहारी ने शब्दों के साथ बलात्कार बहुत कम किया है। व्याकरण के नियमों का व्यक्तिक्रम उनकी रचनाओं में बहुत कम पाया जाता है। कहीं-कहीं पर जो उनके कुछ शब्द अजनबी से लगते हैं वे इस कारण कि उनका प्रयोग बहुत कम होता है।''

वस्तुतः अन्य सभी सतसइयाँ भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से बिहारी-सतसई से बहुत पीछे हैं। किसी बिहारी प्रशंसक की यह उक्ति अतिश्योक्ति या अत्युक्ति नहीं, अपितु स्वाभावोक्ति ही है–

ब्रज भाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि विशाल।
सब की भूषण सतसई, रची बिहारी लाल।।

'बिहारी सतसई' की भाषा की कसावट और शब्दों की जादूगरी का संकेत पीछे 'मुक्तक काव्य-प्रसंग' में किया जा चुका है। यहाँ एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें चित्रोपमता, नाद-सौंदर्य, शब्द-सौष्ठव, अलंकार-विधान सब कुछ एक साथ समाहित हो गया है–

रनित भृंग-घंटावली, झरित दान-मधु नीर।
मन्द मन्द आवत चल्यो, कुंजर कुंज-समीर।।

इस दोहे की व्याख्या अपेक्षित नहीं, प्रत्येक शब्द स्वतः बोल रहा है। कुंज में प्रवाहित मन्द समीर और मदमस्त गज का साम्य शब्दों में ही नहीं, कर्ण, नेत्र, मस्तिष्क और हृदय तक में साक्षात् हो उठता है।

'बिहारी-सतसई' की भाषा का सौन्दर्य उसके मार्दव तथा सुव्यवस्थित गठन में निहित है। काव्य-शिल्प के एक-एक उपकरण का विवेचन करने के लिए इसके सभी दोहे उद्धृत किए जा सकते हैं जिसका यहाँ अवसर नहीं है। फिर भी एक-एक उदाहरण से उनकी कुछ बानगी देखी जा सकती है–

चित्रोपमता	–	चमचमात चंचल नयन, बिचु घूँघट पट झीन।
		मानहु सुरसरिता विमल, छल उछरत जुगु मीन।।
नाद-सौन्दर्य	–	रस सिंगार-मंजनु किए कंजनु भंजनु दैन।
		अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन।।
अप्रस्तुत-योजना	–	चिलत चिकनाई चटक सों, लफति सटक लौं आई।
		नारि सलोनी साँवरी, नागिन लौं डसि जाइ।।
बिम्ब-विधान	–	सटपटाती सी ससिमुखी, मुख घूँघट पट ढाँकि।
		पावकझर-सी झमकि कै, गई झरोखे झाँकि।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

3.7 छन्द-विधान

छन्द की दृष्टि से हिन्दी का सतसई-साहित्य 'दोहा मुक्तक' की कोटि में रखा जा सकता है। दोहा छन्द में 48 मात्राएँ होती हैं। यदि दोहे के सभी वर्ण लघु हों तो उसमें अधिक-से-अधिक 48 वर्ण हो सकते हैं। और यदि सभी वर्ण गुरु हों तो कम-से-कम 24 वर्ण हो सकते हैं। किन्तु 13, 11 मात्राओं पर यति के नियमानुसार और अन्त में गुरु-लघु का क्रम अनिवार्य होने के कारण दोहे में सभी लघु या सभी गुरु वर्ण रखने सम्भव नहीं। उसमें कम-से-कम चार लघु (तथा शेष सभी गुरु) या कम-से-कम दो गुरु (तथा शेष सभी लघु) होने आवश्यक है। इस तरह दोहा छन्द का विस्तार 22 गुरु और 4 लघु से लेकर 2 गुरु और 44 लघु तक हो सकता है जिसके अनुसार उसके 21 भेद किए जाते हैं। इन भेदों के नाम गुरु-लघु-संख्या-क्रम के अनुसार छन्द-ग्रन्थों में विस्तार से विवेचित हैं। यहाँ उन्हें उद्धृत करना अपेक्षित नहीं। द्रष्टव्य यह है कि दोहे के कुल 21 भेदों में से अन्य सभी सतसईकार 8 भेदों से अधिक का प्रयोग नहीं कर पाए। यहाँ तक कि कबीर और तुलसी जैसे दोहा–महारथी भी 10 भेदों के प्रयोग से आगे नहीं बढ़ पाए। हाँ, आचार्य अमीरदास की 'ब्रजराज विलास सतसई' में दोहे के 16 भेद प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु यह गौरव केवल 'बिहारी-सतसई' को प्राप्त है कि उसमें 21 भेदों में से 19 भेदों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि 'बिहारी-सतसई' का रचयिता केवल शब्दों को ही नहीं, वर्णों और मात्राओं तक को अपनी लेखनी की नोंक पर नचाने सिद्ध हुआ है।

बिहारी बहुज्ञ कवि थे। लोक और शास्त्र का व्यापक अनुभव उनको अन्य रीतिकालीन कवियों से पृथक्-रीति से कहीं बद्ध और कहीं मुक्त व्यक्तित्व वाला सिद्ध करता है। उनकी सतसई में धर्म, दर्शन, गणित, ज्योतिष, वैद्यक, राजनीति, प्रेम, विलास, रस, नायक-नायिका-भेद आदि का बहुमुखी चित्रण हुआ है। किसी एक विषय या भाव से बँधे न रहने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कभी वे निर्गुण का गुणगान करते हैं, कभी सगुण के पक्ष में दलील देते हैं, कभी बड़ों पर किसी का वश चलने की बात करते हैं, तो कभी अपने आश्रयदाता को उपदेश और कभी मार्ग-निर्देश देते दीखते हैं। वैद्य, भिखारी, राजा, गँवार, बड़ों के छोटेपन, छोटों के बड़प्पन आदि के विषय में उन्होंने जो सूक्तियाँ लिखी हैं, वे उनके लोक-व्यवहार-ज्ञान को सूचित करती है। ऐसे प्रसंगों में उनके दोहे उनकी व्यंग्य-शक्ति दर्शाते हैं। इन सभी विषयों पर बिहारी ने जो कुछ भी लिखा है, वह उनके आसपास के वातावरण, समाज और मान्यताओं से उत्पन्न हुआ है। लोकजीवन के इन विविध चित्रों के साथ-साथ बिहारी ने काव्यशास्त्र और कामशास्त्र की बातें भी अपनी सतसई में रखी हैं। इससे उनका शास्त्र-ज्ञान सूचित होता है।

बिहारी की सतसई ब्रजभाषा में लिखित है। उनकी ब्रजभाषा बोली-वर्ग की नहीं, साहित्यिक है। साहित्यिक होते हुए भी उस पर कहीं-कहीं क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव भी दिखायी पड़ता है। क्रिया के 'लीन', 'कीन', 'दीन' आदि रूप तुक की रक्षा के लिए प्रयोग किये गये हैं। उनकी ब्रजभाषा में बुंदेलखंडी शब्दों और प्रयोगों के लिए उनका बुंदेलखंड-वास उत्तरदायी है। 'करबी', 'पायबी' आदि ऐसे ही शब्द हैं। इन बोली-प्रभावों के होने से बिहारी की ब्रजभाषा विकृत नहीं हुई है, उसका शब्दकोश बढ़ा ही है। बिहारी की भाषा चुस्त और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है, भावों को समग्र रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। मुहावरों, सांकेतिक शब्दों और सुन्दर पदावली के कारण बिहारी भाषा के कुशल प्रयोक्ता के रूप में विख्यात हो गये हैं। चुस्त ब्रजभाषा और सामाजिक दोहा के उपयोग के कारण ही 'बिहारी सतसई' के बारे में यह उक्ति प्रचलित हुई है–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर।।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3.7.1 बोध प्रश्न

एक पंक्ति में उत्तर दीजिए–

(क) बिहारी की बहुज्ञता को सिद्ध करने वाले गुण बताइए।

(ख) 'बिहारी सतसई' में किस छन्द का प्रयोग हुआ है।

3.8 कवि का महत्त्व और हिन्दी साहित्य में योगदान

बिहारी कतिपय उन इने-गिने कवियों में हैं जो स्थायी यश के अधिकारी बन गये हैं। मध्यकाल के कवियों में तुलसी और सूर को छोड़कर इतनी अधिक प्रतिष्ठा शायद ही किसी कवि ने प्राप्त की हो। 'रामचरितमानस' को छोड़कर इस काल का शायद कोई और ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' की तरह नहीं अपनाया गया। एक दृष्टि से तो बिहारी सतसई, 'रामचरितमानस से भी आगे बढ़ जाती है। यदि केवल मध्यकाल की ही टीकाओं को लिया जाए, तो रामचरितमानस पर भी उतनी टीकाएँ नहीं लिखी गई, जितनी बिहारी सतसई पर। किसी ने दोहों में कुण्डलियाँ लगाई, किसी ने कवित्त बनाए और किसी ने सवैया छन्दों से दोहों की व्याख्या की। संस्कृत के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करने की परम्परा रही है, किन्तु यह सौभाग्य 'बिहारी सतसई' को प्राप्त हुआ कि उसकी एक नहीं, अनेक व्याख्याएँ संस्कृत में की गयीं। बिहारी सतसई का संस्कृत के आर्या छन्द में भी अनुवाद किया गया। आधुनिक काल में भी बिहारी पर जितना कार्य हुआ है, उतना मध्यकाल के बहुत कम कवियों पर किया गया है। आशय यह है कि केवल 700 दोहे लिखकर बिहारी ने एक पूरा साहित्य तैयार कर दिया है। साहित्य-जगत् में बिहारी जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान बहुत कम कवियों को प्राप्त हुआ है और हिन्दी-साहित्य की समृद्धि में उनका जो योगदान है, उसके लिए हिन्दी-साहित्य-जगत् उनका सदा आभारी रहेगा।

3.9 प्रतिपाद्य

श्रृंगार–रीतियुगीन रससिद्ध कवियों में बिहारी का स्थान सबसे ऊँचा है। उन्होंने सामान्य जीवन को बहुत सूक्ष्म दृष्टि से जाँचा-परखा था। आश्रयदाता जयसिंह के दरबार में रहकर एक ओर तो उन्होंने राजदरबार की अपेक्षाओं को अपने दोहों के द्वारा पूरा करने का प्रयत्न किया था और दूसरी ओर सामान्य लोक जीवन में भी गहरी पैठ का संकेत दिया था। यह बात अलग है कि आम आदमी के सामान्य जीवन-व्यवहार का चित्रण करने में उनका मन नहीं रमा। हाँ, जहाँ, कहीं जन सामान्य के क्रिया-कलाप उनके काव्य का विषय बने हैं, वहाँ भी उनका ध्यान चमत्कारप्रधान और व्यंजनात्मक, अभिव्यक्ति की ओर अधिक रहा।

रीतिकाव्य की श्रृंगार प्रधानता में बिहारी का योगदान बहुत अधिक है। उनके दोहों में चित्रित नायक-नायिका अथवा प्रेमी-प्रेमिका अत्यन्त चतुर और प्रौढ़ हैं। उन्हें किसी भी परिस्थिति में स्वार्थ पूर्ति करने की सारी विद्याओं का ज्ञान है। चाहे परिवार जनों के साथ बैठे राधा-कृष्ण हों या गाय चराने की ग्रामीण जीवन-पद्धति में व्यस्त ग्वाल-ग्वालिन रूप में राधा और कृष्ण की चतुराई हो। उनमें प्रेम की सहज, स्वच्छ, व्यंजनात्मक और आन्तरिक विशेषताओं की कमी नहीं है। यह कार्य भक्त कवियों ने भी बहुत किया है किन्तु वहाँ इन आलम्बन-आश्रय (प्रेमी-प्रेमिका) पर भक्ति-भाव की प्रधानता मिलती है। किन्तु रीतिकाल में विशुद्ध भौतिक प्रेम-भाव ने इनके स्वरूप को अधिक प्रसार प्रदान किया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

श्रृंगार प्रधान छंदों के प्रतिपाद्य में भाव प्रेरित क्रियाकलाप विशेष महत्त्व रखता है। राधा द्वारा कृष्ण की बाँसुरी छिपा लेना केवल प्रेम की अंतरंग बातचीत की प्रेरणा का फल था। परन्तु बात हुई भी तो केवल बाँसुरी माँगना और मना कर देने की औपचारिकता की पूर्ति करते हुए। इसी प्रकार अपने प्रिय को बार-बार निहारने के काम में व्यस्त प्रेमिका अपने नेत्रों की उच्छृंखलता तथा अपनी परवशता की व्यंजना बहुत चतुराई से करती है। प्रिय को देखने में लज्जा नहीं होनी चाहिए– इस सहज तथ्य को बिहारी ने लाक्षणिक शैली में व्यक्त किया है। ध्यान देने की बात तो यह है कि रीतियुगीन जीवन-व्यवहार में नायिकाएँ अपने प्रिय से मिलने के लिए उपयुक्त स्थान और समय का संकेत भी देने में नहीं हिचकिचाती। 'घाम घरीक निवारिए' जैसा दोहा एक ओर प्रौढ़ प्रेमी-प्रेमिकाओं का संकेत करता है, तो दूसरी ओर स्नेह भाव की गहराई और दबाव को बताता है वहीं तीसरी ओर समाज की कपट-पूर्ण ईर्ष्यालु आँखों से दूर हटना चाहता है।

श्रृंगार विषयक दोहों में नायक-नायिका के शारीरिक रूप सौन्दर्य का वर्णन भी विशेष महत्त्व रखता है। इस संदर्भ में रीतिकवियों ने नारी के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन बहुत विस्तार से किया है। बिहारी भी इसका अपवाद नहीं हैं। नारी की देह की चमक इतनी अधिक है कि दीपक आदि के बुझा देने पर भी घर में अंधेरा नहीं होता क्योंकि हीरों के समान चमचमाता हुआ नायिका का शरीर घर में उजाला किए हुए है। इसी प्रकार कृष्ण की रूप माधुरी की विलक्षणता यह है कि हृदय में छिपी होने पर भी संसार में प्रतिबिम्बित रहती है। एक अन्य दोहे में नारी में मछली जैसे दो नेत्र घूँघट के भीतर से भी अपनी चंचल उछल-कूद को नहीं छोड़ पाते। इन छंदों में यद्यपि अतिश्योक्ति और चमत्कार की प्रधानता है तथापि कल्पना का संयमित उपयोग प्रेमी-युगल की भावप्रवणता को सहज और चतुराई पूर्ण शैली में अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखता है।

3.10 नीति

रीतिकाव्य में श्रृंगारिकता के साथ-साथ नीतिगत कथनों का भी विशेष स्थान है। समाज-नीति, नागरिक-व्यवहार, और जन सामान्य की लोकरीति आदि का चित्रण 'बिहारी सतसई' की एक अन्य विशेषता है। इसी विषयवस्तु के छंदों से तत्कालीन लोक संस्कृति और लोक व्यवहार तथा सामाजिक नीति की व्यंजना भली-भाँति हो जाती है।

इस विषयवस्तु के छंदों में बिहारी ने स्पष्ट लिखा है कि आत्मसंतोष और धैर्यपूर्ण जीवन-संचालन व्यक्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ऐसा संतोषी व्यक्ति सुख और दुख के अवसर पर विचलित नहीं होता बल्कि इसे अपने कर्म का फल तथा ईश्वर का दान समझकर साहसपूर्वक सहन करता है। बिहारी जानते थे कि सुख में आदमी अहंकारी होकर परमात्मा को भी भुला देता है पर दुख भोगने पर उतावला हो जाता है और ईश्वर तक को कोसने लगता है।

दूसरी विशेषता यह है कि गुणहीन तथा सामर्थ्यहीन व्यक्तियों के निर्णय और प्रचार-प्रसार से किसी सामर्थ्यवान गुणी व्यक्ति की कुछ भी हानि नहीं होती। चाहे गंध की अनुभवहीनता वाला पीनस-रोगी हो या अरक के पेड़ को सूर्य का दर्जा देने वाला कोई मूर्ख ही क्यों न हो। बिहारी का प्रतिपाद्य है कि अनर्गल प्रलाप करने वालों की परवाह हमें नहीं करनी चाहिए। बल्कि वास्तविकता को पहचानने की कोशिश करनी चाहिए। स्वार्थी और लोभी वृत्ति के कारण व्यक्ति विवेक शून्य भी हो जाता है। उसके द्वारा छोटे-बड़े का अन्तर भी नहीं किया जाता। ऐसे व्यक्तियों को लताड़ता हुआ कवि कहता है कि हमें

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

स्वार्थ और संकीर्णताओं से बाहर निकलना चाहिए क्योंकि गुणों का सही मूल्यांकन करने से ही कार्यसिद्ध होता है।

जो लोग गुणहीन, असामर्थ्यवान और अविवेकी होते हैं वे झूठे घमण्ड के कारण 'थोथा चना बाजे घना' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए यह समझते हैं कि उन्हीं के द्वारा समाज का भला होता है जबकि ऐसा नहीं है। चूहे के शरीर की चमड़ी से बड़े-बड़े नगाड़ों को नहीं मढ़ा जा सकता उसके लिए तो बड़े-बड़े चमड़े की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर यह भी सच है कि जो नीच वृत्ति का व्यक्ति होता है वह नीचता कभी नहीं छोड़ पाता। साथ ही साथ यह भी सच है कि जो व्यक्ति अपने हृदय में उदात्त भावनाएँ लाता है, उदार होकर सोचता है, विनम्र स्वभाव से दूसरों से व्यवहार करता है वास्तव में उसी में बड़प्पन होता है। उसके महत्त्व को सारा संसार महसूस करता है।

इस सबसे भिन्न बिहारी ने दुनियादारी की एक अन्य सच्चाई को भी उद्घाटित करते हुए लिखा है कि प्रायः भले को भला-भला कहकर उपेक्षित किया जाता है। कोई भी उसे महत्त्व नहीं देता जबकि बुरे, षड्यंत्रकारी, कपटी और हानिकर व्यक्ति को सब अपने पास बुलाकर उसका स्वागत-सम्मान करते हैं ताकि वह ज्यादा हानि न पहुँचा सके। जैसे हमेशा बुरे ग्रह-नक्षत्रों को ही सदैव पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा आदि उपायों द्वारा पूरे सम्मान के साथ अनुकूल बनाने की कोशिश की जाती है। कवि की दूरदर्शिता समाज की इन खोखली मान्यताओं, और अविवेकपूर्ण जीवन-दृष्टि का पर्दाफाश करने की पूरी क्षमता रखती है। इन नीतिपूर्ण दोहों के प्रतिपाद्य से उस युग की बनावटी, स्वार्थी, संकीर्ण और असामाजिक तथा अव्यावहारिक जीवन-व्यवस्था की व्यंजना भी हो जाती है। बिहारी इन सबके विरोधी थे।

3.11 भक्ति

रीतिकाव्य में श्रृंगार और नीतिपरक छंदों के अतिरिक्त कभी-कभी भक्तिभाव का प्रदर्शन भी मिलता है। रीतिकवि भी सामान्य प्राणी थे इसलिए भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न श्रृंगारिक वातावरण से अलग हटकर कभी-कभी आत्मिक और आध्यात्मिक उत्थान के विषय में भी सोचते होंगे। इसी क्रम में उनके काव्य में भक्तिभाव के दर्शन यदा-कदा हो जाते हैं। सच बात तो यह है कि श्रृंगार, नीति, भक्ति और वीरभाव के सन्तुलित अध्ययन के आधार पर रीतिकाव्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। भक्तिभाव के छंदों में बिहारी की अत्यन्त उदार, भाव-विभोर और एकनिष्ठा को अभिव्यंजना मिलती है। हाँ, उनकी वर्णन-शैली युग की चमत्कारप्रधान प्रवृत्ति के अनुरूप व्यंजनात्मक भाषा-सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

कृष्ण और राम ने इस पृथ्वी पर अवतार लेकर अनेक अधम और दीनहीनों का उद्धार किया था। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कवि प्रगल्भतापूर्ण शैली में कहता है कि हे ईश्वर! आज तक जितने दीन-हीन प्राणियों का उद्धार तुमने किया वे सब तो तुच्छ थे। उनसे तुम्हें पतितपावन का जो यश मिला वह झूठा था। इसलिए तुम्हें ज्यादा इतराने और घमण्ड करने की आवश्यकता नहीं है। अपितु मुझ जैसे दीन-हीन व्यक्ति का उद्धार करने पर ही तुम्हें वास्तव में यश मिल सकेगा। इसी प्रकार अपने आराध्य के कलियुगी दानियों को समान चित्रित करके उनके सहज स्वभाव का आह्वान करना चाहता है। ईश्वर का स्वभाव है कि किसी भी सामान्य गुण वाले दीन-हीन भक्त का वे शीघ्र ही उद्धार करने दौड़ते थे किन्तु आजकल के दिखावटी दानियों के समान उन्हें भी भक्त के अब बड़े-बड़े गुण नजर नहीं आते। इन छंदों में कविवर बिहारी ने एक ओर परमात्मा की स्वाभाविक विशेषताओं का जिक्र किया है वहाँ

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के द्वारा संकीर्णता, स्वार्थ, प्रदर्शनशीलता जैसी झूठी और तुच्छ वृत्ति का संकेत भी दिया है। उसका मानना है कि ईश्वर पर भी आज के भौतिक समाज का प्रभाव पड़ गया है।

भक्तिपरक दोहों के द्वारा कवि यह भी प्रतिपादित करना चाहता है कि भक्ति के लिए एकनिष्ठा बहुत जरूरी है। सांसारिक चकाचौंध के कारण जीव के निष्ठा भाव में कमी आती जा रही है जो अच्छी बात नहीं है। इसलिए कवि का विचार है कि सांसारिक सुख-सुविधाओं का संग्रह, करोड़ों की धनराशि एकत्रित करने की होड़ में वह नहीं फँसेगा बल्कि सबसे श्रेष्ठ और स्थायी सम्पत्ति के आधार पर कृष्ण को अपना सर्वस्व सौंप देगा, वही उसके सांसारिक कष्ट क्लेशों का हरण करके आध्यात्मिक सम्पत्ति प्रदान करेंगे। इसी प्रकार बिहारी दुनियादारी में फँसे कर्मकाण्डी भक्तों से भिन्न अपनी इंद्रियों की एकाग्रता और मन की सच्चाई को ईश्वर प्राप्ति का साधन बतलाता है। ध्यान देने की बात यह है कि भक्तिभाव के उद्घाटन में वह कृष्ण और राम के अवतारों का एक साथ स्मरण करता है। यह उनकी सर्वांगीण और उदार भक्तिपूर्ण दृष्टि का प्रमाण है। बिहारी के भक्तिपरक छंदों की इस संतुलित और अनौपचारिक स्वच्छ दृष्टि का महत्त्व समझना चाहिए।

3.11.1 बोध प्रश्न

कोष्ठक में दिये गए सही शब्दों से रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

(क) बिहारी ने श्रृंगार के अतिरिक्त .... के दोहों की भी रचना की है। (भक्ति/वात्सल्य)

(ख) .... काव्य परम्परा में बिहारी को अद्वितीय स्थान प्राप्त है। (मुक्तक/महाकाव्य)

3.12 महत्त्वपूर्ण दोहों की व्याख्या

दोहा

3.12.1 **मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।**
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होई।।1।।

।। श्री गोपीजनवल्लभाय नमः।।

शब्दार्थ–भाव= संसार। **बाधा**= रुकावट, विघ्न। **भव-बाधा**= संसार के विघ्न। अर्थात् दुःख, द्रारिद्र तथा अनेक प्रकार की चिन्ताएँ इत्यादि, जो बाधा–रूप में उपस्थित होकर संसार के मनुष्यों को किसी उत्तम अभीष्ट का एकाग्रतापूर्वक साधन नहीं करने देतीं। स्मरण रहे कि कवि परिपाटी में दुःख दारिद्रादि का रंग काला माना जाता है। 'भव–बाधा' का अर्थ टीकाकारों ने बहुधा जन्म-मरण का दुःख लिखा है। वह भी ठीक है, पर यहाँ पर शब्द ग्रंथ के मंगलाचरण में आया है। अतः यहाँ कवि की यही प्रार्थना विशेष संगत है कि हमारे अनेक प्रकार के चिन्तादि-जनित विघ्नों का निवारण कीजिए जिससे ग्रंथ के पूर्ण होने में विघ्न न हो। **झाँई** = इस शब्द के यहाँ तीन अर्थ लिखे गये हैं–(1) परछाँही, आभा; (2) झाँकी, झलक; (3) ध्यान। प्राकृत व्याकरणों के 'ध्यह्योर्झः', इस सूत्र के अनुसार 'ध्य' के स्थान में 'झ' होकर 'ध्यान शब्द से झाँई बन जाता है। त्रिविक्रम ने अपने प्राकृत व्याकरण में 'ध्यान' शब्द का 'झाण' रूप लिखा भी है। 'न' के स्थान पर बहुधा 'यँ' भाषा के शब्दों में देखा जाता है; जैसे 'दाहिने' के स्थान

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पर 'दायें'। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत-व्याकरण में जो निम्नलिखित छंद अपभ्रंश के उदाहरण में रखा है, उसमें ध्यात्वा का अपभ्रंश रूप 'झोइवि' प्रयुक्त हुआ है।

परैं = पड़ने से। इस शब्द के भी निम्नलिखित तीन भावार्थ 'झाँईं' के तीनों अर्थों से यथाक्रम अन्वित होते हैं– (1) तन पर पड़ने से; (2) दृष्टि में पड़ने से; (3) हृदय में पड़ने से। **स्यामु** (श्याम)– यह शब्द भी यहाँ तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है– (1) श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्णचंद्र; (2) श्रीकृष्णचंद्र; (3) काले रंग वाला पदार्थ अर्थात् कल्मष, पातक, दुःख, दारिद्रादि, जिनका रंग कवि परिपाटी में काला नियत है। उपादान लक्षणा शक्ति से 'श्याम' का अर्थ श्याम रंग का पदार्थ होता है, जैसे 'सुरंग दौड़ता है' वाक्य में 'सुरंग' शब्द का अर्थ सुरंग घोड़ा होता है। फिर साहित्य की परिपाटी के अनुसार काले पदार्थ से पातक, कल्मष इत्यादि का ग्रहण हो जाता है। **हरित-दुति** (हरित-द्युति)–इस शब्द के भी इस दोहे में तीन अर्थ ग्रहण किये गये हैं–(1) हरे रंग वाला; (2) हराभरा, डहडहा अर्थात् प्रसन्न-बदन; (3) हृतद्युति, गतद्युति, हतप्रभ अर्थात् तेज-हीन, प्रभाव-शून्य, अथवा भयंकरता-रहित। द्युति का अर्थ नाटकों में भयंकर चेष्टा भी होता है। इस अर्थ में 'हरित' शब्द हृत का अपभ्रंश है।

अवतरण–अपनी सतसई की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से कवि, इस मंगलाचरण-रूप दोहे में, श्रीराधिकाजी से सांसारिक बाधा दूर करने की प्रार्थना करता है। सतसई में यद्यपि और रसों के भी दोहे हैं, तथापि प्रधानता शृंगार ही रस की है। इसके अतिरिक्त शृंगार रस में सब रसों की स्थायियाँ संचारी होकर संचरित होती हैं, जिसके कारण वह रसराज कहलाता है। अतः सतसई में शृंगार रस के मुख्य प्रवर्तक श्रीराधाकृष्ण का ही मंगलाचरण रहना समीचीन है। श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण में भी, शृंगार रस में प्रधानता श्रीराधिकाजी की ही है और कवि जिस सम्प्रदाय का अनुयायी था, उसमें भी श्रीराधिकाजी ही प्रधान मानी जाती है। अतः उसने श्रीराधिकाजी से ही अपनी 'भव-बाधा' हरने की प्रार्थना की है–

अर्थ–जिसके तन की झाँईं पड़ने में श्याम हरित-द्युति हो जाता है, "राधा नागरि सोइ" (हे वही राधा नागरी, अथवा वही राधा नागरी) मेरी भव-बाधा हरो (तुम हरो, अथवा हरें।।)

इस दोहे में 'राधा नागरि' पद संबोधन भी माना जाता है और प्रथम पुरुषवाची भी; क्योंकि 'हरौ' क्रिया का अन्वय, प्रार्थनात्मक वाक्य में, मध्यम पुरुष से भी हो सकता है और प्रथम पुरुष से भी। फिर मंगलाचरण में, आराध्य देवता से, मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष, दोनों ही रूपों में प्रार्थना करने की प्रणाली प्रशस्त है।

यह दोहा बिहारी की प्रतिभा का अत्युत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें कवि ने 'झाँईं', 'स्यामु' तथा 'हरित-दुति' शब्दों के तीन-तीन अर्थ रखकर एक ही वाक्य से तीन भाव निकालें हैं, जो तीनों ही उसके इष्टार्थ के साधक हैं।

पहला अर्थ तो इस दोहे का यह हुआ–

हे वही राधा नागरी, जिसके तन की परछाँहीं अर्थात् आभा पड़ने से श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्णचंद्र हरे रंग की द्युति वाले हो जाते हैं, मेरी भव-बाधा हरो।।

इस अर्थ से कवि श्रीराधिकाजी के शरीर की शोभा की प्रशंसा करता है कि वह ऐसे सुनहरे रंग की है कि उसकी आभा पड़ने से श्रीकृष्णचंद का श्याम रंग हरा हो जाता है। पीले तथा नीले रंगों के मेल से हरे रंग का बनना लोक-प्रसिद्ध ही है। इसी भाव को कवि ने अपने "नित प्रति एकत ही इत्यादि" दोहे में भी कहा है, और माघ का एक श्लोक भी गौर तथा श्याम छवियों के, पारस्परिक आभा

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

से, हरी हो जाने के वर्णन में है, जो कि ''नित प्रति एकत ही इत्यादि'' दोहे की टीका में उद्धृत किया है। इस भाँति उनके रूप की प्रशंसा करके कवि उनसे अपनी भव-बाधा दूर करने की विनती करता है।

अब दूसरा अर्थ नीचे लिखा जाता है–

हे वही राधा नागरी, जिसके तन की झाँकी अर्थात् झलक (आँखों में) पड़ने से (दिखाई देने से) श्रीकृष्णचन्द्र हरे-भरे अर्थात् प्रसन्न-वदन हो जाते हैं, मेरी भव-बाधा हरो।।

इस अर्थ से कवि, श्रीराधिकाजी के श्रीकृष्णचन्द्र की अत्यन्त प्रेमपात्री होने की प्रशंसा करता हुआ उनसे अपनी भव-बाधा निवारण करने की प्रार्थना करता है।।

तीसरा अर्थ यह है–

हे वही राधा नागरी, जिसके तन (रूप) का ध्यान पड़ने से (भक्त के हृदय में आने से) काले रंग वाला। (पदार्थ अर्थात् कल्मष, पातक इत्यादि) (गतद्युति अर्थात् अपनी कल्मषता से रहित) हो जाता है (अर्थात् अपना दुःखद प्रभाव छोड़ देता है), मेरी भव-बाधा (सांसारिक दुःख, दारिद्र, चिंता इत्यादि; जिनका रंग कवि-परिपाटी में काला माना जाता है) हरो।।

ऊपर के तीनों अर्थों में 'राधा नागरि' पद संबोधन माना गया है। उसे प्रथम पुरुष-वाची मानकर भी इस दोहे के यही तीनों अर्थ हो सकते हैं।

बोध प्रश्न

1. दिए गए दोहे में नायिका किसे अपनी दशा बता रही है ?

3.12.2 **फिरि-फिरि चितु उत हीं रहतु, टूटी लाज की लाव।**
अंग-अंग-छबि-झौंर मैं भयौ भौंर की नाव।।10।।

शब्दार्थ–लाव= रस्सी, नाव बाँधने की लहासी।। **लाज की लाव**– लज्जा-कृत लाव, लज्जा से बनी हुई लाव अर्थात् लज्जा रूपी लाव।। **छबि**= छवि-रूपी नद। यहाँ आरोप्यमान नद का अर्थोपक्षेपण है।। **झौंर** =यह शब्द झूमर का रूपांतर है। किसी वस्तु के झूमते हुए गोलाकृति समूह कोझूमर अथवा झोंर कहते हैं। हेमचन्द्र की देशी नाममाला में यही शब्द 'झौं डलिया' के रूप में मिलता है। उसका अर्थ रास के सदृश एक नाच है, जिसमें अनेक व्यक्ति मंडल बाँधकर नाचते हैं।

प्रसंग–पूर्वानुरागिनी नायिका अंतरगिनी सखी से अपनी स्नेह दशा कहती है–

अर्थ–(नायक के) अंग-अंग की छवि के झूमर में (फँसकर मेरा) चित्त, भँवर की (भँवर में पड़ी हुई) नाव बना हुआ, फिर-फिर कर (घूम-फिर कर), उसी ओर (नायक ही की ओर) रहता है, (और किसी ओर नहीं जाता, क्योंकि उसको नायक की ओरसे खींचने वाली) लज्जा-रूपी रस्सी टूट गई है।?

3.12.3 **जोग-जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।**
चाहत पिय-अद्वैतता काननु सेवत नैन।।13।।

शब्दार्थ–जोग–जुगति (योग-युक्ति)–योग शब्द यहाँ श्लिष्ट है। इसके दो अर्थ हैं– (1) नायक का मिलाप; (2) चित्त वृत्तियों के निरोध द्वारा जीवात्मा को परमात्मा मे लीन करना। **जुगति**=उपाय। जोग जुगति (1) प्रियतम संयोग की प्राप्ति के उपाय; (2) योग क्रिया करने के विधान।। **पिय**= इस शब्द

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

के भी दो भावार्थ हैं–(1) प्रियतम, नायक; (2) परमप्रेमास्पद परमात्मा। **अद्वैतता**=अभिन्नता। नायक पक्ष में इसका अर्थ अपने सामने से अलग न होने देना है और ब्रह्म पक्ष में ब्रह्म तथा जीव का ऐक्य भाव। **काननु**=इस शब्द के भी यहाँ दो अर्थ हैं– (1) कानों को। इस अर्थ में यह शब्द कान शब्द के संबंधकारक का बहुवचन रूप है, जो कि कर्मकारक वत् प्रयुक्त हुआ है; (2) वन। इस अर्थ में यह शब्द कानन शब्द के कर्मकारक का एकवचन रूप है।। **नैन** (नयन)– यह शब्द भी यहाँ श्लिष्ट है। इसका पहला अर्थ नेत्र है और दूसरा उचित आचार तथा संयम रखने वाले अर्थात् योगी। इन दोनों अर्थों के संयोग से 'नैन' शब्द में श्लिष्टपद मूलक रूपक हुआ।।

प्रसंग–नवयौवना मुग्धा के नेत्रों के सौंदर्य तथा बढ़ाव को देखकर सखियाँ, उनकी प्रशंसा करती हुई, उससे परिहासात्मक तथा उत्साहवर्द्धक वाक्य कहती हैं–

अर्थ–(अब तेरे) नयन-रूपी योगी 'काननु' (श्रवण-रूपी वन) का सेवन करने लगे हैं, मानो मदन-रूपी महायोगी के द्वारा योग (1. संयोग, 2. योग-क्रियाओं) की सब युक्तियाँ सिखाए हुए (ये) प्रिय-अद्वैतता (1. प्रियतम से अलग न होना; 2. परमात्मा से एकता) चाहते हैं (एवं इनकी शोभा पर रीझकर नायक सदैव तेरे सामने उपस्थित रहेगा)।।

यह सखियों का परिहास उसी प्रकार का है, जैसा सम-वयस्क युवतियाँ आपस में किया करती हैं कि अब तो मेरे मन में और ही चाव बढ़ने लगे हैं, और तेरा प्रियतम तुझ पर मोहित हो रहा है।।

बोध प्रश्न

1. उपर्युक्त दोहे में वर्णित नायिका की दशा का स्पष्टीकरण एक पंक्ति में कीजिए?

3.12.4 **कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।**
भरे भौन में करत हैं, नैननु हीं सब बात।।32।।

शब्दार्थ–मिलत–मेल कर लेते हैं। **खिलत**=खिल उठते हैं, प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

प्रसंग–नायक और नायिका की चातुरी से, आँखों की चेष्टा के द्वारा ही हृदय के सब भावों को परस्पर प्रकट कर देने का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से करती है–

अर्थ–(देखा, कैसी चातुरी से ये दोनों गुरुजन से) भरे हुए भवन में आँखों ही में सब (अपने अभीष्ट की) बात कर लेते हैं (अपने अभिप्राय परस्पर प्रकट कर देते हैं) (कभी कुछ) कहते हैं, (कभी) नटते हैं (निषेध करते हैं), (कभी) रीझते हैं, (कभी) खीझते हैं, (कभी फिर) मेल कर लेते हैं, (कभी) खिलते हैं (प्रफुल्लित होते हैं), (और कभी) लजाते हैं।

अथवा पूर्वार्द्ध का अर्थ यों किया जाये–

(नायक कुछ) कहता है (रति की प्रार्थना करता है), (जिस पर नायिका 'मन में भावै, मुड़ी हिलावै' न्याय से) नटती है (निषेध करती है)। (नायक उसकी इस निषेध करने की चेष्टा पर) रीझता है, (तब नायिका उसकी रीझने की चेष्टा पर बनावट से) खीझती है। (फिर दोनों) मेल कर लेते हैं, (जिस पर नायक,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

नायिका के चटपट खीझ छोड़ देने पर,) हँस देता है, (और नायिका उसके हँस देने पर) लज्जित हो जाती है।

बोध प्रश्न

(क) उपर्युक्त दोहे में किसकी प्रेमाभिव्यक्ति का वर्णन कवि करता है।

(ख) प्रस्तुत दोहे की भाषा की दृष्टि से क्या विशेषता है।

3.13 निष्कर्ष

बिहारी श्रृंगार के श्रेष्ठतम कवियों में से है। बिहारी ने कोई काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ नहीं लिखा लेकिन उनके एक मात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई 'में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन किया गया है। बिहारी की सौंदर्य चेतना का स्वरूप अभिजात होने के साथ -साथ लोक से भी जुड़ा हुआ है। बिहारी को लोक का गहरा अनुभव है। मुक्तक काव्य के उत्कर्ष का निदर्शन बिहारी के दोहों में मिलता है।

3.14 संदर्भ ग्रन्थ

- *कविवर बिहारी*– जगन्नाथदास रत्नाकर
- *बिहारी*– विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
- *बिहारी और उनका साहित्य*– डॉ. हरवंश लाल तथा डॉ. परमानंद शास्त्री

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इकाई-4

आधुनिक हिंदी कविता

1. माखनलाल चतुर्वेदी : बेटी की विदाई

लेखक–डॉ. रामप्रकाश
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

1.0 अधिगम उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 कवि–परिचय
1.3 जीवन–वृत्त
1.4 व्यक्तित्व
1.5 रचनाएँ
1.6 काव्यकला
1.7 विचारधारा
1.8 कविता का सार
1.9 कविता – व्याख्या
1.10 कठिन – शब्द
1.11 बोध प्रश्न
1.12 संदर्भ ग्रंथ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय के पढ़ने के उपरान्त आप

- माखनलाल चतुर्वेदी के जीवन का परिचय प्राप्त करेंगे।
- माखनलाल चतुर्वेदी के साहित्य–संसार को जानेंगे।
- 'बेटी की विदा' में पिता तथा बेटी की संवेदनाओं को समझेंगे।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.1 प्रस्तावना

माखन लाल चतुर्वेदी भारत के प्रसिद्ध कवि, लेखक और पत्रकार थे। इनकी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुईं। सरल भाषा और ओजपूर्ण भावनाओं के वे अनूठे रचनाकार थे।

1.2 कवि–परिचय

साहित्य–जगत में 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात कविवर माखनलाल चतुर्वेदी आधुनिक राष्ट्रीय काव्य–धारा में अग्रगण्य हैं। एक प्रेमी–भक्त का हृदय पाकर वे कर्मठता एवं दृढ़ संकल्प शक्ति के मूर्तिमान प्रतीक थे।

1.3 जीवन–वृत्त

माखनलाल चतुर्वेदी 4 अप्रैल, सन् 1889 को ग्राम बाबई (होशंगाबाद) में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता निर्धन थे, अतः उन्हें बचपन में भारी गरीबी का सामना करना पड़ा। बालक चतुर्वेदी पर उनकी बुआ, माँ और पिता के व्यक्तित्व का भारी प्रभाव पड़ा। बालक माखनलाल की शिक्षा गाँव की प्रारम्भिक शाला में हुई, जहां उनके पिता पं. नन्दलाल प्रधानाध्यापक थे। प्राइमरी परीक्षा पास करने के बाद उन्हें अंग्रेजी सीखने–मालवा भेजा गया लेकिन पूरी फीस न देने के कारण वापस बुलाना पड़ा। तब वे अपने दादा जी के पास संस्कृत पाठशाला में भेजे गए, जहाँ उन्होंने संस्कृत का गहन अध्ययन किया। नानदेर से संस्कृत की शिक्षा समाप्त कर वे सन् 1903 के अन्त में बाबई लौटे। इसके कुछ समय के पश्चात् इनकी शादी हुई।

मिडिल परीक्षा पास करके कवि माखनलाल क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आये। सन् 1903 में उन्होंने कलकत्ता कांग्रेस में भाग लिया। शिक्षक–प्रशिक्षण की परीक्षा उतीर्ण करके वे अध्यापक बने। कविता करना उन्होंने बहुत पहले से ही प्रारम्भ कर दिया था और क्रमशः उसमें निखार आता गया। खंडवा में अध्यापकी करते समय वे सैयद अली 'मीर' तथा जगननाथ प्रसाद 'भानु' आदि के निकट सम्पर्क में आए। सन् 1913 में अध्यापकी से त्यागपत्र देकर माखनलाल ने 'प्रभा' नामक पत्रिका का सह–संपादन आरम्भ कर दिया। इसके बाद कुछ ही वर्षों में कवि की प्रतिभा चमक उठी। 1 जनवरी, सन् 1915 में उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। लेकिन निर्धनता के कारण उनका दाह–संस्कार उधार पैसे लेकर किया गया। प्रसिद्ध पत्रकार और दैनिक प्रताप (कानपुर) के संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी तथा सभी पारिवारिक जनों के आग्रह को ठुकराकर उन्होंने फिर विवाह नहीं किया। धीरे–धीरे वे राजनीति में रंगते चले गए और कई बार ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बंदीगृह में डाले गये। राजनीति में सक्रिय हिस्सा लेते हुए भी उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचनाएं कीं और हिन्दी–सेवा करते रहे। साहित्य–सेवा के उपलक्ष्य में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया और सागर विश्वविद्यालय ने डी.लिट. की उपाधि से सम्मानित किया। माखनलाल चतुर्वेदी का 75 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.4.2 बोध प्रश्न

(क) प्रश्नों का उत्तर एक पंक्ति में दीजिए–

1. माखन लाल चतुर्वेदी का अन्य नाम क्या था?
2. माखन लाल चतुर्वेदी कौन–सी शक्ति के प्रतीक थे?

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए–

1. माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म 4 जून 1989 को हुआ था। (...............)
2. माखन लाल चतुर्वेदी की शिक्षा शहर में हुई थी। (...............)
3. मिड़िल परीक्षा पास करके माखन लाल चतुर्वेदी क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये। (...............)
4. माखनलाल चतुर्वेदी को 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया। (...............)
5. माखन लाल चतुर्वेदी जीवन भर अविवाहित रहे। (...............)

1.4 व्यक्तित्व

माखनलाल चतुर्वेदी सौम्य प्रकृति, गम्भीर स्वभाव वाले, कष्टसहिष्णु एवं दृढ़ राष्ट्रवादी थे। वे हिन्दी और हिन्दुस्तान के लिए सदैव समर्पित रहे। उनका व्यक्तित्व जितना प्रखर था उतना अडिग। क्रांतिकारी होकर भी वे अहिंसक गाँधीवादी बने रह सके और अपने साहित्य को भी उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति का साधन बनाया। उनके सम्बन्ध में यह अभिमत उपयुक्त है कि–''ये शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विह्वल भक्त तथा विचारों से क्रांतिकारी हैं। परन्तु साहित्य के धरातल पर वे चारों घुल–मिलकर एकाकार हो जाते हैं।'' राष्ट्रीय कविताओं के लिए उन्होंने 'एक भारतीय आत्मा' उपनाम चुना था।

1.5 रचनाएँ

चतुर्वेदी जी के कविता–संग्रह में 'हिमकिरीटनी', 'हिमतरंगिणी', 'माता', 'युगचरण', 'समर्पण', 'बीजुरी काजल आंज रही' एवं 'मरणज्वार' का विशेष महत्त्व है। उन्होंने कहानी, नाटक, निबन्ध, गद्य काव्य आदि सभी विद्याओं में लिखा है। इनका 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक हिन्दी में अधिक प्रसिद्ध हुआ किन्तु कहानी–संग्रह 'कला का अनुवाद' अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ। गद्य काव्य 'साहित्य–देवता' की प्रतिष्ठा काफी हुई है। उनके निबन्ध संग्रहों में 'समय के पाँव', 'चिन्तक की लाचारी', एवं 'अमीर गरीब इरादे' अधिक प्रसिद्ध हैं।

1.6 काव्यकला

माखनलाल चतुर्वेदी ने अधिकांश कविताएँ साम्राज्यवाद–विरोधी भावनाओं से प्रेरित होकर लिखी है। राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना सक्रिय योग देकर चतुर्वेदी जी जिस देश–भक्ति का परिचय देते रहे, उसी भावना को हम उनके काव्य में भी देखते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के समान वे भी भारतवासियों को उनके कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व का ज्ञान कराने के लिए पुराने आदर्शों और घटनाओं को चित्रित करते हैं। अतः

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उन्हें गुप्त जी के समान ही राष्ट्रीय कवि माना गया है, किन्तु राष्ट्रीयता उनके काव्य की सर्वप्रमुख प्रवृत्ति होते हुए भी एकमात्र प्रवत्ति नहीं है। वे अपने काव्य में आध्यात्मिक भावनाओं को भी प्रकट करते हैं। इन कविताओं को देखकर कुछ आलोचकों ने उनके काव्य में छायावादी भाव–संस्कार का होना स्वीकार किया है। उनकी कहानियों में भावावेग, तल्लीनता और आत्मीयता सर्वत्र मिलती है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ खूब लोक–प्रिय हुईं।

त्याग और बलिदान की भावनाएँ उनके काव्य में सर्वत्र मिलती है। वे अनेक भावों को एक साथ मिलकर वेदना के सहारे उनमें ऐसी तड़पन भर देते हैं कि पाठक उनके भाव के साथ ही बहने लगते हैं–

मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ में तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जाते वीर अनेक।

इसमें राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए मर मिटने वाले एक साधारण सिपाही के माध्यम से मातृभूमि को स्वतन्त्र करने वाली बलिदान–भावना का संकेत है। उनकी कविताओं में भगतसिंह और यतीन्द्रनाथ की क्रान्तिकारी विचारधारा और गांधीवादी जन–आन्दोलन दोनों का संकेत है।

भावना में माखनलाल जी अवश्य ही रोमांटिक विद्रोही हैं, पर विचार के स्तर पर वे आदर्शवादी और अध्यात्मवादी है। इसलिए उनका काव्य वैष्णव आस्तिकता से ओत–प्रोत है।

माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में ऐसी खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है जो सामान्य नागरिक के जीवन में व्यवहृत होती है। इसमें तद्‌भव और देशज शब्दों के साथ उर्दू की प्रचलित शब्दावली को भी स्थान मिला है। उनकी भाषा भावानुकूल तथा चित्रात्मकता के गुणों से ओत–प्रोत है। वे अलंकारों का सहज और स्वभाविक प्रयोग करना ही उचित मानते हैं। प्रयत्न–पूर्वक अलंकारों को काव्य पर लादना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है। अलंकार जहाँ कहीं आए हैं वहाँ उनसे भावोत्कर्ष ही हुआ है। उदाहरणस्वरूप नीचे की पंक्ति में रूपक अलंकार का एक नव्यतर प्रयोग देखने योग्य है–

'आज नयन के बंगले में संकेत पाहुने आए री सखि।'

माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में लोकोक्तियों और मुहावरों के सहज–स्वाभाविक प्रयोग हुए हैं। इसी लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का उनके काव्य में विशेष स्थान है। नीचे की पंक्तियाँ उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की जा सकती है–

तू भुजा उठा दे हे जयी!
जग चक्कर खाने लगे,
दुखियों के हिय शीतल बनें,
जगतीतल हुलसाने लगे।

चतुर्वेदी जी छन्द को काव्य का ऐसा माध्यम मानते हैं जो कवि के लिए साधन मात्र होता है, साध्य नहीं। इस प्रकार चतुर्वेदी ने भावपक्ष का समन्वय प्रस्तुत करके उत्कृष्ट काव्य–रचना की है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.6.2 बोध प्रश्न

(क) एक पंक्ति में प्रश्नों के उत्तर लिखिए–

1. माखन लाल चतुर्वेदी के कविता–संग्रहों का नाम बताएं?
2. माखन लाल चतुर्वेदी ने कौन–कौन सी विधाओं में लिखा?
3. माखन लाल चतुर्वेदी का कौन–सा नाटक प्रसिद्ध हुआ?

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

1. माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी और .... के लिए सदैव समर्पित रहे। (अंग्रेजी/हिन्दुस्तान)
2. क्रान्तिकारी होकर भी वे .... गाँधीवादी बने रह सके। (हिंसक/अहिंसक)
3. राष्ट्रीय कविताओं के लिए उन्होंने एक भारतीय .... उपनाम चुना था। (आत्मा/परमात्मा)

1.7 विचारधारा

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रवादी सामाजिक कार्यकर्ता होने के कारण सदैव देश–प्रेम को अन्य भावनाओं की अपेक्षा सर्वोपरि महत्त्व देते रहे। हिन्दू धर्मावलम्बी और उसमें भी सनातनी होने पर भी संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना से वे बिल्कुल मुक्त थे। भाषा, प्रान्त और मजहब की सीमाओं को वे सदैव अस्वीकार करते रहे। महात्मा गाँधी की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक मान्यताएँ उन्हें स्वीकृत रहीं, किन्तु वे भारतीय सांस्कृतिक परम्परा को अत्यधिक महत्व देते थे। अपने विचारों और मान्यताओं के प्रति उनकी गहरी और दृढ़ आस्था थी।

1.7.1 बोध प्रश्न

एक पंक्ति में उत्तर दीजिए –

1. माखन लाल चतुर्वेदी का काव्य कौन सी भावनाओं से पूर्ण है?
2. माखन लाल चतुर्वेदी किन सीमाओं को अस्वीकार करते हैं।
3. माखन लाल चतुर्वेदी किस सांस्कृतिक परम्परा को अत्यधिक महत्त्व देते थे?
4. माखन लाल चतुर्वेदी के प्रमुख काव्य–संग्रहों के नाम लिखिए।
5. माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित एक नाटक का नाम लिखिए।

1.8 कविता का सार

'बेटी की बिदा' कविता में विवाहोपरान्त विदाई के समय एक पिता के मन में आने वाले विचारों तथा संवेदनाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। पुत्री के ससुराल जाते समय पिता की मनोस्थिति का सजीव चित्रण हुआ है। कवि समाज से प्रश्न करता है कि जिस घर–परिवार में बेटी ने जन्म लिया वह कैसे

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

उसकी यादों से जुदा हो सकता है। समाज के रीति–रिवाजों के समक्ष कवि एक लाचार पिता की भाँति दुआओं और आशीर्वाद के अलावा अपनी बेटी को कुछ नहीं दे सकता। कविता में कवि की इसी मार्मिक संवेदना को व्यक्त किया गया है। 'विदाई की बेला' कितना मार्मिक समय होता है, यह इस कविता में दिखलाया गया है।

1.9 कविता–व्याख्या

(क) आज बेटी जा रही है।

मिलन और वियोग की दुनिया नवीन बसा रही हे।

मिलन यह जीवन प्रकाश / वियोग यह युग का अँधेरा

उभय दिशि कादम्बिनी, अपना अमृत बरसा रही है।

संदर्भ एवं प्रसंग– उपर्युक्त 'पद्य' माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित हैं यह माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित 'समर्पण' काव्य संग्रह में संकलित है। इस पद्यांश में कवि ने बेटी के पिता से वियोग तथा एक नए परिवार से मिलन के विषय में लिखा है।

व्याख्या– कवि अपने मनोभावों को प्रकट करते हुए लिखते हैं कि पिता ने जिस बेटी को जन्म दिया, पाल–पोसकर बड़ा किया, सुख–दुख को अनुभव किया आज वह बेटी उससे हाथ छुड़ा कर ससुराल जा रही है। एक तरफ तो पिया मिलन तथा नई दुनिया बसाने की चाह है तो वहीं दूसरी तरफ माता–पिता, भाई–बहन, सखी–सहेलियों से बिछुड़ने का गम भी है। दोनों अद्भुत स्थितियां इस समय बनी हुई है। मिलन से जहां एक तरफ जीवन में नया प्रकाश नई उम्मीदें, नई खुशियाँ होंगी वहीं बिछुड़ने से पिता के घर में अंधकार के युग का आरंभ हो रहा है। खुशी और गम दोनों, दोनों दिशाओं से बादलों की पंक्ति की भाँति अपना आशीर्वाद रूपी अमृत बरसा रहे है। खुशहाल दाम्पत्य जीवन के लिए मायके तथा ससुराल पक्ष दोनों तरफ से आशीर्वाद दिया जा रहा है।

विशेष–

- खड़ी बोली का प्रयोग
- वात्सल्य रस
- ससुराल पक्ष तथा पिता पक्ष की संवेदनाओं का अदभुत सामंजस्य है।

(ख) यह क्या, कि उस घर में बजे थे, वे तुम्हारे प्रथम पैंजन,
यह क्या, कि इस आँगन सुने थे, वे सजीले मृदुल रूनझुन
यह क्या, कि इस वीथी तुम्हारे तोतले से बोल फूटे,
यह क्या, कि इस वैभव बने थे, चित्र हँसते और रूठे,
आज यादों का खजाना, याद भर रह जाएगा क्या?
यह मधुर प्रत्यक्ष, सपनों के बहाने जाएगा क्या?

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

संदर्भ एवं प्रसंग—उपर्युक्त पद्य श्री माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित है। यह समर्पण काव्य संग्रह में संकलित है। पिता को अपनी पुत्री द्वारा घर में बिताए गए बपचन की यादें परेशान कर रही है। कवि पिता के रूप में पुत्री के बचपन की सभी अठखेलियों को याद करता है। कैसे पुत्री ने पहला कदम रखा, पहले शब्द बोले यह सब यादें एक चित्र की भाँति कवि की आँखों के सामने चल रही है।

व्याख्या—कवि असमंजस की स्थिति में प्रश्न करता है कि यह कैसे हो गया? जिस घर में तुमने जन्म लिया, लड़खड़ाते कदमों से चलना सीखा, जिस घर में शैशवावस्था में पहली बार तुम्हारे पैरों की पायल की आवाज़ सुनाई दी थी वह कैसे पराया हो गया? यही वह आँगन है जिसने सबसे पहले तुम्हारी पायल के घुंघरूओं की मीठी आवाज़ सुनी थी। यही वह स्थान है, जहां तुमने तुतलाते हुए बोलने का पहला प्रयास किया था। तुम्हारे इस तुतलाने पर हमारे अंदर वात्सल्य की धारा उमड़ पड़ी थी। तुम्हारे रूठने और हँसने की यादों के चित्रों से ही इस घर का वैभव बना था, अर्थात् तुम्हारी सभी क्रियाएं ही इस घर का रूप–सौंदर्य है। अब क्या यह घर इन यादों का खज़ाना मात्र रह जाएगा? क्या अब यह सब सपनों में ही रह जाएगा अर्थात् तुम्हारी अठखेलियों को प्रत्यक्ष रूप में देखकर जो एक वात्सल्य का मधुर भाव उत्पन्न होता था वह अब स्वप्न–मात्र रह जाएगा?

विशेष— बचपन की मधुर स्मृतियाँ बेटी की विदाई पर कसक का रूप ले लेती हैं।

- अभिधा शब्द शक्ति
- अनुप्रास, स्मरण अलंकार
- भाषा–खड़ी बोली

(ग) गोदी के बरसों को धीरे–धीरे भूल चली हो रानी,
बचपन की मधुरीली कूकों के प्रतिकूल चली हो रानी,
छोड़ जाह्नवी कूल, नेहधारा के कूल चली हो रानी,
मैंने झूला बाँधा है, अपने घर झूल चली हो रानी।

प्रसंग एवं संदर्भ – पिता का भावुक मन पुत्री के बचपन की, अतीत की घटनाओं में खोकर प्रश्न करता है कि क्या तुम सब भूल चुकी हो?

व्याख्या– कवि अपनी पुत्री से प्रश्न करता है कि क्या तुम अपने बचपन के बिताए हुए पलों को भूल चुकी हो। घर–परिवार में सबकी गोदों में बिताए हुए वात्सल्य और प्रेम के पलों को धीरे–धीरे भूल गई हो। आलिंगन के आत्मीय क्षण जो वात्सल्य से भरे हृदय के थे, उनको तुमने भुला दिया है। बचपन में जो तुम तुतलाती बोली के साथ मधुरता से अपनी बात कहती थी आज विदाई की इस बेला में तुम उसके विपरीत आचरण कर रही हो, अर्थात् पुत्री का मन पिता से दूर जाने पर अत्यंत व्यथित हो रहा है, जिसके कारण आवाज भारी तथा रूखी हो रही है। गंगा नदी का वह सौंदर्यमयी किनारा है जहां अपना सुख–दुख सब बाँटते हैं। उसे छोड़ कर अब तुम प्रेम रूपी धारा के पास जा रही हो। मैंने जो संरक्षण रूपी झूला तुम्हारे लिए अपने आचरण के द्वारा बाँधा था अब तुम उससे मुक्त हो रही हो, अब तुम अपने घर अर्थात् अपने पति के संरक्षण में जा रही हो।

विशेष – पिता–पुत्री की संवेदनाओं का मार्मिक चित्रण।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

- प्रश्नात्मक शैली
- प्रकृति चित्रण

(घ) मेरा गर्व, समय के चरणों पर कितना बेबस लोटा है,
मेरा वैभव, प्रभु की आज्ञा पर कितना, कितना छोटा है?
आज उसाँस मधुर लगती है, और साँस कटु है, भारी है
तेरे बिदा दिवस पर, हिम्मत ने कैसी हिम्मत हारी है।

प्रसंग संदर्भ— एक पिता की हिम्मत कैसे नियति के समक्ष हार जाती है इस पद्यांश में उस मनोःस्थिति का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—कवि पिता के रूप में कहते हैं कि हे पुत्री, तुम मेरा गर्व, हो, अभिमान हो परंतु समय और समाज की परिस्थितियों में फँस कर आज मैं बेबस होकर तुम्हें अपने से दूर कर रहा है। मेरा यह धन दौलत रूपी संसार, यह ऐश्वर्य सब कुछ प्रभु की आज्ञा के सामने अत्यंत छोटा है। अर्थात् तुम्हें अपने पास रखने का कोई भी उपाय मेरे पास नहीं है। समय के समक्ष मैं अत्यंत तुच्छ प्राणी मात्र रह गया हूँ। हे प्रिय पुत्री आज तुम्हें बिदा करते हुए जो मेरा मन भारी हो रहा है। सिसकियाँ जो तुम्हें मुझसे अलग होने के कारण बराबर चल रही है वे मधुर लग रही है। सांस जो जीवन जीने के लिए आवश्यक है, वह कड़वी लग रही है अर्थात् तुमसे बिछुड़ कर जीवन जीने का कोई अर्थ मुझे नज़र नहीं आ रहा है। तुम्हारी विदाई के अवसर पर मेरी स्थिति अत्यंत दीन हो गई हैं सांसारिक रीति–रिवाजों के समक्ष मैं हार चुका हूं। मेरी सारी हिम्मत अब खत्म हो चुकी है। मैं चाह कर भी तुम्हें अपने पास नहीं रोक पा रहा हूँ।

विशेष — पिता के हृदय की मार्मिक संवेदनाओं का चित्रण किया गया है।

- व्यक्ति परिस्थितियों के सामने कैसे हारा हुआ महसूस करता है, यह सूक्ष्म रूप से दिखाया गया है।
- अभिधा शब्द शक्ति।
- अनुप्रास, स्मरण, अलंकार।
- शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली

(च) कैसा पागलपन है, मैं बेटी को भी कहता हूँ बेटा,
कड़ुवे–मीठे स्वाद विश्व के स्वागत कर, सहता हूँ बेटा,
तुझे बिदा कर एकाकी अपमानित–सा रहता हूँ बेटा,
दो आँसू आ गये, समझता हूँ उनमें बहता हूँ बेटा।

संदर्भ— इस पद्यांश में कहा गया कि मैंने कभी यह सोचा नहीं कि तुम मेरी बेटी हो जो एक दिन बिदा होकर मुझसे दूर हो जाएगी। मैंने हमेशा तुम्हें बेटे के रूप में ही देखा।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

व्याख्या– कवि कहते हैं कि मैं कैसा पागल व्यक्ति हूँ। मैं अपनी बेटी को बेटा कहता रहा। और यह भूल गया कि एक दिन तुम्हें बिदा होकर दूसरे घर जाना है। एक लाचार पिता का मन अत्यंत संवेदनशील हो रहा है। दुख–सुख से भरे सारे पल मैने तुम्हारे सहारे ही जी जिए। अर्थात् संसार में जीवन जीते हुए जो कड़वे या मीठे अनुभव हुए उनको मैंने तुम्हारे पालन–पोषण के बहाने भुला दिया। अब तुम्हारे विवाह के अवसर पर मैं अकेला हो गया हूं। तुम्हें बिदा करते हुए मैं अत्यंत लाचार बेबस तथा अपमानित सा महसूस कर रहा हूं कि मैं तुझे चाह कर भी अपने साथ नहीं रख पा रहा हूं। और इस अत्यंत मार्मिक क्षण में जब तुम अपने जीवन साथी के साथ सुनहरे भविष्य को सजाने जा रही हो तब मेरी आंखों से जो आंसू बह रहे हैं उनमें मैं सम्पूर्ण बह रहा हूँ।

विशेष :

- बेटी की विदा के समय पिता की असहाय स्थिति का वर्णन
- भाषा साहित्यिक खड़ी बोली।

(छ) बेटा आज बिदा है तेरी, बेटी आत्मसमर्पण है यह
जो बेबस है, जो ताड़ित है, उस मानव ही का प्रण है यह।
सावन आवेगा, क्या बोलूँगा हरियाली से कल्याणी?
भाई–बहिन मचल जायेंगे, ला दो घर की, जीजी रानी,
मेंहदी और महावर मानो सिसक सिसक मनुहार करेगी,
बूढ़ी सिसक रही सपनों में, यादें किसको प्यार करेगी?

संदर्भ एवं प्रसंग– उपर्युक्त 'पद्य' माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित हैं यह माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित 'समर्पण' काव्य संग्रह में संकलित है। इस पद्यांश में कवि ने पिता से वियोग तथा एक नए परिवार के मिलन के विषय में लिखा है।

व्याख्या– कवि कहता है बेटा, जब आज मैं तुझे बिदा कर रहा हूँ तो अपनी सारी शक्ति को समेट कर हिम्मत कर रहा हूँ। तेरे सुखद जीवन की मंगलकामना करता हुआ मैं आत्मसमर्पण कर रहा हूं अर्थात् अपनी पुत्री रूपी जीवन की सबसे मूल्यवान चीज तुम्हारे जीवन साथी को सौंप रहा हूं। मैं सांसारिक परंपराओं के आगे बेबस हूं, लाचार हूँ मुझे ऐसा महसूस हो रहा है मानो किसी प्रण को तोड़ने का दंड मुझे दिया जा रहा हो अर्थात् हे प्रिय पुत्री तुम्हारे साथ रहने का जो प्रण मैंने लिया था वह टूट रहा है, जिसके कारण मैं अत्यंत लाचार हो रहा हूँ। जब सावन का मौसम आएगा,चारो तरफ हरियाली होगी, तब छोटे–भाई बहन तुम्हें पुकारेंगे तो मैं उन्हें क्या जवाब दूंगा? मेंहदी और पांवों पर लगने वाला महावर भी तेरा इंतजार कर रोएँगे और मन ही मन तुझे पुकारेंगे, अर्थात् याद करेंगे तो मैं तुझे कैसे लेकर आऊँगा? मैं उन्हें कैसे समझाऊँगा? तुम्हारी माँ जब सिसक–सिसक सपनों में तुम्हें याद करेगी तो मैं कैसे उसको समझाऊँगा?

विशेष– प्रकृति का मानवीकरण

- पूर्वदीप्ति शैली
- भाषा साहित्यिक खड़ी बोली

(ज) दीवाली आवेगी, होली आवेगी, आवेंगे उत्सव,

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

'जीजी रानी साथ रहेंगी' बच्चों के? यह कैसे सम्भव?
भाई के जी में उठेगी कसक, सखी सिसकार उठेगी,
माँ के जी में ज्वार उठेगी, बहिन कहीं पुकार उठेगी!

संदर्भ एवं प्रसंग— उपर्युक्त 'पद्य' माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित हैं यह माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित 'समर्पण' काव्य संग्रह में संकलित है। इस पद्यांश में कवि ने पिता से वियोग तथा एक नए परिवार के मिलन के विषय में लिखा है।

व्यख्या— कवि याद करते हुए लिखते हैं कि होली, दीवाली के उत्सव जब आएंगे तो बच्चे अर्थात् छोटे भाई—बहन अपनी जीजी रानी को याद करेंगे। जो शरारतें, अठखेलियां तुम सब मिलकर करते थे उन्हें याद करके भाई के मन में ठीस उठेगी, सहेली भी अकेलेपन के कारण सिसकियां भरेगी, माँ हर्षोल्लास के दिन मन ही मन ज्वार भाटे की भांति उमड़—उमड़ कर तुम्हें याद करके दुखी होगी, बहन बार—बार तुम्हें पुकार रही होगी, ऐसे में मैं क्या कर सकूँगा? मैं तुम्हें घर में साथ ले आऊँ यह अब कैसे सम्भव होगा? मैं भी भावुक होकर उनके साथ रोने लगूंगा अर्थात् बेटी की चंचलता और चपलता न होने के कारण मायका सूना और बेजान हो जाएगा।

विशेष— संवेदनापूर्ण मार्मिक दृश्य

- भाषा — खड़ी बोली
- स्मरण अलंकार

(झ) तब क्या होगा झूमझूम जब बादल बरस उठेंगे रानी?
कौन कहेगा उठो अरुण तुम सुनो, और मैं कहूं कहानी,
कैसे चाचाजी बहलावें, चाची कैसे बाट निहारें?
कैसे अंडे मिलें लौटकर, चिड़ियां कैसे पंख पसारे?
आज बासन्ती दृगों बरसात जैसे हा रही है।
मिलन और वियोग की दुनियाँ नवीन बसा रही है।

आज बेटी जा रही है।

संदर्भ एवं प्रसंग— उपर्युक्त 'पद्य' माखन लाल चतुर्वेदी द्वारा रचित 'समर्पण' काव्य संग्रह में संकलित है। इस पद्यांश में कवि ने पिता से वियोग तथा एक नए परिवार के मिलन के विषय में लिखा है।

व्यख्या— कवि अपने मन की व्यथा प्रकट करते हुए लिखते हैं कि जब तुम ससुराल चली जाओगी तब कौन इन झूम—झूम कर बरसते हुए बादलों का आनंद लेगा। सूर्योदय के समय कौन मुझे नींद से जगाएगा तथा अपनी बात बताएगा। तुम्हारे चाचा जी जो तुम्हारे साथ खेलकर अपना मन बहलाते थे अब कौन उनके साथ अठखेलियां करेगा? चाची भी अब किसका इंतजार करेगी? यह संसार की बुरी परंपरा है। जिस प्रकार अंडों से निकलकर एक बार चूजे उड़ जाते हैं फिर चिड़ियां चाहे कितने भी पंख पसार लें लेकिन चूजे वापस अंडे में नहीं आते हैं, उसी प्रकार एक बार बिटिया की विदाई होने

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

पर लाख बार याद करने व बुलाने पर बिटिया वापिस अपने घर नहीं लौट पाती। हे प्यारी बेटी जब मैं तुझे ससुराल भेज रहा हूं तो हर आंख में तुम्हारे लिए बसंती सपने हैं। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे आने वाले जीवन की मंगलकामना कर रहा है लेकिन तुम्हारे वियोग के कारण आंखों से लगातार बहने वाले आंसुओं के कारण बरसात का मौसम बना हुआ है। हे प्रिय पुत्री आज एक तरफ तुम प्रणय–सूत्र में बंधकर नई दुनिया बसा रही हो साथ ही अपने घर से पराई हो रही है। एक का मिलन तथा दूसरे के बिछुड़ने की यह परंपरा हमेशा से चली आ रही है। बेटी अपनी ससुराल जा रही हैं।

विशेष– बेटी के विरह का दुःख

- प्रकृति का मानवीकरण
- अनुप्रास अलंकार
- प्रश्नात्मक शैली
- भाषा–शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली

1.10 कठिन–शब्द

वियोग – बिछुड़ना
उभय – दोनों
दिशि – दिशाएँ
पैंजन – पायल
मृदुल – मीठा
वीथी – स्थान, मार्ग
प्रत्यक्ष – समक्ष, सामने
उसाँस – सिसकियाँ
एकाकी – अकेले
अरूण – सूर्य
बाट – इंतजार
दृगों – आँखों से
जाह्नवी – गंगा नदी
कूल – किनारा

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1.11 कविता से संबंधित बोध प्रश्न

1. 'बेटी की विदा' कविता में कवि असहाय और हारा हुआ क्यों महसूस कर रहा है?
2. 'बेटी की विदा' कविता में प्रकृति की क्या भूमिका है?
3. 'बेटी की विदा' कविता में कवि किसे याद कर रहा है?
4. 'बेटी की विदा' में कौन अपने दुख का वर्णन कर रहा है।
5. यहाँ किसके जाने से कवि अकेला महसूस कर रहा है?
6. इस कविता में किसको सुखी जीवन की दुआएँ दी जा रही हैं?

1.12 सारांश

माखन लाल चतुर्वेदी का नाम आधुनिक राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रमुख कवियों में अग्रगण्य है। वस्तुतः उनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' उनके जीवन और व्यक्तित्व को उजागर करने वाला है। वे सच्चे अर्थों में राष्ट्र के उपासक थे। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मन में अटूट श्रृद्धा थी जो उनके काव्य में जहाँ–तहाँ फूट पड़ती है। अपने काव्य के द्वारा भी वस्तुतः वे राष्ट्र के प्रति प्रेमोद्गार व्यक्त करते हैं।

1.13 संदर्भ ग्रन्थ

- *माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व और कृतित्व* – कृष्णदेव शर्मा
- *माखनलाल चतुर्वेदी* – श्रीकांत जोशी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
- *माखनलाल चतुर्वेदी : रचना–संचयन* – कृष्णदत्त पालीवाल (संपादक), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2. जयशंकर प्रसाद

लेखक—डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 जीवन-वृत्त
2.3 कवि-परिचय
    2.3.1 बोध प्रश्न
    2.3.2 रिक्त स्थान
2.4 व्यक्तित्व
    2.4.1 बोध प्रश्न
    2.4.2 सही/ गलत
    2.4.3 रिक्त स्थान
2.5 जयशंकरप्रसाद की काव्य कला
    2.4.1 बोध प्रश्न
    2.4.2 रिक्त स्थान
2.6 जयशंकर प्रसाद की विचारधारा
    2.6.1 बोध प्रश्न
2.7 कवि का महत्व एवं हिंदी साहित्य में योगदान
2.8 प्रतिपाद्य
    2.8.1 बोध प्रश्न
2.9 सारांश
2.10 व्याख्या
2.11 अभ्यास प्रश्न
2.12 संदर्भ ग्रंथ

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.0 अधिगम का उद्देश्य

इसका अध्ययन करने के उपरान्त आप -

- जयशंकर प्रसाद के जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व से परिचित होंगे
- जयशंकर प्रसाद की काव्य-भाषा की बनावट और बुनावट समझ सकेंगे
- छायावादी काव्य-भाषा की बनावट और बुनावट को समझ सकेंगे
- जयशंकर प्रसाद की चुनिंदा कविताओं के आधार पर प्रसाद की काव्यभाषा तथा काव्यशिल्प का मूल्यांकन कर पाएंगे
- जयशंकर प्रसाद की इस कविता के भावबोध और शिल्पबोध को समझ पाएंगे

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी कविता को समझने के क्रम में जयशंकर प्रसाद एक महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में सामने आते हैं। उन्हें छायावादी कविता का आधार स्तंभ भी माना जाता है। प्रसाद की गणना महाकवियों की परम्परा में होती है वे भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे। प्रसाद ने साहित्य के सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई कविता, नाटक, कहानी उपन्यास और महाकाव्य सभी में उन्होंने अपनी कला का कौशल दिखाया वस्तुत: प्रसाद जी एक सच्चे कलाकार के रूप में हमारे समक्ष अवतरित होते हैं। उनकी कृतियाँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

2.2 जीवन–वृत्त

आधुनिक काल का हिन्दी-साहित्य जिन कलाकारों की काव्य-साधना से सम्पन्न और समृद्ध है, उनमें जयशंकर प्रसाद का स्थान सर्वोपरि हैः वे एक जन्म-जात प्रतिभावान कवि थे। उनकी प्रतिभा असाधारण और बहुमुखी थी। उन्होंने कवि, नाटककार, उपन्यासकार और निबन्धकार के रूप में हिन्दी-साहित्य की अपूर्व सेवा की है। प्रसाद-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें भारतीय दर्शन, मनोविज्ञान और संस्कृति का समन्वय मिलता है। दूसरी, बड़ी विशेषता यह है कि उनकी कृतियों में भारतीय जीवन का सफल निरूपण हुआ है। उनके महाकाव्य 'कामायनी' में प्राचीनतम वैदिक उपाख्यान अंकित हैं। उनके अधिकांश नाटकों में मध्य युग की दो भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष में रत राजनीति का चित्रण है और उनके कहानी-उपन्यासों में वर्तमान समाज का यथार्थ चित्रण है। भारतीय जीवन की ऐसी दीर्घ परम्परा केवल प्रसाद-साहित्य में दिखाई पड़ती है।

2.3 कवि–परिचय

महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के एक सम्पन्न वैश्य परिवार में हुआ। उनके पितामह शिवसरन साहू बड़े दयालु और दानी व्यक्ति थे। उनकी दानशीलता इतनी प्रसिद्ध थी कि उनके दरवाजे से कोई व्यक्ति खाली हाथ नहीं लौटता था। वे तम्बाकू और सुरती के व्यापारी थे और 'सुँघनी साहू' के नाम से प्रख्यात थे।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

प्रसाद जी के पिता देवी प्रसाद भी व्यवहार-कुशल और उदार व्यक्ति थे। उस समय भारत के अन्य भागों से आने-वाले कवि, भाट, बाजीगर, विद्वान आदि काशीनरेश के दरबार से लौटकर इनके यहाँ अवश्य आते थे। काशी में ही दो स्थानों पर गुणियों का आदर होता था, एक काशीनरेश के यहाँ और दूसरे 'सुँघनी साहू' के यहाँ। यही कारण था कि काशीनरेश के अभिवादन में लोग जैसे 'महादेव' कहा करते थे, वैसे ही सुँघनी साहू के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए 'महादेव' कहकर अभिवादन करते थे। बालक 'प्रसाद' अपने भाई-बहनों में सबसे छोटे थे। माता श्रीमती मुन्नी देवी का इस कारण इनके प्रति विशेष प्रेम था। प्रसाद के पहले इनके कई भाई-बहनों की मृत्यु हो चुकी थी, अतः इनकी दीर्घायु के लिए गोकर्णनाथ महादेव की मनौती मानी गई थी।

प्रसाद जी का परिवार कट्टर शैवमतावलम्बी था। कश्मीरी प्रत्यभिज्ञादर्शन की विचारधारा इस परिवार में चली आ रही थी। परिवार के धार्मिक एवं दार्शनिक वातावरण का प्रभाव प्रसादजी के चिन्तन पर बड़े गहरे रूप में पड़ा। साहित्यिक वातावरण का प्रभाव भी बालक प्रसादजी ने घर से ग्रहण किया। उस समय काशी में समस्या-पूर्ति की धूम थी। प्रसाद ने शैशवकाल में ही ब्रजभाषा में समस्या-पूर्ति की ओर अपनी अभिरुचि प्रकट की। भगवान-शंकर की स्तुति में प्रसाद ने नौ वर्ष की आयु में एक सवैया बनाकर अपने गुरु श्री मोहिनीलाल गुप्त 'रससिद्धि' जी को सुनाया था जिसे सुनकर और विस्मय-विमुग्ध होकर उन्होंने बालक प्रसाद को महाकवि होने का आशीर्वाद दिया।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में बालक प्रसाद ने अपनी माता के साथ धारा-क्षेत्र, ओंकारेश्वर, पुष्कर, उज्जैन, जयपरु, ब्रजमण्डल, अयोध्या आदि स्थानों की यात्रा की। यात्रा के दौरान अमरकंटक पर्वतमाला के प्राकृतिक दृश्यों का उनके मन पर अमिट प्रभाव पड़ा। पर्वतमाला के मध्य नर्मदा नदी में चाँदनी रात में उन्होंने नौका-विहार किया। जगन्नाथपुरी की यात्रा के समय उन्हें सागर की विशालता, गम्भीरता और उत्ताल तरंगों की गर्जना का परिचय मिला। प्रकृति की इन अद्‌भुत शक्तियों से उनके कवि-हृदय को प्रेरणा मिली। सम्भवतः यही कारण है कि उनके काव्य में विविध पदार्थों का सजीव वर्णन हुआ है।

दस वर्ष की अवस्था तक प्रसादजी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई थी। इसके बाद वे क्वींस कालेज में प्रविष्ट हुए। इसके दो वर्ष बाद ही दुर्भाग्य से उनके पिताजी का देहान्त हो गया। कुटुम्ब में सम्पत्ति को लेकर अनेक झगड़े शुरू हो गए। प्रसादजी के बड़े भाई शम्भुरतन जी ने कारोबार संभाला। तीन वर्ष के भीतर ही मुकद्दमेबाजी में लाखों रूपये नष्ट हो गए। सारी सम्पत्ति चार भागों में बाँट दी गई। शम्भुरत्नजी और जयशंकरजी को एक भाग मिला। इसी बीच इनकी माताजी का भी स्वर्गवास हो गया। बालक प्रसाद के सिर पर उनके बड़े भाई की ही छाया शेष थी उन्होंने बड़े लाड़-प्यार से बालक प्रसादजी को पाला, किन्तु दुर्भाग्य ने उनसे सत्रह वर्ष की अवस्था में शम्भुरतनजी को भी छीन लिया। भाई की असामयिक मृत्यु के बाद घर-बार और व्यापार का सारा भार प्रसाद जी के ही कन्धों पर आ पड़ा। उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ उपस्थिति हो गई थीं। परन्तु प्रसादजी इतने दृढ़ और सन्तुलित व्यक्ति थे कि घर की देख-भाल की चिन्ता से और भाई द्वारा लिए भारी ऋण के भार से वे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। इन विषम परिस्थितियों में उनकी साहित्य-साधना निरन्तर चलती रही।

प्रसादजी ने घर पर ही संस्कृत और अंग्रेजी का नियमित रूप से अध्ययन करके अपनी शिक्षा की कमी को पूरा किया। काशी में दीनबन्धु नामक एक ब्रह्मचारी संस्कृत के विद्वान् थे। प्रसादजी ने उनसे वेद और उपनिषदों का अध्ययन किया। पुराण, महाभारत ओर महाकाव्यों का भी उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। इस अध्ययन से भारतीय संस्कृति के प्रति उन में अगाध श्रद्धा उत्पन्न हुई। अध्ययन काल में प्रसादजी को कसरत करने का शौक था। कहा जाता है कि वे प्रतिदिन पाँच सौ दण्ड और एक हजार

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

बैठक लगाया करते थे। कभी-कभी दंगल में उतरकर कुश्ती भी लड़ा करते थे। उन्हें अपनी खुराक का पूरा ध्यान रहता था, जिसमें फल, दूध, घी और बादामों की मात्रा अधिक रहती थी।

माता-पिता और बड़े भाई के अभाव में प्रसाद जी को अपना विवाह स्वयं करना पड़ा। कुछ वर्षों के बाद उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। दूसरा विवाह सम्पन्न हुआ। इस पत्नी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो प्रसव-काल में ही अपनी माता के साथ परलोक सिधार गया। पत्नी और पुत्र की मृत्यु से उनके मन को गहरी चोट लगी। उनके विचार और अधिक दार्शनिक और गम्भीर होते गए। अब फिर से घर बसाने की लालसा नहीं थी। कुछ समय के बाद लोगों के समझाने पर और सबसे अधिक अपनी भाभी के दु:ख को घटाने के लिए उन्हें बाध्य होकर तीसरा विवाह करना पड़ा। इस पत्नी से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम रत्नशंकर है।

2.3.1 बोध प्रश्न

1. जयशंकर प्रसाद का जन्म कब हुआ ?
2. जयशंकर प्रसाद का परिवार किस मत का अवलंबी था ?
3. जयशंकर प्रसाद की प्रारंभिक शिक्षा कहाँ हुई ?
4. प्रसाद जी किन–किन विधाओं में लिखते रहे।
5. उनके महाकाव्य का नाम बताइए।

2.3.2 सही शब्द के चुनाव द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

1. प्रसाद के महाकाव्य .... में प्राचीनतम वैदिक उपाख्यान अंकित हैं। (कामायनी, ध्रुव स्वामिनी)
2. प्रसाद के कहानी–उपन्यासों में वर्तमान समाज का .... चित्रण है। (काल्पनिक/आदर्श यथार्थ)

2.4 व्यक्तित्व

प्रसादजी का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। वे मंझोले कद के थे। उनका वर्ण गौर और मुख गोल था। उनकी हँसी बड़ी स्वाभाविक और मधुर थी। जवानी में वे ढाका की मलमल का कुरता और बढ़िया धोती पहनते थे। परन्तु बाद में खद्दर का उपयोग करने लगे थे। श्री रामनाथ 'सुमन' प्रसाद जी के निकट सम्पर्क में रहे। उन्होंने 'प्रसाद' जी के व्यक्तित्व के सम्बंध में लिखा है– ''व्यक्ति की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद एक उच्चकोटि के महापुरुष थे। वे कवि होने के कारण उदार व्यापारी होने के कारण व्यवहारशील, पुराण शास्त्र, संस्कृत-काव्य आदि के विशेष अध्ययन के कारण प्राचीनता की ओर झुके हुए, भारतीय आचारों एवं भारतीय सभ्यता के प्रति ममता रखने वाले तथा एक सीमा तक पाश्चात्य सभ्यता के गुणों के प्रशंसक थे।''

भारत में प्राचीन इतिहास का अध्ययन प्रसादजी का प्रिय विषय था। वे केवल ऐतिहासिक घटनाओं के बाह्य या तथ्यात्मक रूप से ही सन्तुष्ट होने वाले प्राणी नहीं थे, अपितु उन घटनाओं के भीतर प्रविष्ट होकर तत्त्व-चिन्तन से उनके मर्म का उद्घाटन करने में लगे रहते थे। यही कारण है कि उनके ऐतिहासिक नाटक अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है। उनके कथानकों का आधार सांस्कृतिक संघर्ष है। वे

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL, SOL, University of Delhi

संस्कृति, सभ्यता, धर्म-दर्शन और नीति के माध्यम से इतिहास का मूल्यांकन करते थे। उनका ऐतिहासिक और शास्त्रीय-ज्ञान असाधारण था। यह एक आश्चर्य की बात थी कि वे दार्शनिक चिन्तन और ऐतिहासिक अध्ययन-मनन के लिए कम अवकाश निकाल पाते थे। उनकी दिनचर्या में अध्ययन और साहित्य-साधना का प्रथम और प्रमुख स्थान प्राप्त था। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर साहित्य-सर्जन में लीन हो जाना उनका अभ्यास ही हो गया था। जब अध्ययन और साहित्य-सृजन हो जाता था, तब वे बेनिया बाग में टहलने के लिए निकल पड़ते थे। वहाँ भी साहित्यिक मित्रों के साथ वार्तालाप किया करते थे।

प्रसादजी अन्तर्मुखी व्यक्ति थे। आत्म-विज्ञापन करना वे अच्छा नहीं समझते थे। समारोह में जाना, सभापति बनना और भाषण देना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। प्रातः काल के भ्रमण के बाद वे दो घण्टे तक अपने व्यवसाय की देखभाल करते, दोपहर को 12 बजे भोजन करके दो घण्टे नित्य विश्राम करते और तीन बजे पुनः अपने कारोबार की देख-रेख करते तथा व्यावसायिक पत्रों का उत्तर लिखते थे। रात्रि के नौ बजे तक वे अपनी दुकान पर बैठे रहते और साहित्यिक बन्धुओं के साथ विविध विषयों पर चर्चा करते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के भतीजे ब्रजचन्द के अतिरिक्त श्री लक्ष्मीनारायण 'ईश', श्री विनोदशंकर व्यास आदि साहित्यकार उनके बाल-सखाओं में से थे। साधारण व्यक्ति भी उनके साथ मैत्रीपूर्ण सम्भाषण करके लाभ उठाता था। अपने घर पर आने वाले मेहमानों का वे सदा सम्मान करते थे। प्रसादजी स्वभाव से अत्यन्त सौम्य, शान्त और गम्भीर व्यक्ति थे। जीवन के शुरू से ही उन्हें संघर्ष करना पड़ा, किन्तु संघर्षों की दुनिया में रहते हुए भी वे सदैव हँसते रहते। शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य पर-निन्दा और आत्म-प्रशंसा दोनों को पाप समझे। प्रसादजी इन दोनों से दूर रहते थे। जो लोग उनकी रचनाओं की खण्डनात्मक आलोचना लिखते थे, उनका भी उन्होंने कभी उत्तर नहीं दिया। उनका स्वभाव अत्यन्त संकोचशील और शान्त था। उनमें बड़प्पन का मिथ्या-प्रदर्शन लेशमात्र नहीं था। एक बार प्रेमचन्दजी ने प्रसादजी से आत्म-परिचय लिखकर भेजने के लिए कहा। वे उस समय हँस के विशेषांक में साहित्यकारों की जीवनी प्रकाशित करने जा रहे थे। प्रसादजी ने बड़े संकोच के पश्चात् जो कविता लिखकर भेजी उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ दर्शनीय हैं–

छोटे से जीवन की कैसी बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ?
सुन कर क्या तुम भला करोगे-मेरी भोली आत्म-कथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा!

वास्तव में प्रसाद जी की मौन व्यथा सोती रही। उन पर एक धुन सवार थी। वे 'इरावती' उपन्यास को पूर्ण करके एक और उपन्यास की रचना करना चाहते थे। इसी प्रकार 'कामायनी' के समान एक और उत्कृष्ट महाकाव्य का सृजन करके ही उनकी व्यथा शान्त होती, परन्तु यह हिन्दी-संसार का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि प्रसादजी असामायिक मृत्यु के शिकार बन गए। सन् 1936 ई. में प्रसादजी को जाड़े से बुखार हुआ। पहले इसे मलेरिया का साधारण ज्वर समझा गया और उसकी चिकित्सा भी होती रही किन्तु शीत ऋतु में जब हल्की-हल्की खाँसी शुरू हुई तो उनके मित्रों और हितैषियों को चिन्ता हुई। दुर्भाग्य से उस समय भी वास्तविक बीमारी का पता नहीं चला और प्रसाद जी के पेट में दर्द रहने लगा। उसी वर्ष प्रसादजी लखनऊ में प्रदर्शिनी देखने गए और वहाँ से लौटकर आए तो फिर रोगग्रस्त हो गए। इस बार रोग का ठीक-ठीक निदान (Diagnosis) कराने से तपेदिक का पता चला। सन् 1937 के आरम्भ में इलाज कराने पर वे कुछ स्वस्थ अवश्य हुए, परन्तु बरसात में फिर बीमार हो गए। दिन-प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य गिरता गया। डाक्टरों की सलाह थी कि प्रसादजी किसी पहाड़

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पर चले जाएँ, तो उनका स्वास्थ्य सुधर सकता है परन्तु प्रसादजी काशी छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए तैयार नहीं हुए। उनका स्वास्थ्य गिरता ही गया और उसी वर्ष नवम्बर के मध्य 48 वर्ष की आयु में प्रसादजी जी का देहान्त हो गया। इस अविध में उन्होंने जो कुछ हिन्दी-साहित्य को प्रदान किया, वह हिन्दी-संसार और भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में अमर रहेगा।

रचनाएँ – प्रसादजी ने निम्नलिखित साहित्य–विधाओं में रचनाएँ कीं–

काव्य – 1.चित्राधार, 2. कानन-कुसुम, 3. करुणालय, 4. महाराणा का महत्त्व, 5. प्रेम-पथिक, 6. झरना, 7. आँसू, 8. लहर, 9. कामायनी।

नाटक – 1. सज्जन, 2. कल्याणी-परिणय, 3. प्रायश्चित, 4. राज्यश्री, 5. विशाखा, 6. अजातशत्रु, 7. कामना, 8. जनमेजय का नागयज्ञ, 9. स्कन्दगुप्त, 10. एक घूँट, 11. चन्द्रगुप्त, 12. ध्रुवस्वामिनी।

कहानी संग्रह– 1. छाया, 2. प्रतिध्वनि, 3. आकाशदीप, 4. आँधी, 5. इन्द्रजाल।

उपन्यास – 1. कंकाल, 2. तितली, 3. इरावती (अधूरी रचना)।

निबन्ध – काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध। (इनके अतिरिक्त 'कामायनी' तथा नाटकों की भूमिकाओं के रूप में लिखित गवेषणात्मक निबन्ध भी)।

2.4.1 बोध प्रश्न

1. जयशंकर प्रसाद का प्रिय विषय क्या था ?
2. जयशंकर प्रसाद के मित्रो के नाम लिखें?
3. जयशंकर प्रसाद केप्रमुख उपान्यासों के नाम लिखें।
4. जयशंकर प्रसाद के प्रमुख कहानी-संग्रहों के नाम बताएं।
5. जयशंकर प्रसाद के प्रमुख काव्य-संग्रहों का उल्लेख करें।

2.4.2 निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए–

1. प्रसाद जी स्वभाव से अत्यन्त सौम्य और शान्त थे। (सही/गलत)
2. प्राचीन इतिहास प्रसाद जी का प्रिय विषय था। (सही/गलत)
3. प्रसाद जी का देहान्त 50 वर्ष की आयु में हुआ था। (सही/गलत)

2.4.3 रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

1. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक .... प्रधान है। (व्यंग्य/अन्तर्द्वन्द्व/श्रंगार)
2. प्रसाद................ उपन्यास के बाद एक और उपन्यास लिखना चाहते थे। (चन्द्रगुप्त, इरावती, आकाश दीप)

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.5 प्रसाद जी की काव्य–कला

जयशंकर प्रसाद अपने युग के महान् कलाकार थे। उन्हें युग-प्रवर्त्तक कवि भी कहा जाता है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में नवीन विधाओं और नई काव्य-शैलियों को जन्म दिया। वे छायावाद के जन्मदाता माने जाते हैं। छायावादी युग की सबसे बड़ी विशेषता प्रकृति-सौन्दर्य और नारी सौन्दर्य की अभिव्यंजना रही है। प्रसादजी ने इस प्रकार के सौन्दर्य वर्णनों में संयम और मर्यादा का पूर्ण रूप से पालन किया है। छायावाद की दूसरी विशेषता-प्रकृति के विभिन्न पदार्थों में मानवीय भावों का आरोप करना है। प्रसादजी के अनेक प्रगीतों में प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। श्रृंगार-रस का परिपाक छायावादी कविता की आत्मा बन चुका है। प्रसादजी की काव्य-कृतियों में श्रृंगार, करुण और शान्त रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। छायावादी काव्य में जो 'सरसता, मधुरता और सजीवता उपलब्ध होती है, वह भाषा के कारण है और भाषा को समर्थ एवं समृद्ध बनाने का श्रेय प्रसादजी को प्राप्त है। उन्होंने नवीन, सरस शब्दों का चयन किया है। नवीन शब्दावली से अभिव्यक्ति को प्रौढ़ता प्राप्त हुई। कोमल भावनाओं और मधुर कल्पनाओं को प्रस्तुत करने में भाषा पूर्ण रूप से समर्थ और प्रवाहात्मक बन गई। वस्तुतः प्रसादजी ने एक नईपरम्परा को जन्म देकर भाव और शिल्प की दिशा में परिष्कार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनकी काव्य-कला अत्यन्त उदात्त और सहृदय जन के लिए आनन्द देने वाली बन गई है। छायावाद का चरम विकास उनके काव्य में परिलक्षित होता है।

2.5.1 बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक पंक्ति में लिखिए-

1. छायावाद का जनक किसे माना जाता है ?
2. छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

2.5.2 सही शब्द के चुनाव द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –

1. छायावाद की प्रमुख विशेषता .... सौन्दर्य की अभिव्यंजना है। (मानव/प्रकृति)
2. प्रसाद के काव्य में भावपक्ष और .... का सुन्दर समन्वय है। (रस पक्ष, कला पक्ष, अलंकार पक्ष)
3. प्रसाद जी .... दर्शन से प्रभावित थे। (शैव/वैष्णव)

2.6 प्रसादजी की विचारधारा

प्रसादजी बाल्यकाल से ही शिव के परम उपासक थे। उन्होंने बड़े मनोयोग से शैव दर्शन का अध्ययन किया। शक्ति-दर्शन या तान्त्रिक साहित्य से वे भली-भाँति परिचित थे। शैवमतालम्बी होने के कारण प्रसादजी आनन्दवाद में पूर्ण विश्वास रखते थे। भारतीय संस्कृति में शिव ही एक ऐसे देवता हैं, जो सुख-दुःख के पूर्ण प्रतीक हैं। शिव ने जहाँ अमृत का पान किया है, वहाँ विष का भी उत्साह से पान किया है। फिर भी वे शिव ही बने रहे और आनन्द में ही निमग्न रहे। यही शैव मत की दार्शनिकता है।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

प्रसादजी की भी यही विचारधारा है। आरम्भ से ही वे घरेलू संकटों को सहते रहे और जग की अप्रिय आलोचना भी सुनते रहे। परन्तु मृत्युपर्यन्त वे आनन्दवादी बने रहे। प्रसादजी ने अपनी रचनाओं के द्वारा नवीन विचार, नवीन सिद्धान्त एवं नवीन प्रेरणाएँ प्रस्तुत की है। 'चित्राधार' के अन्तर्गत 'प्रेम राज्य' कविता में और 'प्रेम-पथिक' नामक काव्य पुस्तिका में पुनीत और उदात्त प्रेम की अभिव्यक्ति हुई। 'करुणालय' में कवि ने प्रतिज्ञा-पालन कर्मशीलता, अहिंसा, जीवन की सरलता आदि उच्चतर सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा की है। 'कामायनी' प्रसादजी की दार्शनिक विचारधारा और काव्यकला की अमूल्य निधि है। उनमें मानवीय भावों की चरम अभिव्यक्ति हुई है। विश्व-प्रेम और विश्व मानवता की स्थापना कामायनी में सुन्दर रूप में हुई है। शैव समरसता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके प्रसादजी ने उसके आधार पर आनन्दवाद की उपलब्धि ही मनुष्य का चरम लक्ष्य कहा।

2.6 बोध प्रश्न

1. प्रसाद किस दर्शन से प्रभावित थे ?
2. प्रसाद जी के काव्य में किस विचारधारा के दर्शन मिलते हैं ?
3. प्रसाद जी ने जीवन की किस उपलब्धि को मनुष्य का चरम लक्ष्य कहा है ?

2.7 कवि का महत्त्व एवं हिन्दी साहित्य में योगदान

आधुनिक काल के कवियों में जयशंकर प्रसाद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी गणना हिंदी के श्रेष्ठ कवियों में होती है। भारतीय महाकवियों की परम्परा में प्रसादजी का स्थान सुरक्षित है। आदि कवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भास, भारवि, भवभूति, बाणभट्ट आदि संस्कृत के महाकवियों और विद्यापति, सूर, तुलसी आदि हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में प्रसादजी प्रतिष्ठित और अभिनन्दनीय हैं। वे भारतीय संस्कृति के परम उपासक और मधुर गायक बनकर अवतीर्ण हुए। वे एक सच्चे दार्शनिक और जन्मजात कवि थे। उन्होंने मानव-जीवन को कला और दर्शन के माध्यम से देखा और उन्हीं के रूपों में चित्रित किया। प्रेम और सौन्दर्य के उपासक कवियों में महाकवि कालीदास, जयदेव, विद्यापति और सूरदास के बाद प्रसादजी का नाम उल्लेखनीय है। अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के द्वारा उन्होंने हिन्दी साहित्य में जो योगदान किया वह सर्वथा अतुलनीय और अनुपम है। मुक्तक कविताओं से लेकर प्रबन्धकाव्य तक की सुन्दर परम्परा का निर्वाह प्रसादजी की कृतियों में हुआ। एक श्रेष्ठ कवि के लिए यह आवश्यक न होने पर भी उनके कृतित्व में एक क्रमिक विकास दिखाई पड़ता है। यह बात उनके कथा-साहित्य, उपन्यास और नाटकों में भी देखी जा सकती है। 'प्रेम पथिक' में सामान्य स्त्री-पुरुष का प्रणय-प्रसंग और 'कामायनी' में ऐतिहासिक श्रद्धा-मनु का दाम्पत्य जीवन चित्रित करके प्रसादजी ने वर्तमान युग से लेकर वैदिक युग तक विस्तृत भारतीय जीवन को साकार कर दिया है। प्रसादजी के नाटक हिन्दी-साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। उन्होंने भारत के स्वर्णयुग को अपने नाटकों में अंकित किया है, प्राचीन इतिहास के खण्डहरों में से रत्न चुन-चुनकर नाटकों में पिरो दिए हैं। उनके पात्रों में कर्मण्यता और जिवीविषा अत्यन्त प्रबल है। नारी पात्र तो त्याग और बलिदान की साक्षात् मूर्तियाँ हैं। अपने प्रेम और जीवन की बलि देकर भी उन्होंने राष्ट्र-प्रेम का आदर्श उपस्थित किया है। प्रसादजी की कहानियों और उपन्यासों में सामाजिक जीवन का चित्रण हुआ है। 'कंकाल' और 'तितली' नामक उपन्यासों में प्रसादजी ने सामंती प्रथा से पीड़ित किसानों के दुःख-दर्द का चित्रण किया है। धर्म

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

की आड़ में भोली-भाली स्त्रियों के साथ कुकृत्य करने वाले महंत एवं पादरियों के चरित्र की नग्नता को उभार कर प्रसादजी ने सामाजिक रूढ़ि पर प्रहार किया है। प्रसादजी ने एक सच्चे कलाकार के रूप में जहाँ भारत के स्वर्णयुग के चित्रों में रंग भरा है, वहाँ वर्तमान समाज के जीर्ण कंकाल को भी यथार्थ रूप में अंकित कर दिया है। वे हमारे समाज के अंतर्विरोधों को समझने में सहायक हैं। उनकी कृतियाँ हमारे साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

2.8 प्रतिपाद्य

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' गीत प्रसिद्ध साहित्यकार जयशंकर प्रसाद के नाटक चंद्रगुप्त के छठे दृश्य में है। यह वीर रस का प्रेरणादायक गीत है। कई स्थानों पर आज भी यह गीत राष्ट्रवादी भावना के साथ विद्यालयों में समूह गान के रूप में गाया जाता है। गांधार के सैनिकों के लिए राजकुमारी अलका राज्य के नागरिकों के साथ मिलकर यह गीत गाती है। इस गीत के माध्यम से वे उन्हें कर्तव्य का बोध कराते हुए देशप्रेम की भावना के साथ राष्ट्र के लिए बलिदान देने का भाव जगाते हुए उनके मनोबल को हिमालय के समान दृढ करने का संदेश देती हैं। पर्वतराज हिमालय के ऊँचे शिखर से ज्ञान की देवी सरस्वती देशवासियों को पुकार रही हैं कि तुम वीरों की अमर संतान हो। कवि देश की गौरवशाली परंपरा और स्वतन्त्रता को बचाए और बनाए रखने के लिए देश के रक्षक इनवीर सपूतों को निर्भीकता के साथ विपत्तियों को पार करते हुए वीरतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।

2.8.1 बोध प्रश्न

1. प्रस्तुत गीत किस नाटक से लिया गया है ?
2. इस गीत का भावबोध क्या है ?
3. कवि हिमालय शिखर से किसे संबोधित कर रहा है ?

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से'

2.9 सारांश

प्रस्तुत गीत श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक 'चन्द्रगुप्त' के चतुर्थ सर्ग में उद्धृत है। नाटक की स्त्री पात्र अलका ने यह गीत नागरिकों के साथ मिलकर उन्हें राष्ट्र-रक्षा के प्रति जागरूक करने के लिए गाया है। इस प्रकार यह गीत उद्‌बोधन गीत के रूप में है।

भारतीयों की सुप्त चेतना को झकझोरते हुए कवि कहता है कि हिमालय पर्वत के सर्वोन्नत शिखर से बुद्धि और विवेक की अधिष्ठात्री एवं परम शुद्ध माँ सरस्वती तुम्हें अपने कर्त्तव्य के प्रति प्रेरित कर रही है। अपने ही प्रकाश से मंडित स्वतन्त्रता पुकार-पुकार कर कह रही है कि तुम वीरों की अमर सन्तान हो तुम्हें अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होना है बल्कि उसके प्रति दृढ़ और निष्ठावान् होना है। तुम यदि इस मार्ग में आने वाली विघ्न-बाधाओं से भयभीत हो, तो वह भय अपने मनो-मस्तिष्क से निकाल फेंको। तुम्हारा मार्ग अत्यन्त प्रशस्त है। इस पथ पर निर्भीक होकर बढ़ते जाओ। इस कर्त्तव्य-मार्ग पर अग्रसर होने से तुम्हारी जय-गाथाएँ देश-विदेश में गुंजायमान होंगी, तुम्हारे यश की किरणें दिव्य

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

ज्योति बनकर तुम्हारे कंटकाकीर्ण मार्ग को आलोकित करेंगी। तुम इस भारत भूमि के सुपुत्र हो, शूरवीर हो और साहसी भी हो। अतएव इन क्षणिक विघ्न-बाधाओं से घबराने के स्थान पर उनका सामना करो। तुम्हारी स्थिति शत्रुओं से लोहा लेने के लिए सेना रूपी सागर में बड़वाग्नि के समान होनी चाहिए। तुम अत्यन्त वीर हो, वीरतापूर्वक अपने मार्ग पर बढ़ते जाओ। हम तुम्हारी विजय की कामना करते हैं।

प्रसाद जी का यह गीत केवल उनके साहित्य का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण हिन्दी वाङ्मय की अमूल्य निधि है। परतन्त्रता के उस युग में इस प्रकार के भाव-सबल और उद्‌बोधक गीतों की रचना कर प्रसादजी ने अपनी सामाजिक चेतना का परिचय दिया है। भाषा ओज गुण-सम्पन्न और संस्कृत गर्भित है।

कठिन शब्दों के अर्थ

हिमाद्रि–हिमालय। **तुंग–ऊँचा**। **शृंग**–शिखर अथवा चोटी। **भारती**–सरस्वती अथवा वाणी। **स्वयंप्रभा**–अपना तेज। **समुज्ज्वला**–उज्ज्वल, प्रकाशित। **अमर्त्य**–अमर। **प्रशस्त**–कीर्ति, यश। **रश्मियाँ**–किरण। **विकीर्ण**–बिखरी हुई। **दिव्य**–अलौकिक। **दाह**–अग्नि, यहाँ ज्योति या प्रकाश। **अराति**–शत्रु। **सिंधु**–समुद्र। **सुवाडवाग्नि**–जल में लगने वाली अग्नि।

2.10 व्याख्या

1. हिमाद्रि........ बढ़े चलो।

सन्दर्भ–प्रस्तुत गीत जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'चन्द्रगुप्त' नामक नाटक से लिया गया है। इस गीत के माध्यम से अलका नागरिकों को विदेशी आक्रमण के विरुद्ध तैयार कर रही है।

व्याख्या–हिमालय के उच्चतम शिखर से अपने ही प्रकाश से प्रकाशित स्वतन्त्रता अपनी शुद्ध वाणी में पुकार-पुकार कर तुमसे कह रही है कि तुम वीरों की अमर सन्तान हो जिनकी देह भले ही नष्ट हो जाए किन्तु कीर्ति के रूप में सदैव जनमानस में निवास करते रहोगे। ऐसे वीर अपने कर्त्तव्य के मार्ग में आने वाले विघ्नों से नहीं घबराते। तुम्हारे सम्मुख भी ऐसे ही वीरों की परम्परा है जिसका पालन तुम्हें करना है। कर्त्तव्य-पथ कंटकाकीर्ण भले ही हो परन्तु देश और समाज के लिए कल्याणकारी होने के कारण वीर सदा उस पथ पर निर्भय होकर बढ़ते जाते हैं। तुम भी देश-कल्याण के इस मार्ग पर बढ़ते जाओ। तुम्हारी वीरता की अमर गाथाएँ सम्पूर्ण विश्व में बिखर कर दिव्य ज्योति का रूप धारण कर तुम्हारा मार्ग आलोकित करेंगी। अभी तुम जिन विघ्नों की कल्पना मात्र से घबरा रहे हो, उन पर विजय प्राप्त करने के बाद तुम्हारा साहस और भी बढ़ेगा। तुम इस भारत माँ के शूरवीर और साहसी सुपुत्र हो अतएव उसकी रक्षा करना तुम्हारा नैतिक दायित्व है। अपनी सामर्थ्य के बल पर तुम शत्रुओं की सेना रूपी इस सागर में कूद पड़ों और अपनी वीरता रूपी वाडवाग्नि से उसे नष्ट कर दो। तुम शक्तिसम्पन्न हो, अपनी शक्ति, बुद्धि और साहस से सदा जय प्राप्त करो यही हमारी कामना है।

विशेष–(1) उद्‌बोधन गीत के रूप में प्रस्तुत गीत का महत्त्व अत्यधिक है। यह गीत न केवल 'चन्द्रगुप्त' नाटक के पात्रों को उद्‌बोधित करने की सामर्थ्य रखता है वरन् समस्त देशवासियों को कर्त्तव्य-पालन की ओर प्रेरित करता है। जिस समय प्रसादजी साहित्य-सृष्टि कर रहे थे उस समय भारत पर विदेशी शासन था। इस दासता से मुक्ति के लिए प्रयत्न किये जा रहे थे परन्तु अधिकांश जनता इस दासता को अपनी स्थिति मानकर स्वीकार कर चुकी थी। जनता को इस स्थिति के प्रति जागरूक

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

करना साहित्यकार का दायित्व था। प्रसादजी ने इसे समझा और भारतीय इतिहास तथा पुराणों के ऐसे प्रसंगों को अपने साहित्य का विषय बनाया जो तत्कालीन परिस्थितियों में प्रेरक सिद्ध हो सकते थे। 'चन्द्रगुप्त' भी उनका इसी प्रकार का प्रयास है। 'बढ़े चलो' नामक यह गीत इसी उद्‌देश्य की पूर्ति करता है।

(2) प्रस्तुत गीत में कवि ने स्वतन्त्रता को 'स्वयंप्रभा समुज्ज्वला' कहा है। स्वतन्त्रता अपने ही तेज से मंडित है, वही स्वतन्त्रता आज संकट में है। उसकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

(3) 'कीर्ति-रश्मियाँ' और 'सैन्य-सिन्धु' में रूपक अलंकार है; 'दाह-सी' और 'सुवाडवाग्नि-से' में उपमा।

बोध प्रश्न

एक प्रंक्ति में प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

1. प्रस्तुत गीत किस नाटक से लिया गया है?
2. इस गीत का भावबोध क्या है?
3. कवि हिमालय—शिखर से किसे सम्बोधित कर रहा है?

सही/गलत का निशान लगाइए।

1. यह गीत भारतीयों की गुप्त चेतना को झकझोर रहा है। (सही/गलत)
2. यह गीत रौद्र रस का परिचायक है। (सही/गलत)

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' गीत का प्रतिपाद्य लिखें।
2. 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' गीत राष्ट्रवादी उद्बबोधन गीत है'स्पष्ट करें।
3. जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय दीजिए।
4. जयशंकर प्रसाद की काव्यभाषा की प्रमुख विशेषता लिखिए।
5. 'जयशंकर प्रसाद छायावाद के आधार-स्तंभ कवि हैं' स्पष्ट कीजिए।
6. काव्यशिल्प की दृष्टि से 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' गीत की विशेषताएं बताइए।

2.12 संदर्भ-ग्रंथ

- *जयशंकर प्रसाद*, नंददुलारे वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन
- *प्रसाद के काव्य :* प्रेम शंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन
- *छायावाद* : नामवर सिंह , राजकमल प्रकाशन

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

3. नागार्जुन

लेखिका—डॉ. सीमा जैन
मुक्त शिक्षा विद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रूपरेखा

3.0 अधिगम का उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 जीवन-परिचय
 3.2.1 बोध प्रश्न
3.3 साहित्यिक विशेषताएँ
3.4 कविता का सार
3.5 कविता की व्याख्या
3.6 अभ्यास प्रश्न

3.0 अधिगम का उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के उपरांत आप—

- प्रगतिशील काव्यधारा के महत्वपूर्ण कवि नागार्जुन के जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व से परिचित होंगे।
- नागार्जुन के साहित्यिक महत्व को समझेंगे।
- नागार्जुन के काव्य के विभिन्न आयामों को जान पाएंगे।
- प्रगतिशील काव्यधारा की विशेषताएं और नागार्जुन का महत्व समझेंगे।
- नागार्जुन के काव्य में प्रकृति के विविध पक्ष और उससे जुड़े भावों को जान पाएंगे।
- नागार्जुन के काव्य में संवेदना के विभिन्न रूपों का अध्ययन करेंगे।
- नागार्जुन की कविता के भावबोध और शिल्पबोध को समझ पाएंगे।

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3.1 प्रस्तावना

छायावादी काव्य को रोमानी और कल्पनालोक से वापिस ठोस जमीनी यथार्थ पर प्रगतिशील धारा ने स्थापित किया। इसके लिए 1936 ई. के आस-पास प्रगतिवाद एक काव्यांदोलन के रूप में उभरा। इस धारा में नागार्जुन एक प्रसिद्ध हस्ताक्षर के रूप में उभरे। नागार्जुन की कविताओं का मुख्य विषय जन-सामान्य हैं। अत: उनकी भाषा भी आम बोलचाल की भाषा जैसी ही सहजता और आत्मीयता लिए हुए हैं। नागार्जुन उपेक्षित, शोषित और आम जनता के पक्षधर रहे हैं। सामान्य मनुष्य के दुःख-सुख और सरोकार उनके काव्य के केंद्र में हैं। प्रकृति का चित्रण भी नागार्जुन की कविताओं का मुख्य आकर्षण है। प्रकृति का सौंदर्य उनके यहाँ सहज, सजीव और आत्मीय रूप में सामने आता है।

हिन्दी काव्य-परम्परा में नागार्जुन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रगतिशील कविता के ये प्रमुख हस्ताक्षर हैं। आज़ादी के पश्चात् हिन्दी की प्रगतिशील धारा के तमाम रूपों को उन्होंने बारीकी से रूपायित किया। जनता की एकता, प्रजातन्त्र और धर्मनिरपेक्षता उनकी कविता के प्रमुख बिंदु है।

3.2 जीवन परिचय

नागार्जुन का जन्म सन् 1911 में बिहार के दरभंगा जिले के तरौनी ग्राम में हुआ था। उनका वास्तविक नाम पं.बैद्यनाथ मिश्र था। उनका परिवार सनातन धर्मी और रूढ़िवादी था। चार वर्ष की अल्पायु में ही उनकी माता का देहावसान हो गया था। पिता पुरोहित थे और चाहते थे कि बेटा भी यही काम करे। इसलिए उन्हें संस्कृत के श्लोक जबरदस्ती रटवाये गये। परन्तु बचपन से ही वे विद्रोही प्रकृति के व्यक्ति थे। इस कार्य में अरुचि होने के कारण उसकी ओर वे प्रवृत्त नहीं हुए। सन् 1930 के लगभग वाराणसी जाकर उन्होंने संस्कृत, पालि, प्राकृत का विशेष अध्ययन किया। यहाँ रहते हुए अपने युग की हलचलों, कुरीतियों से उनका परिचय हुआ। फिर आर्य समाज के सम्पर्क में आये। उसके बाद बौद्ध धर्म की ओर उनका झुकाव हुआ। लंका जाकर उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बैद्यनाथ मिश्र नागार्जुन हो गये। बाद में स्वामी सहजानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आकर वे किसान आंदोलन से जुड़ें। वामपंथी विचारधारा से प्रभावित होकर उनकी जीवन-दृष्टि पूर्णतः तार्किक, प्रगतिशील हो गई। उनकी सभी रचनाओं में उनकी इसी जीवन-शैली के दर्शन होते हैं। ''गरीबी, कुसंस्कार और रूढ़िग्रस्त पंडिताऊ परिवेश नागार्जुन को लील नहीं पाये, नहीं तो वे वहीं चुटन्ना और जनेऊ वाले पंडित होते। और न पुरानी परिधि से बाहर निकलते, न आँखें खुलती, न इस तरह युग का साथ दे पाते।'' (अन्नहीनम् क्रियाहीनम्)

नागार्जुन ने कविता, कहानियाँ, उपन्यास और निबन्ध लिखे। उनकी कुछ प्रमुख प्रकाशित रचनाओं के नाम हैं–

निबंध – अन्नहीनम्, क्रियाहीनम्।

कविता संग्रह – युगधारा, सतरंगे पंखों वाली, प्यासी पथरायी आँखें, तालाब की मछलियाँ, चन्दना, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, तुमने कहा था, पुरानी जूतियों का कोरस, हज़ार-हज़ार बाँहों वाली।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

खंडकाव्य	–	भस्मांकुर।
मैथिली कविता-संग्रह	–	चित्रा, पत्रहीन नग्न गाछ।
कहानी-संग्रह	–	आसमान में चंदा तारे।
उपन्यास	–	रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, दुःखमोचन, बलचनमा, वरुण के बेटे, नयी पौध, कुंभीपाक, अभिनन्दन, उग्रतारा, इमिरितिया आदि।

3.2.1 बोध प्रश्न

क. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो।

1. नागार्जुन का जन्म कब और कहाँ हुआ?
2. नागार्जुन ने किन भाषाओं का विशेष अध्ययन किया?
3. नागार्जुन किस विचारधारा से प्रभावित हुए?
4. नागार्जुन के प्रमुख काव्य-संग्रहों का नाम बताइए।
5. नागार्जुन के प्रमुख उपन्यासों के नाम बताइए।

ख. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत का निशान लगाइए।

1. नागार्जुन का परिवार सनातन धर्मी और रूढ़िधर्मी था। (सही/गलत)
2. आठ वर्ष की आयु में उनकी माता का देहावसान हो गया था। (सही/गलत)
3. उनके खंडकाव्य का नाम 'भस्मासुर' था। (सही/गलत)

3.3 साहित्यगत विशेषताएँ

नागार्जुन की कविताओं का फलक साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से लेकर स्वतन्त्र भारत के सपने तक फैला हुआ है। इसमें एक ओर भारत की मुक्ति की कामना का स्वर व्यक्त हुआ है तो दूसरी ओर द्वितीय विश्वयुद्ध और जनता के साथ उभर रहे अन्तर्विरोध की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कविता ने साम्राज्यवाद के हिंसक चेहरे को उकेरा है तो समाजवाद के सपने की जीत भी दिखाई है। वे इतिहास को बनाने वाले चरित्रनायक है तो इतिहास को नष्ट करने वाले खलनायक भी हैं। उनके काव्य में किसान और मज़दूरों के जीवन के वैविध्यपूर्ण और सादगी भरे चित्र हैं तो मध्यवर्ग के जीवन में व्याप्त असंगतियों और जनविरोधी मूल्यों का चित्रण भी है। नागार्जुन ने बुर्जुआ नेताओं पर लिखा है तो साथ ही साथ समाजवादी नेताओं पर भी लिखा। कहने का तात्पर्य यह है कि नागार्जुन ने समाज के वैविध्यपूर्ण जीवन, प्रकृति के सौन्दर्य, समाज के बदलते स्वरूप, साम्प्रदायिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता, मानवाधिकारों की रक्षा और विकास की चुनौतियों का ईमानदारी से चित्रण किया है।

नागार्जुन की कविता की बुनियादी चिन्ता जनतन्त्र है। जन्तन्त्र के विकास में कौन-सी ताकतें बाधक हैं और कौन-सी ताकतें साधक हैं। उनका मत है कि जनतन्त्र के विकास के लिए मानवाधिकारों की रक्षा आवश्यक है। उन्होंने जनतन्त्र की बारीकियों और अन्तर्विरोधों का जैसा चित्रण किया है वैसा किसी अन्य कवि ने नहीं। आज़ादी के बाद शासक वर्ग द्वारा किस तरह जनविरोधी नीतियों का

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

अनुसरण किया गया और उनसे जनतन्त्र किस तरह खोखला हुआ, इस सबका चित्रण नागार्जुन ने किया है।

बाबा नागार्जुन की कविता में सादगी, सम्प्रेषणीयता और सहजता को आसानी से महसूस किया जा सकता है। बाबा के लिए कविता जिन्दगी का सहज़ बयान है। आज़ादी के बाद के दौर की कविता को सम्प्रेषण की जिस समस्या से दो-चार होना पड़ा था, वह संकट नागार्जुन के यहाँ नहीं दिखाई पड़ता। बाबा ने जनतन्त्र में दर्शक की भूमिका को अस्वीकार किया है। दर्शक की भूमिका जनतन्त्र को कमज़ोर बनाती है। बाबा के लिए जनतन्त्र तभी मजबूत होगा, जब उसमें शिरकत की जाय, हस्तक्षेप किया जाये, जनतन्त्र के रखवालों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ा जाये। कहने का तात्पर्य यह है कि बाबा लेखक के साथ-साथ जनतन्त्र के सक्रिय कार्यकर्त्ता भी हैं।

नागार्जुन के काव्य–संसार को मोटे तौर पर निम्न कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. राजनीतिक कविताएँ
2. प्राकृतिक कविताएँ
3. सौन्दर्य परक कविताएँ
4. सामाजिक जीवन पर केन्द्रित कविताएँ
5. व्यक्ति और चरित्रपरक कविताएँ
6. संस्कृत कविताएँ

नागार्जुन ने अपने युग की समस्त राजनीतिक प्रवृत्तियों पर लिखा है। पहली कोटि की कविताओं में वे हैं जो साम्राज्यवाद विरोध एवं युद्ध विरोध के विषयों पर लिखी गई। दूसरी कोटि की कविताएँ जो राजनीतिक दलों और उनकी नीतियों पर लिखी गईं। तीसरी कोटि की कविताएँ, जो राजनीतिक घटना विशेष पर लिखी गईं। चौथी कोटि में वे कविताएँ आती हैं जो राजनीतिक व्यक्तियों पर लिखी गई हैं। इस कोटि की अधिकांश कविताएँ नारेबाजी-फार्मूलेबाजी और तुकबन्दी से युक्त हैं। ये कविताएँ उस धारणा का खंडन करती हैं कि राजनीतिक कविता नारेबाजी-फार्मूलेबाजी और तुकबन्दी से युक्त हैं। ये कविताएँ उस धारणा का खंडन करती हैं कि राजनीतिक कविता नारेबाजी होती है। इन कविताओं में व्यंग्य शैली का भरपूर इस्तेमाल किया गया है। नामवर सिंह ने कहा है कि 'नागार्जुन के ये व्यंग्य भारतीय जनता की प्रखर राजनीतिक चेतना के साथ ही, उसके सहजबोध और जिन्दादिली के भी अचूक प्रमाण हैं।' शिवकुमार मिश्र और नामवर सिंह उन्हें कबीर के बाद सबसे बड़ा व्यंग्य कवि मानते हैं। रामविलास शर्मा ने लिखा कि 'नागार्जुन की सबसे सफल कविताएँ वहीं हैं जिनमें वे व्यंग्य से हँसते हैं, क्रोध या आवेश में नहीं आते।''

नागार्जुन ने दो तरह की राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं– एक सरकार और शोषणतन्त्र के तमाम भागीदारों के खिलाफ और दूसरी मेहनतकश जनता के संघर्षों के पक्ष में। आज़ादी को लेकर अनेक लेखकों में तरह-तरह के भ्रम थे और वे जनता की मुक्ति का दिवा-स्वप्न देख रहे थे। किन्तु बाबा को आज़ादी के वर्गीय चरित्र को लेकर कोई भ्रम नहीं था। उन्होंने साफ-साफ लिखा –**''झूठ-झूठ, सुजला-सुफला के गीत न हम अब गायेंगे। भात दाल तरकारी जब तक नहीं पेट भर पाएंगे। सड़ी लाश है जमींदारियाँ, इनको हम दफ़नाएंगे।''** आज़ादी पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा–**''कागज़ की आज़ादी मिलती, ले लो दो-दो आने में।''**आज़ादी के बाद सत्ता तो बदली, परन्तु सत्ता के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं आया। जब सारा देश आज़ादी की रजत जयन्ती मना रहा था तब बाबा ने इसके पाखंड का उद्घाटन करते हुए लिखा कि **''नीचे निपट गरीबी, ऊपर ठाठ-बाट की रजत जयन्ती। शर्म न आती, मना रहे वे महँगाई की रजत जयन्ती।''**

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

शिव कुमार मिश्र ने नागार्जुन की कविता के बारे में लिखा कि ''नागार्जुन की कविता जीवन के विष और अमृत दोनों में ही आकंठ सराबोर कवि की कविता है। जीवन के विष को उसने भारतेन्दु और निराला की भाँति निर्विकार पिया और पचाया है और अमृत उसने दोनों हाथों मनुष्यता के हित के लिए कविता के रूप में उलीचा है।'' नागार्जुन के व्यक्तिगत जीवन के कटु यथार्थ की छाया भी उनके कृतित्व पर नहीं है। रचनाकार के रूप में मनुष्य और जीवन के प्रति उन्होंने गहरी आस्था का परिचय दिया है।

नागार्जुन के साहित्य का विषय मुख्यतः ग्राम-समाज है। मिथिलांचल से उनका घनिष्ठ परिचय है उसी के विविध रूप उनकी रचनाओं में चित्रित हुए हैं। वहाँ का सुरम्य वातावरण, वहाँ की वेशभूषा, बोली-बानी, पेड़-पौधे, वहाँ के लोग की मानसिकता और संस्कार और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उस प्रदेश की दुर्बलताएँ– अशिक्षा, दरिद्रता, जाति-वर्ग, वर्ण-भेद यही सब कुछ उनकी रचनाओं का आधार है। गाँव और छोटे कस्बों के जीवन पर लिखी कविताएँ सबसे ज्यादा हैं किन्तु उनका दृष्टिकोण कस्बाई नहीं है। इन चरित्रों का दृष्टिकोण आधुनिक है।

नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताओं को देखें तो पाएंगे कि वहाँ प्रकृति का जीवन्त रूप साकार हो उठा है। ''मेरी भी आभा है इसमें'' शीर्षक कविता का उदाहरण देखें– **''भीनी-भीनी खुशबू वाले। रंग-बिरंगे। यह जो इतने फूल खिले हैं। कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था। कल इनको मेरे सपनों ने बहलाया था।''** नागार्जुन की प्रकृतिपरक रचनाओं का विश्लेषण करते हुए नामवरसिंह ने लिखा है– ''वैसे, गाँव और विशेषतः अपने गाँव की प्रकृति के लिए नागार्जुन की आरम्भिक कविताओं में एक प्रकार का नास्टेल्जिया का भाव भी मिलता है, किन्तु ज़्यादातर कविताओं में वे प्रकृति के यथार्थ के बीच सहज हो जाते हैं।'' प्रकृति पर कविताएँ लिखते समय उन्हें गाँव, खेत, खलिहान, वर्षा, बादल, ऋतुएँ याद आती हैं।

नागार्जुन ने सौन्दर्यपरक कविताएँ लिखते समय अभिजात वर्ग के सौन्दर्यबोध के बजाय साधारण जन, विशेषतः किसान के सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति की है। यह सौन्दर्यबोध भावुकता, आवेग, सहजता और यथार्थ के उपकरणों से बना है। इसका दायरा व्यापक है। इसमें गाँव हैं, शहर हैं, प्रकृति हैं, महानगर हैं, कस्बे हैं, नदी हैं, खेत हैं यानि जीवन का सारा वैविध्य है।

नामवर सिंह का मानना है कि ''जन कवि के रूप में नागार्जुन की सबसे बड़ी उपलब्धि है, कविता के कलात्मक सौन्दर्य की बलि चढ़ाये बिना कविता को सर्वजन सुलभ बना देना।'' राम विलास शर्मा का मानना है कि ''नागार्जुन ने लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के संतुलन और सामंजस्य की समस्या को जितनी सफलता से हल किया है उतनी सफलता से बहुत कम कवि-हिन्दी से भिन्न भाषाओं में भी हल कर पाए हैं।''

नागार्जुन के काफी संख्या में संस्कृत कविताएँ भी लिखी हैं। वे संस्कृत में दूसरी धारा के कवि हैं। संस्कृत में जनसमाज–केन्द्रित कविताएँ लिखने की परम्परा रही है। नागार्जुन इसी परम्परा को अपने यहाँ विस्तार देते हैं।

नागार्जुन की कविताओं का मुख्य विषय जन-सामान्य ही होता है। अतः उनकी भाषा भी आम आदमी की सामान्य बोलचाल की भाषा है जो सहजता और आत्मीयता के गुणों से युक्त है। मैथिली का पुट उसकी सम्प्रेषणीयता में वृद्धि करता है। यही नहीं अंग्रेजी, बंगला, ओर अवधी शब्दों का भी निःसंकोच भाव से प्रयोग मिलता है। किसी भी भाषा के शब्दों के ग्रहण एवं प्रयोग करने में उनका

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

विश्वास है। उनकी कविता में सीधे-सीधे बातचीत की शैली भी मिलती है। विजय बहादुर सिंह के शब्दों में—''सामान्य तौर पर वे शब्दों और वाक्यों की सादगी किन्तु अर्थ की गम्भीरता और मार्मिकता के कवि हैं।''

नागार्जुन की कविता में छन्दों का वैविध्य मिलता है। मुक्त छन्द के अलावा वैदिक ऋचाओं और अनुप्रासों के प्रयोग भी उनके यहाँ मिलते हैं। इसके अलावा दोहा, कुण्डलियाँ, रोला, हरिगीतिका, मन्दाक्रान्ता, कवित्त, सवैया और बरवै छन्द के सुन्दर प्रयोग उनके यहाँ मिलते हैं। नागार्जुन के छन्द इस्तेमाल के पीछे एक तर्क प्रणाली है कि जब कविता समाज से संबंध कह रहा हो, जब कविता में अलगाव और परम्पराहीनता का कोहराम मचा हो तो ऐसे में कविता के मर्म और लय की रक्षा करना, उसे जन संघर्षों से जोड़ना, जनता की चेतना के साथ छन्द की पुरानी परम्परा के सम्बन्ध को कलात्मक ढंग से बनाये रखना और कविता को आनन्द के बजाय सामाजिक सरोकारों से जोड़ना मुख्य लक्ष्य हो गया।

नागार्जुन की कविता की सबसे मोहक बात है लयात्मकता। लयात्मक संरचना के निर्माण के लिए वे जीवन के अछूते प्रसंगों को सामने लाते हैं साथ ही इसके निर्माण के लिए जिन उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं वे काफी रोचक और महत्त्वपूर्ण होते हैं। वे कविता में फूहड़ और सस्ती तुकबंदियों का प्रयोग नहीं करते बल्कि अर्थ की समन्वित पर्तों के उद्घाटन पर उनका ध्यान केन्द्रित रहता है।

नागार्जुन उपेक्षित, शोषित, दलित जनता के पक्षधर रहे हैं। आम आदमी के सुख-दुख और सरोकारों को उन्हीं की भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान करना-नागार्जुन जैसे व्यक्तित्व के लिए ही सम्भव था। यही कारण है कि उन्हें 'जन-कवि', 'जनता के सुख-दुख' का कवि कहा जाता है।

बोध प्रश्न

1. नागार्जुनकी कविताओं का मुख्य विषय क्या है?
2. नागार्जुन की कविताओं की बुनियादी चिंता क्या है ?
3. नागार्जुन की कविताओं को किन कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है ?
4. नागार्जुन के साहित्य की मुख्य विशेषताएं रेखांकित कीजिए।
5. नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति किस-किस रूप में आयी है ? स्पष्ट कीजिए.
6. नागार्जुन के काव्य की भाषा शैली कैसी है?

3.4 कविता का सार

बादल को घिरते देखा है

प्रकृति का चित्रण नागार्जुन की कविताओं का मुख्य आकर्षण है। प्रकृति नागार्जुन की कविताओं में अपने सारे रंगों, रूपों और सारी मुद्राओं में चित्रित हुई है। प्रकृति के प्रति इतना उन्मुक्त और खुला हुआ अनुराग, उसके प्रति इतनी ललक भरी आत्मीयता, उसके आकाशीय और धरती से जुड़े वैभव की इतनी सूक्ष्म और गहरी पकड़, उसका इतना बारीक और सम्वेदनामय चित्रण आधुनिक कविता में कम ही देखने को मिलता है। बादल को घिरते देखा है उनकी प्रसिद्ध कविता है जो उनके 'युगधारा' संकलन में

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सबसे पहले प्रकाशित हुई थी। इस कविता में नागार्जुन अपनी देखी हुई प्रकृति का बार-बार उल्लेख करते हैं। कालिदास का यक्ष, उसका रामगिरि, उनकी अलका, उनकी व्योमगंगा तो कल्पित थी, किंतु नागार्जुन बड़े विश्वास से कहते हैं वे जो कुछ चित्रित कर रहे हैं वह उनका देखा हुआ है। बात कालिदास के प्रकृति चित्रण को कल्पित कहने और अपने को वास्तविक बताने की नहीं बल्कि बात यह है कि नागार्जुन के यहाँ प्रकृति रोमानी नहीं, काल्पनिक नहीं, अलंकारों से सजी सजाई नहीं, वायवी नहीं, बल्कि एक सजीव वास्तविकता है। अपने समूचेपन, अपनी सारी मुद्राओं में, धरती-आकाश, गाँव-शहर सब तक उनकी व्याप्ति है। प्रकृति के साधारण-असाधारण रूप से लेकर उसका सौन्दर्य और उसकी कुरुपता दोनों ही उन्हें प्रिय हैं। उसके मनोहारी रूपों के प्रति भी उनकी अनुरक्ति है उसके रौद्र रूपों के प्रति भी उनमें दुराव नहीं है। वसन्त, शरद और हेमंत ऋतुएँ उन्हें जितनी प्रिय हैं, ग्रीष्म, शिशिर पावस से भी उन्हें उतना ही प्यार है। हिमालय और उसके शिखरों से भी नागार्जुन को बेहद मोह है— 'अमल-धवल गिरि के शिखरों पर।'

वास्तव में बादल को घिरते देखा है कविता नागार्जुन के अनुभव का प्रमाण है। ऐसा अनुभव उसे ही होता है जिसने अपने समय और समाज से साक्षात्कार किया हो। कबीर ने ऐसा अनुभव किया था और सैकड़ों वर्ष बाद आज भी वे लोकमन में जीवित हैं। कबीर ने इसे 'अनभै सांचा' कहा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मुताबिक यह अनुभव से उपजा सत्य है।

3.5 कविता की व्याख्या

अमल धवलगिरि के.................. घिरते देखा है।

प्रसंग:- नागार्जुन आधुनिक हिन्दी कविता के महत्त्वपूर्ण कवियों में गिने जाते हैं। उनकी यह प्रसिद्ध कृति 'युगधारा' में संकलित है। 'बादल को घिरते देखा है' कविता अपने शीर्षक को सार्थक बनाते हुए प्रकृति सौंदर्य पर आधारित कविता है। पर्वत के शिखरों एवं वन प्रदेशों पर जब पूरी तरह बादल छा जाते हैं, तब वह दृश्य कितना मनमोहक एवं रमणीय हो उठता है इसका सजीव चित्र नागार्जुन प्रस्तुत करते हैं। बारिश की छोटी-छोटी बूंदें जब धरती पर पड़ती हैं तो मिट्टी में दबी सौंधी महक पूरे वातावरण को संगीतमय बना देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि रूखी-सूखी धरती पर बादलों ने प्रेम की बौछार कर दी हो और चारों तरफ हरियाली बिखेर दी हो।

व्याख्या: - नागार्जुन कवि कहते हैं कि मैंने स्वच्छ और उज्ज्वल पर्वतों के शिखरों पर घिरकर आने वाले बादलों को देखा है जो पूरे वातावरण को सुशोभित कर देते हैं। सुबह के समयओस की मोती जैसी नन्ही-नन्हीं बूंदें को मानसरोवर में खिले सुनहरे कमलों की पंखुड़ियों के ऊपर गिरते हुए देखा है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने उन्हें मोतियों की लड़ियों से सुसज्जित किया हो।

विशेष:-1. कवि ने संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है।

2. प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है।
3. 'छोटे-छोटे मोती' जैसे में उपमा अलंकार है।
4. दृश्य-बिंब प्रस्तुत किया गया है।

2. तुंग हिमालय के कंधों पर.................... घिरते देखा है।

प्रसंग-पूर्ववत्

व्याख्या: - यहाँ कवि कहते हैं कि विशाल हिमालय पर्वत पर छोटी और बड़ी कई झीलें हैं, उन झीलों के पानी में कभी आसमान तथा कभी पर्वत की परछाई पड़ने से पानी का रंग काला तथा नीला दिखाई देता है। ऐसे ही पानी पर मैदानी भागों की

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

वर्षा-ऋतु से व्याकुल राजहंसों को तैरते हुए देखा है। अवश्य ही ये राजहंस इन झीलों में कसैले और मीठे विषय तंतु अर्थात् मोतियों की खोज करते हैं। यहाँ कवि का अभिप्राय यह है कि मैदानी इलाकों में जब वर्षा ऋतु आती है, उसकी उमस की व्याकुलता से बचने के लिए अनेक पक्षी उड़कर पहाड़ों में स्थित झीलों पर आ जाते हैं जिससे बादलों की छाया में उनकी शोभा में और अधिक वृद्धि हो जाती है।

विशेष:-1. यहाँ तत्सम शब्दावली का प्राधान्य है।

2. वर्षा-ऋतु के दौरान पक्षियों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का उल्लेख किया है।

3. हिमालय के कंधों में मानवीकरण अलंकार है।

4. प्रकृति की मनोहारी छटा कवि ने प्रस्तुत की है।

5. कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग है।

ऋतु बसंत सुप्रभात था......... .... घिरते देखा है

प्रसंग-पूर्ववत

व्याख्या:- बसंत ऋतु की सुहावनी सुबह का समय था। चारों ओर धीमी गति से पवन बह रही थी, प्रात:कालीन सूर्य अपनी स्वर्णिम किरणें चारों ओर फैले पर्वतों की चोटियों पर बिखरे रहे थे, जिससे वे पर्वत भी सोने के प्रतीत हो रहे थे। प्रकृति का यह प्रात:कालीन वैभव मन को मोहित कर रहा था। ऐसे समय में चकवा-चकवी जिन्हे अभिशाप के वशीभूत होकर रात का समय एक-दूसरे सेबिछड़कर ही व्यतीत करना पड़ता है, उनका रूदन भी सूर्य की पहली किरण के साथ बंद हो जाता है। उस मनोरम वातावरण में सरोवर के जल की ऊपरी सतह पर हरी शैवाल के रूप में जो दरी बिछी हुई थी, मैंने विरही चकवा-चकवी को सुखद वातावरण में प्रेमपूर्ण कलह करते हुए देखा है। इस प्रकार बादलों के घिरने से वातावरण कितना मनमोहक और सुरमयी हो सकता है इसका मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है।

विशेष:-1. संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है। 2. 'मंद-मंद' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है। 3. चकवा-चकवी की परंपरागत काव्यरूढ़ि का प्रयोग है। 4. प्रात:कालीन सौंदर्य का अनूठा चित्रण कवि ने किया है। 5. 'हरी-दरी' पर में रूपात्मक योजना है। 6. दृश्य-बिंब का सुन्दर उदाहरण यहाँ देखने को मिलता है।

दुर्गम बर्फानी घाटी में.................... घिरते देखा है

प्रसंग-पूर्ववत्

व्याख्या:- कवि का मानना है कि कस्तूरी मृग पर्वतों की दुर्गम और बर्फीली घाटियों पर मिलते हैं। बर्फीली घाटियों की हजारों फुट ऊँचाई पर रहने वाले मृग को अपनी नाभि से जब मदमस्त कर देने वाली कस्तूरी की सुगंधि महसूस होती है तो वह उसे पाने के लिए इधर-उधर जैसे अपने ही पीछे दौड़ता है, किन्तु उसे वह सुगंधित वस्तु प्राप्त नहीं हो पाती। वह चंचल हिरण निरंतर उस सुगंधि की खोज में चारों तरफ दौड़ता है किन्तु प्राप्त न कर पाने की स्थिति में वह मानों स्वयं पर ही खीझ उठता है। कहने का भाव यह है कि अनेक बार मनुष्य अपने ही सौंदर्य अथवा विशेषताओं से अनभिज्ञ होकर जब बाहर उसे पाने की लालसा में भटकता है तब उसकी चिढ़न या कुंठा उस हिरण की भाँति होती है जो अपने भीतर छिपी कस्तूरी को न खोज पाने की दशा में दिशाहीन होकर इधर-उधर मारा-मारा फिरता है।

विशेष:- 1. तत्सम् शब्दावली का प्राधान्य है।

2. कवि ने अभिजात भाषा का प्रयोग किया है।

3. कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग है।

4. कस्तूरी मृग का वर्णन साभिप्राय है। संसार की विषय-वासनाओं के पीछे व्यर्थ भागने का अर्थ भी लिया जा सकता है।

कहाँ गया धनपति कुबेर वह.................. घिरते देखा है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

प्रसंग-पूर्ववत्

व्याख्या:- कवि ने यहाँ कालिदास के मेघदूत की कथा को आधार बनाया है। 'मेघदूत' में अलका नगरी के शासक कुबेर द्वारा अपने सेवक यक्ष को उसकी नवविवाहिता पत्नी से अलग करनिर्वासित होने का दंड देने का उल्लेख किया गया है। कवि का मानना है कि कुबेर और उसकी अलका नगरी का आज के समय में कोई पता नहीं है। इसी तरह कालिदास ने आकाश में उड़ने वाले, गंगाजल के समान निर्मल जल वाले जिस बादल को निर्वासित यक्ष का दूत बनाया था उसका भी कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिला है। कौन जाने वह छाया रूप कल्पित मेघ यहीं कहीं इसी धरती पर बरस पड़ा होगा। अर्थात् वह सब कालिदास की अपनी कल्पना रही होगी उसका जिंदगी की वास्तविकता से कोई सम्बन्ध होगा, यह अनुमान लगाना व्यर्थ है। व्यवहार जगत में किसी का न कभी अस्तित्व रहा है और न ही अब हो सकता है। किन्तु इन सब से परे सच तो यह है कि मैंने भीषण सर्दी में भी आकाश को छूने वाले कैलाश पर्वत की चोटियों पर आँधी लाने वाली पवन और तूफानी बादलों को आपस में गरज-गरज कर टकराते हुए देखा है। कहने का अभिप्राय है कि कल्पना में जो वस्तु जितनी सुंदर हो आवश्यकता नहीं कि उसका वास्तविक रूप भी वैसा ही हो। कभी-कभी कल्पना और वास्तविकता दोनों के स्वरूप में भिन्नता हो सकती है।

विशेष:- 1. प्रस्तुत पंक्तियाँ कालिदास के मेघदूत से प्रभावित हैं।

2. कवि ने कल्पना और वास्तविकता की भिन्नता को प्रस्तुत किया है।

3. कवि ने बादल के लिए व्योम प्रवाही गंगाजल शब्द का प्रयोग किया है जो कि सर्वथा नवीन एवं सारयुक्त है।

4. धनपति कुबेर का अर्थ शोषक पूंजीपति के संदर्भ में लिया गया है।

5. कवि की भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं प्रवाहमयी है।

6. कोमलकांत शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

7. प्राकृतिक सौन्दर्य का यथार्थपरक अंकन हुआ है।

शत-शत निर्झर निर्झरिणी कल..... ...... घिरते देखा है।

प्रसंग-पूर्ववत्

व्याख्या: - कवि का मानना है कि सैकड़ों झरनों और नदियों की कल-कल ध्वनि के बीच देवदार के वनों में लालिमा से युक्त सफेद भोजपत्रों से छाकर बनाई गई कुटिया के भीतर, रंग-बिरंगे और सुगंधित फूलों से अपने केशों को सजा-संवारकर, शंख के समान सुडौल सुन्दर गले में नीलमणियों की माला पहने, कानों में कुंडल लटकाए हुए और लालरंग के कमल को अपनी चोटियों में गूंथकर लगाए हुए, चाँदी के बने हुए और मणियों से जड़े हुए प्यालों में पूर्णतया मदिरा भरकर उन्हें लाल चंदन की बनी चौकियों पर अपने सामने रखकर, बैठने के लिए लाल-बाल कस्तूरी हिरण की नर्म खाल अपने नीचे बिछाकर तथा उनपर पलथी मारकर बैठने वाले, शराब के नशे के कारण लाल आँखों वाले मदमस्त किन्नर और किन्नरियों को मैंने स्वयं अपनी कोमल अंगुलियों से मधुर बाँसुरी बजाते हुए देखा है। कहने का अभिप्राय यह है कि पर्वत की चोटियों पर जब बादल घिरते हैं तो प्रत्येक स्थान एवं प्रत्येक समय पर अलग-अलग मनोरम दृश्य उपस्थित होता है और उस प्रत्येक सौन्दर्य को मैंने अपनी आँखों से देखा है तथा जी भरकर जीया है।

विशेष:- 1. यहाँ कवि ने पर्वत-शिराओं में रहने वाले किन्नर-किन्नरियों की वेशभूषा और विलास-साधना का यथार्थ चित्रण किया है।

2. यहाँ भाषा का अभिजात्य दिखाई पड़ता है?

3. यहाँ दृश्य बिंब का सार्थक चित्रण किया है?

4. तत्सम् शब्दावली की प्रधानता है।

5. प्राकृतिक सौंदर्य में निजी अनुभव की छाप है?

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

6. कवि की शैली वर्णनात्मक है?
7. भाषा में आलंकारिकता और आनुप्रासिकता है।

3.6 अभ्यास प्रश्न

3.5.1 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में दीजिए?

1. प्रस्तुत कविता किस संग्रह में संकलित है?
2. पर्वत की परछाई पड़ने पर पानी का रंग कैसा हो जाता है?
3. प्रस्तुत कविता का विषय क्या है?

3.5.2 सही/गलत का चुनाव कीजिए।

1. नागार्जुन ने स्वच्छ उज्ज्वल पर्वत–शिखरों की कल्पना की है। (सही/गलत)
2. हिमालय पर्वत पर छोटी बड़ी कई झीलें हैं। (सही/गलत)
3. कवि ने वर्षाऋतु से व्याकुल मगरमच्छों को झील में तैरते देखा है। (सही/गलत)
4. कस्तूरी मृग मैदानों में मिलते हैं। (सही/गलत)
5. कवि का मानना है कि कुबेर की नगरी आज भी मौजूद है। (सही/गलत)

3.7 संदर्भ ग्रन्थ

- *नागार्जुन का रचना–संसार* – विजय बहादुर सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
- *नागार्जुन* – खगेन्द्र ठाकुर, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

उद्घोषणा (Disclaimer)

वर्तमान अध्ययन सामग्री अधिकांशतः वार्षिक मोड/सी.बी.सी.एस. सेमेस्टर सिस्टम के तहत पहले से उपलब्ध अध्यायों का संशोधित संस्करण है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi